ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

मेसर्स लांसेज फार्मास्यूटिकल्स प्रा॰ लि॰

cuke

बिहार राज्य वित्त निगम एवं अन्य

W.P.(C) No. 5221 of 2010. Decided on 17th September, 2011.

वित्तीय एवं ऋण विधि–कर्ज–एकमुश्त व्यवस्थापन (ओ॰ टी॰ एस॰) योजना–जब एक बार बोर्ड ने ओ॰ टी॰ एस॰ योजना क्रियान्वित करने का निर्णय ले लिया, याचीगण की इकाई को विक्रय के लिए रखा नहीं जाना चाहिए था–किया गया विक्रय ओ॰ टी॰ एस॰ के निबंधनों के विरुद्ध है–जबतक प्रतिफल की प्राप्ति, दस्तावेज का निष्पादन, संपत्ति का अंतरण, आदि द्वारा विक्रय की औपचारिकताओं को पूरा नहीं किया जाता है, निगम यह दृष्टिकोण नहीं अपना सकता है कि संपत्ति बेच दी गयी है–याची ओ॰ टी॰ एस॰ योजना का लाभ पाने का हकदार है। (पैराएँ 11 से 17)

निर्णयज विधि.–2009 (1) PLJR 800; CWJC No. 103 of 2010—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; M/s. M.S. Mittal, A.K. Mehta and A.K. Yadav, For the Respondents.

आदेश

याची, कंपनी अधिनियम के अधीन एक रजिस्टर्ड कंपनी, को निगम द्वारा 5.80 लाख रुपयों का सावधि कर्ज मंजूर किया गया था जिसमें से याची ने कतिपय दस्तावेजों के निष्पादन पर 5.37 लाख रुपयों की राशि का लाभ लिया किंतु करार के निबंधनानुसार किश्तों में बकाया जमा करने में विफल रहा। निगम के साथ किए गए व्यतिक्रम के कारण दिनांक 23.1.1999 को राज्य वित्त निगम अधिनियम की धाराओं 30 और 29 के निबंधनानुसार कानूनी नोटिस जारी किया गया था। इसके बावजूद याची निगम के बकायों का पुनर्भुगतान करने में विफल रहा। इस पर इकाई की नीलामी के लिए दिनांक 28.4.1995 और दिनांक 3.5.1994 को दैनिक समाचार पत्र में नोटिस जारी किया गया था। निगम ने तीन प्रस्तावों को प्राप्त किया और कीमत संबंधी बातचीत पर उच्चतम प्रस्ताव प्रत्यर्थी सं॰ 5 मेसर्स बाबा फूड प्रोडक्ट्स द्वारा दिया गया था। बेहतर प्रस्ताव के लिए, पुन: दिनांक 28.1.2010 को इकाई के विक्रय के लिए नोटिस विज्ञापित किया गया था। उक्त प्रत्यर्थी सं॰ 5 मेसर्स बाबा फूड प्रोडक्ट्स से प्रस्ताव प्राप्त करने पर कतिपय औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद मेसर्स बाबा फूड प्रोडक्ट्स के उच्चतम निविदादाता होने के नाते इसके पक्ष में इकाई/आडमानित आस्तियों को विक्रय विनिश्चित किया गया था। तद्नुसार, दिनांक 20.8.2010 को एक विक्रय आदेश जारी किया गया था जिसकी प्रति मूल प्रोमोटर को विक्रय आदेश से मेल खाते निबंधनों और शर्तों पर इकाई को अपने पास रखने के लिए भेजी गयी थी और इसके द्वारा आर॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰ के बकायों को अपवर्जित करते हुए विक्रय की राशि 28 लाख रुपयों पर नियत की गयी थी। उक्त विक्रय आदेश में अनुबंध किया गया था कि खरीददार विक्रय विलेख जारी किए जाने की तिथि से 21 दिनों के भीतर 8 लाख रुपयों का आरंभिक भुगतान करेगा। शेष राशि का भुगतान 16 किस्तों में चार वर्षों में की जाएगी। किंतु दिनांक 20.8.2010 जब विक्रय आदेश जारी किया गया था, के पहले निदेशक बोर्ड ने दिनांक 11.9.2009/23.6.2010 की अपनी बैठक में ''बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ एकमुश्त व्यवस्थापन योजना, 2009" को क्रियान्वित करने का फैसला किया था। उक्त निर्णय दिनांक 17.8.2010 के मेमो सं॰ 874 के अधीन परिपत्र सं॰ 02/10-11 के तहत संसूचित किया गया था जिसे परिशिष्ट–1 के रूप में संलग्न किया गया है। उक्त योजना के खंड 5.2 के अनुसार व्यवस्थापन राशि मुख्य बकाया राशि का 100% होगी। भुगतान का ढंग खंड 5.3 के अधीन विहित किया गया था जिसके द्वारा आवेदन फॉर्म के साथ संपूर्ण

व्यवस्थापन राशि अथवा आवेदन फॉर्म के साथ राशि का 25% और ऐसा आवेदन दाखिल किए जाने की तिथि से एक माह के भीतर शेष 75% का भुगतान किया जाना था।

2. याची के मामले के मुताबिक, याची ने विहित समय के भीतर दिनांक 1.9.2010 को अपना आवेदन तीन लाख रुपयों, जो व्यवस्थापन राशि के 25% से अधिक था, के ड्राफ्ट के साथ दाखिल किया। दिनांक 1.9.2010 को उक्त आवेदन ड्राफ्ट के साथ प्रत्यर्थी सं॰ 1 बिहार राज्य वित्त निगम द्वारा स्वीकार किया गया था। तत्पश्चात् दिनांक 9.9.2010 को 2,90,700/- रुपयों की शेष राशि भी याची द्वारा जमा कर दी गयी थी। इस तरीके से याची ने वस्तुत: 5,90,700/- रुपया जमा किया जो व्यवस्थापन राशि के 100% अर्थात् मुख्य बकाया राशि के साथ परिपत्र के खंड 5.2 के अधीन विहित 10% अतिरिक्त के समतुल्य है।

3. इन परिस्थितियों के अधीन परिशिष्ट–2 में अंतर्विष्ट दिनांक 20.8.2010 को जारी विक्रय आदेश का अभिखंडन इप्सित किया गया है।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 मेसर्स बाबा फूड प्रोड्क्ट्स के पक्ष में दिनांक 20.8.2010 के विक्रय आदेश को जारी करने के पहले दिनांक 17.8.2010 के मेमो सं॰ 874 के अधीन जारी ''बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ एकमुश्त व्यवस्थापन योजना, 2009" के निबंधनानुसार याची ने व्यवस्थापन के लिए आवेदन दिया था और दिनांक 1.9.2010 को खंडों में से एक के मुताबिक कुल बकाया राशि का 25% जमा किया था और बाद में दिनांक 8.9.2010 को शेष बकाया राशि का भुगतान किया गया था और तद्द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पक्ष में दिनांक 20.8.2010 का विक्रय आदेश (परिशिष्ट–2) प्रत्यर्थी द्वारा पारित किया जाना पूर्णत: गैर–कानूनी था और इसलिए, उक्त आदेश अवैध है और अपास्त किए जाने का दायी है।

5. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि एक ओर प्रत्यर्थी का दृष्टिकोण यह है कि विक्रय प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पक्ष में किया गया था जबकि उक्त विक्रय आदेश के अधीन याची को विक्रय आदेश से मेल खाने वाले निबंधनों और शर्तों पर इकाई को अपने पास रखने का प्रस्ताव दिया गया था और इस प्रकार, विक्रय कभी भी पूरा किया गया नहीं कहा जा सकता है और तद्द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 मेसर्स बाबा फूड प्रोडक्ट्स को प्रश्नगत संपत्ति के ऊपर कोई अधिकार, हक अथवा हित अर्जित करता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

6. ऐसी ही स्थिति में, **मेसर्स दयाल प्यूएल इंडस्ट्रीज बनाम बिहार राज्य वित्त निगम एवं अन्य,** [2009(1) PLJR 800, के मामले में और **श्रीमती कांति देवी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 103 वर्ष 2010)** के मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय में पूर्वोक्त प्रतिपादना अधिकथित की गयी है।

7. प्रत्यर्थी बिहार राज्य वित्त निगम की ओर से प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसके पैराग्राफों 11 और 12 में बोर्ड द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का पठन निम्नलिखित है:–

> *11. ^^;g fd dFku fd;k tkrk g fd bdkb dk viu ikl j[ku d fy, foØ; vkn'k d fucèkuk dk vuikyu dju d ctk, ;kph u vk0 Vh0 ,l0 ;ktuk] 2009 d vèkhu fnukd 1.9.2010 dk fuxe d iVuk fLFkr e[;ky; e doy 3 yk[k #i;k dk fMekM Mk¶V tek fd;kA*
>
> *12. ;g fd dFku vkj fuonu fd;k tkrk g fd ;kph vk0 Vh0 ,l0 ;ktuk] 2009 d vèkhu fuxe dk Hkxrku dju d igy 8 yk[k #i;k] tk bdkb viu ikl j[ku d fy, vkjfHkd jkf'k g] dk Hkxrku djd foØ; vkn'k d fucèkukuklkj bdkb viu ikl j[ku d ckn gh vk0 Vh0 ,l0 ;ktuk] 2009 d vèkhu m|fe;k dk fn, x, ykHkk dk ykHk yu d fy, ç;kl dj ldrk FkkA***

8. अतः वस्तुतः एक प्रश्न उद्‌भूत होता है कि क्या याची ओ॰ टी॰ एस॰ योजना, 2009 के लाभ का हकदार है और क्या दिनांक 20.8.2010 का विक्रय आदेश पूर्वोक्त ओ॰ टी॰ एस॰ योजना, 2009 के अधीन वैध है?

9. स्वीकृत रूप से, निगम के निदेशक बोर्ड ने दिनांक 11.9.2009/23.6.2010 की अपनी बैठक में ''बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ एकमुश्त व्यवस्थापन योजना, 2009" को क्रियान्वित करने का फैसला किया जिसे दिनांक 17.8.2010 के मेमो सं॰ 874 के तहत जारी परिपत्र सं॰ 2-10-11 के अधीन प्रसारित किया गया था। उक्त लाभ मूल श्रेणी के अंतर्गत आने वाले कर्जदारों/खरीददारों/प्रोमोटरों/गारंटरों तक विस्तारित किया जाना था जैसा खंड 5.1 में उल्लिखित किया गया है। ऐसी एक पात्रता खंड 5.1a में है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *^^fnukd 31.3.2010 dk ch0 ,l0 ,Q0 lh0 d vfHky[k d erkfcd lngkLin vFkok ?kkV dh Jf.k;k e J.khÑr ,u0 ih0 ,0 bdkb;k d le{k ey çkekVj@xkjVj ftudh bdkb cph ugh x;h gA***

10. इस प्रकार, याची इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाला प्रतीत होता है। तद्‌नुसार, याची के मामले के मुताबिक, याची ने ओ॰ टी॰ एस॰ योजना के शर्तों और निबंधनों के अनुसार योजना के अधीन अनुबंधित समय के पूरी तरह भीतर दिनांक 1.9.2010 को बकाया राशि के 25% के साथ आवेदन जमा किया था।

11. आगे, योजना के अधीन अनुबंध के मुताबिक शेष राशि का भुगतान दिनांक 9.9.2010 को किया गया था किंतु बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण यह है कि याची द्वारा किए गए किसी जमा को ''एकमुश्त व्यवस्थापन योजना, 2009 के अधीन स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि याची ने मेल खाते निबंधनों और शर्तों पर इकाई अपने पास रखे बिना भुगतान किया है। दूसरे शब्दों में, निगम का दृष्टिकोण यह है कि याची को प्रस्ताव, जिसे प्रत्यर्थी सं॰ 5 मेसर्स बाबा फूड प्रोडक्ट्स द्वारा दिया गया था, स्वीकार करके पहली बार आठ लाख रुपयों का और बाद में विक्रय आदेश की राशि का किस्तों में भुगतान करना चाहिए था। लिए गए दृष्टिकोण को न तो किसी विधि की मंजूरी है और न ही यह ओ॰ टी॰ एस॰ योजना के अनुकूल है।

12. जैसा मैंने पहले उपदर्शित किया है कि खंड 5.1 वस्तुतः अनुबंधित करता है कि एन॰ पी॰ ए॰ इकाईयों के समस्त मूल प्रोमोटरों/गारंटरों, जिनकी इकाई को बेचा नहीं गया है, को एकमुश्त व्यवस्थापन का लाभ दिया जाएगा। उक्त एकमुश्त व्यवस्थापन को दिनांक 17.8.2010 के मेमो सं॰ 874 के अधीन प्रसारित किया गया था और इसलिए याची की इकाई को विक्रय के लिए नहीं रखा जाना चाहिए था जब बोर्ड ने ''बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ एकमुश्त व्यवस्थापन योजना, 2009 को क्रियान्वित करने का निर्णय लिया था और इसलिए, दिनांक 20.8.2010 को प्रभाव दिया गया विक्रय एकमुश्त व्यवस्थापन के निबंधनों के विरुद्ध है।

13. इसके अतिरिक्त, दिनांक 20.8.2010 का आदेश विक्रय का लिखत नहीं हो सकता है क्योंकि मेल खाते निबंधनों और शर्तों पर इकाई को अपने पास रखने का प्रस्ताव इस याची को दिया गया है।

14. दयाल फ्यूएल इंडस्ट्रीज बनाम बिहार राज्य वित्त निगम एवं अन्य (ऊपर) के मामले में समरुप प्रश्न विचारार्थ पटना उच्च न्यायालय में आया जिसने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:–

> *^^fjV ;kfpdk e ;kph dh çkFkuk ;g Fkh fd fuxe ch0 ,l0 ,Q0 lh0 vk0 Vh0 ,l0 ;ktuk] 2006 d lkFk vk;kA ;kph u mDr ,de'r 0;oLFkkiu ;ktuk d vèkhu leLr cdk;k d 0;oLFkkiu d fy, lE;d vkonu èku d lkFk vkonu fn;kA blu ;ktuk 1A d vèkhu 0;oLFkkiu dju dk çLrko fn;k Fkk fdr fuxe*

u bl ;ktuk FA d vèkhu ekeyk ekur g, vkn'k fn;k fd li.k cdk; dk 0;oLFkkiu fd;k tk ldrk Fkk fdr ;kph bdkb okil iku dk gdnkj ugh gkxk D;kfd bdkb cp nh x;h FkhA nlj 'kCnk e] fuxe dk nf"Vdk.k ;g g fd ;kph 0;oLFkkiu d vèkhu cdk;k dk Hkxrku dj ldrk g vkj bdkb NkM Hkh ldrk gA nlj 'kCnk e] cèkd cdk;k d ifjlekiu d nkf;Ro d lkFk ijkcfèkr fd;k tkrk g tk idVr% fofp= çrhr gkrk gA bl çdkj] ejh nf"V e] ç'u ;g g fd D;k bdkb dk cpk x;k Fkk ;k ugh\

èkkjk 29 dh mièkkjk (2) dk ijUrd lifÙk vrj.k vfèkfu;e d çkoèkku dk fujLr ugh djrk gA foØ; d fy, lifÙk d vrj.k dk lifÙk vrj.k vfèkfu;e d fucèkukulkj li.k gkuk gkxk vkj ;g doy lE;d :i l nt fyf[kr nLrkot }kjk çkIr fd;k tk ldrk gA jkT; foÙk vfèkfu;e dh èkkjk 29 fuxe dk ,lk nLrkot fu"ikfnr dju d fy, çkfèkÑr djrh g fdr rc Hkh ,lk foØ; doy rc gkrk g tc vrj.k nLrkot lE;d :i l fu"ikfnr vkj jftLVM fd;k tkrk g tlk lifÙk vrj.k vfèkfu;e d vèkhu vuè;kr fd;k x;k g tk oreku ekey e ugh fd;k x;k gA

e ;g le>u e foQy g fd fuxe u fdl vkèkkj ij ;g nf"Vdk.k viuk;k fd foØ; i= d QyLo#i lifÙk cp nh x;h FkhA ;fn lifÙk foØ; i= d QyLo#i cph x;h Fkh] rc ;g U;k;ky; ;g vfèkeY;u dju e foQy g fd D;k mlh foØ; i= e dFku fd;k x;k g fd ;kph dk ey [kkr fucèkuk ij bdkb dk viu ikl j[ku dk vfèkdkj FkkA ;fn foØ; igy gh fd;k tk pdk Fkk vkj lifÙk çR;Fkh l0 6 dk foØ; i= }kjk cp nh x;h Fkh] fcØh dj fn, tku d ckn ;kph fdl çdkj l lifÙk viu ikl j[k ldrk FkkA iu% foØ; d fy, çfrQy dgk gA dgk x;k Fkk fd bl 3.41 yk[k #i;k d çfrQy d fy, cpk x;k Fkk fdr ml èku dk D;k gvkA fuxe Lohdkj djrk g fd 78,000/- #i;k dh vkjfHkd jkf'k d Hkxrku d ckn çR;Fkh l0 6 }kjk dkb vfrfjDr jkf'k tek ugh dh x;h Fkh ftlu fofèkd vkipkfjdrkvk dk ijk fd, fcuk l0;ogkj dk chp e gh NkM fn;k FkkA foØ; dk dkb nLrkothdj.k ugh g vkj u gh bldk jftLV'ku gA

fuxe }kjk Lo; ;g n'kk, tku ij fd foØ; d fy, fofèkd vkipkfjdrkvk dk ijk ugh fd;k x;k Fkk vFkr u rk çfrQy çkIr fd;k x;k Fkk vkj u gh lifÙk vrfjr dju okyk dkb nLrkot fu"ikfnr fd;k x;k Fkk vkj u gh lifÙk vrj.k vfèkfu;e d fucèkukulkj ,lk dkb nLrkot fu"ikfnr fd;k x;k Fkk] e ;g le>u e foQy g fd fdl vkèkkj ij fuxe ;g nf"Vdk.k viukrk g fd lifÙk cp nh x;h FkhA oLrr% nf"Vdk.k Hkked g vkj fofèk e vkèkkjghu gA ;g doy fuxe }kjk fcNk, x, dt d tky l ;kph dk fudyu dk lEekutud jkLrk nu l budkj dju dk cgkuk g tgk 82,000/- #i;k d lforj.k d fy, ;kph ij vc 25 yk[k #i;k l Åij dh jkf'k dk mUekfpr dju dk nkf;Ro FkkA ;g U;k;ky; bll vfèkd dN ugh dg ldrk gA fuxe dk nf"Vdk.k fd lifÙk cp nh x;h Fkh] rF; vkj fofèk e Hkked gku d dkj.k [kM FA d vèkhu cdk;k d 0;oLFkkiu d fy, fuxe d nf"Vdk.k dk rF; ij vFkok fofèk e likf"kr ugh fd;k tk ldrk gA 0;oLFkkiu d fy, ;kph dk vkonu vU;Fkk lefpr Fkk vkj bl ij dkjokb dh tkuh pkfg, FkhA mDr ;ktuk d vèkhu cdk;k fuiVku d fy, ;kph dk vuefr nu e fuxe dh vkj l foQyrk d pyr ;kph dk xyr :i l fodYi nu l budkj fd;k x;k FkkA vr% fuxe ;ktuk e l fdlh d vèkhu mld vkonu d erkfcd vFkok mldh bPNk d erkfcd ch0 ,l0 ,Q0 lh0 vk0 Vh0 ,l0] 2006 d fucèkukulkj viu nkf;Ro dk 'kefur dju d fy, ;kph dk lfoèkk çnku dju dk nk;h g D;kfd ;ktuk d vèkhu fodYi dk puko 0;frØeh dk djuk gA**

15. इस प्रकार, पटना उच्च न्यायालय द्वारा स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया गया है कि जबतक प्रतिफल की प्राप्ति, संपत्ति अंतरित करने वाले दस्तावेज के निष्पादन और संपत्ति अंतरण अधिनियम के निबंधनानुसार दस्तावेज रजिस्टर्ड किए जाने के द्वारा विक्रय की औपचारिकताओं को पूरा नहीं किया जाता है, निगम को यह दृष्टिकोण अपनाने की छूट नहीं है कि संपत्ति बेच दी गयी है।

16. तथ्य समरुप प्रकृति के हैं और इसलिए, अभिनिर्धारित किया जाता है कि याची प्रश्नगत इकाई का मूल प्रोमोटर/गारंटर के रूप में योजना के खंड 5.1 के निबंधनानुसार ओ॰ टी॰ एस॰ योजना, 2009 का लाभ पाने का हकदार है। परिणामस्वरुप, दिनांक 20.8.2010 का विक्रय आदेश अभिखंडित किए जाने का दायी है और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है।

17. रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

स्वरुप मंडल

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 130 of 2010. Decided on 13th October, 2011.

घरेलू हिंसा से महिलाओं को संरक्षण अधिनियम, 2005—धारा 12—घरेलू हिंसा में लिप्त होने के लिए भरण-पोषण भत्ता दिए जाने का आदेश–संरक्षण अधिकारी अथवा सेवा प्रदाता से घरेलू घटना की रिपोर्ट मंगाना दंडाधिकारी के लिए अनिवार्य नहीं है–परिवाद मामले में याची के उन्मोचन का वर्तमान मामले के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं है–प्रत्यर्थी-पत्नी किडनी के बीमारी से पीड़ित है–तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है–पुनरीक्षण याचिका खारिज। (पैराएँ 9 से 14)

अधिवक्तागण.–Mr. D.C. Mishra, For the Petitioner; Mr. N.P. Choudhary, For the State.

आदेश

यह पुनरीक्षण आवेदन दांडिक अपील सं॰ 17 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 5.1.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा उन्होंने भरण-पोषण भत्ता की मात्रा में परिवर्तन के साथ दांडिक विविध (डी॰ वी॰) केस सं॰ 3 वर्ष 2009 में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 9.9.2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल अपील को खारिज कर दिया।

2. यह प्रतीत होता है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 ने भरण-पोषण प्रदान करने के लिए, क्योंकि याची (वि॰ प॰ सं॰ 2 का पति) ने उसके साथ घरेलू हिंसा की थी, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (इसमें इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 12 के अधीन आवेदन दाखिल किया है। आगे प्रतीत होता है कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने याची को कानूनी नोटिस जारी किया था और 'तत्पश्चात' याची ने लिखित कथन दाखिल किया था। तब दोनों पक्षों ने अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य दिया था। आगे प्रतीत होता है कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जामतारा दिनांक 9.9.2009 का आदेश पारित करते हुए इस निष्कर्ष पर आए थे कि याची ने घरेलू हिंसा किया था और तद्नुसार याची को वि॰ प॰ सं॰ 2 को 4000/- रुपया प्रतिमाह भरण-पोषण भत्ता का भुगतान करने का निर्देश दिया था। उन्होंने आगे निर्देश दिया था कि याची को अपने पुत्र के भरण-पोषण के मद में 2000/- रुपयों का भुगतान करना

चाहिए। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने याची को चिकित्सा व्यय के मद में 25,000/- रुपया का और वि॰ प॰ सं॰ 2 के ''स्त्रीधन'' को कारित नुकसानी के मद में 30,000/- रुपया का भुगतान करने का निर्देश आगे दिया। यह प्रतीत होता है कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के पूर्वोक्त आदेश को याची द्वारा सत्र न्यायाधीश, जामतारा के न्यायालय में दांडिक अपील सं॰ 17 वर्ष 2009 दाखिल करके चुनौती दी गयी थी जिसे वि॰ प॰ सं॰ 2 और उसके पुत्र को भुगतान योग्य भरण–पोषण भत्ता में परिवर्तन के साथ दिनांक 5.1.2010 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने निर्देश दिया कि याची वि॰ प॰ सं॰ 2 को प्रति माह 2500/- रुपयों और उसके पुत्र को प्रतिमाह 1500/- रुपयों का भुगतान भरण–पोषण भत्ता के रूप में करेगा।

3. जबकि पूर्वोक्त दोनों आदेशों का विरोध करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अधिनियम की धारा 12 के परन्तुक के मुताबिक व्यथित व्यक्ति द्वारा दाखिल आवेदन पर कोई अंतिम आदेश पारित करने के पहले संरक्षण अधिकारी से रिपोर्ट मांगना और इस पर विचार करना दंडाधिकारी के लिए अनिवार्य है। यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में दंडाधिकारी ने संरक्षण अधिकारी से कोई रिपोर्ट नहीं मांगा है और इस पर विचार किए बिना आदेश पारित किया है। अत: मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के आदेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि इसी अनुतोष के लिए वि॰ प॰ सं॰ 2 ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A, 379 और 323 के अधीन परिवाद मामला पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 385/2006 दाखिल किया था। निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त मामले में याची को उक्त परिवाद मामला से उन्मोचित कर दिया गया था क्योंकि उस मामले में परिवादी द्वारा कोई गवाह प्रस्तुत नहीं किया गया था। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि उक्त अधिनियम की धारा 12 के अधीन वर्तमान आवेदन भी पोषणीय नहीं है।

4. आगे निवेदन किया गया है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 ने यह दर्शाते हुए कोई मेडिकल बिल प्रस्तुत नहीं किया है कि उसने अपने मेडिकल खर्च के मद में 25,000/- रुपया उपगत किया था। अत:, मेडिकल खर्च अधिनिर्णीत करने वाले विद्वान अवर न्यायालयों के आदेश अपास्त किए जाने के दायी हैं। यह निवेदन भी किया गया है कि यह दर्शाने के लिए नेफ्रोलॉजिस्ट का कोई रिपोर्ट दाखिल नहीं किया गया कि वि॰ प॰ सं॰ 2 किडनी के रोग से पीड़ित थी। अत: अवर न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वह किडनी के रोग से पीड़ित थी, संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, वि॰ प॰ सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अधिनियम की धारा 12 के परन्तुक के मुताबिक दंडाधिकारी को संरक्षण अधिकारी के रिपोर्ट पर विचार करने की आवश्यकता है परन्तु यह कि इसे उसके न्यायालय में प्राप्त किया गया हो। यदि संरक्षण अधिकारी ने कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं किया हो, तब उस स्थिति में संरक्षण अधिकारी से रिपोर्ट मांगना और इस पर विचार करना दंडाधिकारी के लिए आज्ञापक नहीं है।

6. आगे निवेदन किया गया है कि स्वीकृत रूप से, जमतारा इस मामले में संरक्षण अधिकारी का रिपोर्ट मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमतारा के कार्यालय में प्राप्त नहीं किया गया है। उक्त परिस्थिति के अधीन, उक्त रिपोर्ट पर आदेश पारित करने के पहले विचार नहीं किए जाने का इस पर कोई प्रभाव नहीं है।

7. आगे निवेदन किया गया है कि याची को पी॰ सी॰ आर॰ मामले में उन्मोचित कर दिया गया था क्योंकि उस मामले में कोई गवाह प्रस्तुत नहीं किया गया था, जबकि वर्तमान मामले में दोनों पक्षों द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करने के बाद विपक्षी पक्षकारों के पक्ष में भरण–पोषण भत्ता प्रदान किया गया था। अत:, पूर्वोक्त मामले में याची के उन्मोचन का आक्षेपित आदेशों में कोई प्रभाव नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 ने पेशेवर चिकित्सक द्वारा जारी नुस्खा यह दर्शाने के लिए दाखिल किया है कि वह किडनी के रोग और अन्य बीमारियों से पीड़ित थी। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि वि॰ प॰ सं॰ 2 द्वारा परीक्षित समस्त गवाहों के साक्ष्य में आया है कि उसने अपने चिकित्सीय इलाज के मद में विपुल राशि खर्च की और गवाहों के उक्त बयान को याची द्वारा चुनौती नहीं दी गयी है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि मेडिकल खर्च अधिनिर्णीत करने वाले अवर न्यायालयों के आदेश वैध हैं और इनमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन को सुनने पर, मैंने इस मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। 'अधिनियम' की धारा 12 की उपधारा (1) का पठन निम्नलिखित है:–

> *12.* ***nMkfèkdkjh dk vkonu-*** *&(1) 0;fFkr 0;fDr vFkok lj{k.k vfèkdkjh vFkok 0;fFkr 0;fDr dh vkj l dkbZ vU; 0;fDr bl vfèkfu;e d vèkhu ,d vFkok vfèkd vurk"kk dk bfIlr djr g, nMkfèkdkjh dk vkonu n ldrk g%*
>
> *ijUr ;g fd ,l vkonu ij dkbZ vkn'k ikfjr dju d igy nMkfèkdkjh lj{k.k vfèkdkjh vFkok lok çnkrk l mld }kjk çkIr dh x;h fdlh ?kjy ?kVuk fjikVZ dk fopkj e yxkA**

9. अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (1) के परिशीलन से, यह प्रकट है कि व्यथित व्यक्ति अधिनियम में संगणित एक अथवा अधिक अनुतोष इप्सित करते हुए आवेदन दाखिल कर सकता है। धारा 12 की उपधारा (1) का परन्तुक संरक्षण अधिकारी अथवा सेवाप्रदाता के किसी घरेलू घटना रिपोर्ट को विचार में लेना दंडाधिकारी के लिए अनिवार्य बनाता है बशर्ते इसे उसके द्वारा प्राप्त किया जाता है।

10. विधि के पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि संरक्षण अधिकारी अथवा सेवाप्रदाता से घरेलू घटना का रिपोर्ट मांगना दंडाधिकारी के लिए अनिवार्य नहीं है। यह केवल इतना ही आज्ञापक बनाता है कि यदि संरक्षण अधिकारी अथवा सेवाप्रदाता स्वप्रेरणा से दंडाधिकारी को रिपोर्ट भेजता है, आदेश पारित करने के पहले उसे इस पर विचार करना ही होगा।

11. स्वीकृत रूप से, इस मामले में, संरक्षण अधिकारी अथवा सेवाप्रदाता से मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जामतारा के कार्यालय में कोई घरेलू घटना की रिपोर्ट प्राप्त नहीं की गयी थी। उक्त परिस्थिति के अधीन, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के पास कोई रिपोर्ट नहीं था जिस पर वह आक्षेपित आदेश पारित करने के पहले विचार करते। तद्नुसार, मैं इस संबंध में अवैधता नहीं पाता हूँ।

12. अब द्वितीय प्रतिवाद पर आते हुए यह उल्लेखनीय है कि परिवाद मामले में याची को उन्मोचित कर दिया गया था, क्योंकि उस मामले में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था। अत:, पूर्वोक्त परिवाद मामले में याची के उन्मोचन का कोई प्रभाव इस मामले के परिणाम पर नहीं है। अत:, मैं याची के विद्वान अधिवक्ता के द्वितीय प्रतिवाद में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ।

13. मैं आगे पाता हूँ कि विद्वान सत्र न्यायाधीश और विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने निष्कर्षित किया था कि वि॰ प॰ सं॰ 2 द्वारा प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर वि॰ प॰ सं॰ 2 किडनी के रोग से पीड़ित थी। इस प्रकार, पूर्वोक्त निष्कर्ष, जो शुद्धत: तथ्य का निष्कर्ष है, में इस न्यायालय द्वारा अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, जब तक याची यह नहीं दर्शाता है कि यह अनुचित है। यह कहना अनावश्यक है कि याची ऐसा करने में विफल रहा।

14. उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं इस पुनरीक्षण में गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efrZ

मनोज ओराँव

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1185 of 2007. Decided on 6th September, 2011.

पारिवारिक पेंशन योजना, 1964—खंड 7—अर्हक सेवा की कमी के आधार पर मृतक-कर्मचारी के पुत्र को पारिवारिक पेंशन देने से इनकार–ऐसे मामले में भी जहाँ सरकारी सेवक ने सेवा के एक वर्ष की न्यूनतम अवधि को पूरा किया है, अवयस्क पुत्र सहित संबंधीगण पारिवारिक पेंशन पाने के हकदार होंगे–याची के पिता ने एक वर्ष से अधिक की सेवा दी है–यदि याची का पिता अस्थायी कर्मचारी था, तब भी याची मृतक कर्मचारी का पुत्र होने के कारण योजना का लाभ पाएगा–याची पारिवारिक पेंशन का हकदार है। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Petitioner; J.C. to G.P. II, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची का पिता स्व॰ लुरकू जोंस टोप्पो उर्फ स्व॰ लुरकू ओराँव पौधा संरक्षण केंद्र, कृषि विभाग, राँची में 'कामदार' के रूप में कार्यरत था। जब वह नियोजन में था, कार्यरत रहते हुए दिनांक 30.8.1984 को उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय, याची अवयस्क था। तब भी उसकी माता ने दूसरा विवाह करके याची को बेसहारा छोड़कर चली गयी। जब याची वयस्क हुआ, उसने प्राधिकारी को पारिवारिक पेंशन, जो उसके पिता की मृत्यु के बाद पारिवारिक पेंशन योजना, 1964 के रूप में ज्ञात योजना के अधीन भुगतान किए जाने के लिए बकाया था, के भुगतान का निर्देश देने के लिए इस रिट आवेदन को दाखिल किया, क्योंकि याची 21 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक पारिवारिक पेंशन का हकदार होगा चूँकि याची के पिता ने विभाग में दो वर्ष से अधिक तक काम किया था, जो योजना के अधीन एक वर्ष की अर्हक अवधि से अधिक है और इसलिए प्राधिकारी को याची को पारिवारिक पेंशन के बकायों का भुगतान करने के लिए निर्देश दिया जाए।

2. प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि याची पारिवारिक पेंशन पाने का हकदार नहीं होगा–क्योंकि याची के पिता ने पेंशन अर्जित करने के लिए दस वर्षों की सेवा की अर्हक अवधि को पूरा नहीं किया था और इस स्थिति के अधीन याची दावा किए गए अनुतोष को पाने का हकदार नहीं है।

3. प्रतिशपथ पत्र में यह कथन भी किया गया है कि याची का पिता अस्थायी सेवा में था और उसने सेवा का दो वर्ष भी पूरा नहीं किया था और कि उन दो वर्षों के दौरान भी कर्तव्य से याची के पिता के अनुपस्थित रहने के कारण सेवा में ब्रेक था।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि याची मृतक कर्मचारी का पुत्र होने के कारण पारिवारिक पेंशन योजना, 1964 में प्रतिष्ठापित प्रावधान की दृष्टि में पारिवारिक पेंशन का हकदार होगा जबकि राज्य का दृष्टिकोण है कि चूँकि याची के पिता ने पेंशन पाने के लिए अर्हक सेवा की अवधि पूरा नहीं किया था, अतः, याची मृतक कर्मचारी का पुत्र होने के कारण पारिवारिक पेंशन का हकदार नहीं होगा।

5. परस्पर विरोधी दृष्टिकोण की दृष्टि में, पारिवारिक पेंशन योजना, 1964 के रूप में ज्ञात योजना को ध्यान में लेने की आवश्यकता है जिसे अपने कर्मचारियों को विशेष सुरक्षा प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा विरचित किया गया था। पारिवारिक पेंशन योजना के खंड 7 का पठन निम्नलिखित है:–

1. ikfjokfjd i'ku lok e jgr g, eR;] d ekey e vFkok] fnukd 1 vfçy] 1964 dk vFkok bld ckn lokfuofÙk ij vuK; gkxk ;fn eR; d le; ij lokfuoÙk vfèkdkjh evkotk] lokfuofÙk vFkok vfèkof"krk i'ku ik jgk FkkA lok e eR; d ekey e] ljdkjh lod u ,d o"k lok dh U;ure vofèk ijk fd;k gkA

2. ;ktuk d ç;ktu l ifjokj vfèkdkjh d fuEufyf[kr lcfèk;k dk lfEefyr djxkk&

(a) i#"k vfèkdkjh d ekey e iRuh(

(b) L=h vfèkdkjh d ekey e ifr(

(c) voLd i=] vkj

6. इसके परिशीलन से, वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि उस मामले में भी जहाँ सरकारी सेवक ने सेवा के एक वर्ष की न्यूनतम अवधि को पूरा किया है, अवयस्क पुत्र सहित पूर्वोल्लिखित रिश्तेदार/पारिवारिक पेंशन के हकदार होंगे यद्यपि खंड 14 में कुछ निर्बंधन लगाए गए हैं जिनका पठन निम्नलिखित है:–

;g ;ktuk&

(a) fnukd 1 vfçy] 1964 l igyk lokfuoÙk fdr 'kk;n ml frfFk ij vFkok rRi'pkr iuZ fu;kftr 0;fDr;k(

(b) vkdfLed fufèk l Hkxrku fd, x, i'ku(

(c) fuèkkfjr de LFkkiu ij yx depkjh(vkj

(d) lfonk ij dk;jr vfèkdkfj;k ij i;kT; ugh gA

7. यहाँ वर्तमान मामले में, रिट आवेदन में और प्रति शपथपत्र में भी किए गए कथन के मुताबिक याची के पिता ने एक वर्ष से अधिक सेवा दिया था। किंतु, प्रति शपथपत्र में कथन किया गया है कि उसे अस्थायी रूप से नियोजित किया गया था। भले ही याची के पिता को अस्थायी रूप से नियोजित किया गया था, याची को उक्त योजना के अधीन लाभ पाने से वर्जित नहीं किया जाएगा क्योंकि पेंशन का गैर हकदार बनाते हुए निर्बंधन याची के मामले पर प्रयोज्य नहीं है क्योंकि यह किसी का मामला नहीं है कि याची का पिता निर्धारित कर्म स्थापन पर कार्यरत कर्मचारी था या आकस्मिक कर्मचारी या संविदा पर कार्यरत कर्मचारी था अथवा वेतन का भुगतान आकस्मिक निधि से किया जा रहा था। इसके विपरीत, मैं पाता हूँ कि प्रति शपथपत्र में कथन है कि याची का पिता वेतन पा रहा था, तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि वह नियमित वेतनमान में था। अतः, भले ही याची का पिता अस्थायी कर्मचारी था, याची मृतक कर्मचारी का पुत्र होने के कारण योजना का लाभ पाएगा। तद्नुसार, मैं बिल्कुल पाता हूँ कि याची पारिवारिक पेंशन योजना के निबंधनानुसार पारिवारिक पेंशन पाने का हकदार होगा।

8. तद्नुसार, प्रत्यर्थी सं॰ 3 जिला कृषि अधिकारी को इस आदेश के आलोक में और परिवार पेंशन योजना, 1964 के रूप में ज्ञात योजना के आलोक में भी इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर याची को पारिवारिक पेंशन के बकाया के भुगतान से संबंधित मामले पर विचार करने का निर्देश देते हुए इस रिट आवेदन को निपटाया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] dk;dkjh e[; U;k;kèkh'k ,o ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

सेंट्रल माइन प्लानिंग एंड डिजाइन इंस्टिच्यूट लि॰, राँची के प्रबंधन के संबंध में नियोक्ता (697 में)

नेशनल कोल वर्कर्स काँग्रेस के कर्मकार अपने महासचिव के प्रतिनिधित्व में और अब उपमहासचिव के प्रतिनिधित्व में (853 में)

cuke

भारत संघ एवं एक अन्य (दोनों में)

L.P.A. Nos. 697 with 853 of 2003. Decided on 18th August, 2011.

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 2 (oo) (bb)—छँटनी–अपवाद–यदि संविदा के अधीन कार्यरत कर्मकार नियोजन की समाप्ति की शर्त अंतर्विष्ट करने वाले संविदा में उल्लिखित अवधि के अवसान पर नियोजन की समाप्ति की शर्त के साथ संविदा पर नियोजन स्वीकार करने के लिए सहमत होता है, तब यह छँटनी नहीं है–वर्तमान में, प्रोजेक्ट में यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ द्वारा 100% निधि दी गयी थी–यदि प्रोजेक्ट के अधीन कार्य अधूरा बना रहा, यह स्वयं में यह विश्वास करने का कारण नहीं हो सकता है कि प्रोजेक्ट संविदा के निबंधनों के परे जारी रहा–समाप्त हो गए प्रोजेक्ट को विद्यमान उपधारित नहीं किया जा सकता है–आक्षेपित अधिनिर्णय अपास्त। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.–(2006) 3 SCC 81—Relied on; JT 2003 (3) SC 436—Referred.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. भारत संघ और कर्मकारगण दोनों सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2406 वर्ष 1997 (R) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 7 जुलाई, 2003 को पारित आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्देश केस सं॰ 51 वर्ष 1993 में दिनांक 1 मई, 1997 को विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनिर्णय को मान्य ठहराया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दिनांक 1 जुलाई, 1992 के प्रभाव से नरेश झा एवं 27 अन्य लोगों की सेवाओं को समाप्त करने की नियोक्ता की कार्रवाई न्यायोचित नहीं है और कर्मकार उस तिथि से 40% बकाया मजदूरी और अन्य लाभों के साथ पुनर्बहाल और नियमित किए जाने के हकदार हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षों के तर्कों पर विचार करने के बाद अभिनिर्धारित किया कि आक्षेपित आदेश के पैराग्राफ 25 में श्रम न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय में कोई अवैधता नहीं है। किंतु, तत्पश्चात संप्रेक्षित किया गया है कि कर्मकारगण पुनर्बहाली के हकदार थे किंतु **एस॰ एम॰ नीलाजकर और 61 अन्य बनाम टेलीकॉम जिला प्रबंधक, कर्नाटक, JT 2003 (3) SC 436,** में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में अधिनिर्णय में परिवर्तन की आवश्यकता है और विद्वान एकल न्यायाधीश ने नियोक्ता को पुनर्बहाल करने और तत्पश्चात यदि अन्य प्रोजेक्ट में इन कर्मकारगण की आवश्यकता नहीं है, तब विधि के प्रावधानों का अनुसरण करते हुए उक्त 28 कर्मचारियों की सेवाओं की छँटनी करने की स्वतंत्रता देते हुए अधिनिर्णय को परिवर्तित कर दिया।

3. नियोक्ता इसी प्रोजेक्ट अथवा किसी अन्य प्रोजेक्ट में कर्मचारियों को पुनर्बहाल करने के लिए पारित आदेश से इस आधार पर व्यथित है कि कर्मकारगण यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ प्रोजेक्ट में काम पर लगाए गए थे और उनकी सेवायें स्वयं नियोजन की संविदा में अंतर्विष्ट शर्त के निबंधनानुसार समाप्त हो गयी थी और इसलिए कर्मकारगण की सेवाओं की समाप्ति औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(oo)(bb) की दृष्टि में छँटनी नहीं थी।

जबकि कर्मकारगण का प्रतिवाद यह है कि जब एकबार विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनिर्णय को मान्य ठहराया है, वह यह पाने पर कि नियोक्ता के किसी अन्य प्रोजेक्ट में कर्मकारगण की आवश्यकता नहीं है, कर्मकारगण की सेवाओं की छँटनी अथवा समाप्ति के लिए अनुमति नहीं दे सकते थे अथवा ऐसा संप्रेक्षण नहीं कर सकते थे। कर्मकारगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार जब श्रम न्यायालय द्वारा सेवा समाप्ति अवैध पाया गया था, तब स्वाभाविक परिणाम अनुसरित किए जाने चाहिए थे और इस उपधारणा के अधीन अथवा किसी अन्य कारण से अधिनिर्णय को परिवर्तित नहीं किया जा सकता था कि इन कर्मकारगण के लिए कोई काम नहीं रहेगा। दूसरी ओर, नियोक्ता के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद है कि अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेज स्पष्टत: दर्शाते हैं कि यह प्रोजेक्ट में दी गयी नियुक्ति थी और, इसलिए, अधिकरण ने और विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी गलत रूप से अभिनिर्धारित किया कि यह धारा 25F के उल्लंघन का मामला था अथवा यह धारा 25G और 25H का मामला है।

4. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया है। दिनांक 5 नवंबर, 1988 के परिशिष्ट-3 के मुताबिक यह प्रकट है कि कर्मकारगण को अकुशल/कुशल काम के रूप में दैनिक दर के आधार पर आकस्मिक नियोजन पर यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ प्रोजेक्ट में नौकरी का प्रस्ताव दिया गया था और यह पूरी तरह से स्पष्ट किया गया था कि नियुक्ति शुद्धत: अस्थायी होगी और भविष्य में कंपनी में किसी नियमित नियुक्ति के लिए उनका कोई दावा या अधिकार नहीं होगा। न केवल यह बल्कि यह भी अत्यन्त स्पष्ट किया गया था कि मॉडलिंग एंड कंट्रोल ऑफ वाटर सिस्टम इन कोल माइनिंग एनवायर्नमेंट, लालमटिया पर यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ प्रोजेक्ट के प्रभारी-अधिकारी के पास कर्तव्य के लिए रिपोर्ट करना होगा। यह तथ्य विवादित नहीं है कि नियोजन यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ प्रोजेक्ट के अधीन था और यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ ने 100% निधि दिया था और उक्त परिशिष्ट में कॉलम सं॰ 6 में यह स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ प्रोजेक्ट के अधीन नियुक्ति की प्रकृति अस्थायी होगी। प्रबंधन ने प्रोजेक्ट समाप्त होने के पहले प्रोजेक्ट में काम पर लगाए गए कर्मकारगण की सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय लिया जो परिशिष्ट-4 से स्पष्ट है। परिशिष्ट-4, जो नियोक्ता का गोपनीय टिप्पणी है, निम्नलिखित कथन करता है:-

*^^;0 ,u0 MhO ih0 çkt DV fnukd 30.6.92 dk lekIr gk jgk gA vr% bl çkt DV d fo#) lpic) vkj ble dke ij yxk, x, lHkh dedkjk dh lok; fnukd 30.6.92 d çHkko l lekIr gk tkuh gA (A.N.)***

इस परिशिष्ट-4 में, 28 कर्मकारों के नाम हैं जो हमारे समक्ष कर्मकार के रूप में हैं। यह दस्तावेज स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि उपर निर्दिष्ट परिशिष्ट-3 द्वारा दिए गए प्रस्ताव के अधीन काम पर लगाए गए कर्मकारों की सेवाओं को समाप्त करने का निर्णय नियोक्ता द्वारा लिया गया था। यह भी स्वीकृत मामला है कि दिनांक 30 जून, 1992 के बाद अर्थात् दिनांक 1 जुलाई, 1992 से कर्मकारों को काम, जिसके आधार पर उक्त प्रोजेक्ट के अधीन उन्हें नियुक्ति दी गयी थी, करने की अनुमति नहीं दी गयी थी। अत: नियोक्ता ने नियुक्ति की संविदा के निबंधनों के अनुरूप कृत्य किया, जो यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ द्वारा पूर्णत: दी गयी निधि प्रोजेक्ट के अधीन था।

5. धारा 2(oo)(bb) स्पष्टत: छँटनी का अपवाद प्रावधानित करती है जब कर्मकार की सेवा समाप्ति उसमें अंतर्विष्ट उस निमित्त अनुबंध के अधीन समाप्त की जा रही ऐसी संविदा के अवसान पर नियोक्ता और संबंधित कर्मकार के बीच नियोजन की संविदा के अनवीकरण के परिणाम के कारण है। तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि यदि कर्मकारी नियोजन की समाप्ति की शर्त अंतर्विष्ट करने वाली संविदा अथवा संविदा में उल्लिखित निबंधनों के अवसान पर नियोजन की समाप्ति के शर्त के साथ नियोजन स्वीकार करने के लिए सहमत होता है, तब यह छँटनी नहीं है। उक्त विवाद्यक **नगरपालिका परिषद्, समराला बनाम राजकुमार, (2006)3 SCC 81,** में विचाराधीन था, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित

किया कि धारा 2(oo) (bb) का प्रथम भाग नियोजन की संविदा के अनवीकरण अथवा इसके अवसान पर सेवा समाप्ति अनुध्यात करता है और धारा 2(oo) (bb) का दूसरा भाग उस निमित्त अंतर्विष्ट अनुबंध के निबंधनानुसार नियोजन की ऐसी संविदा की समाप्ति प्रतिपादित करता है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 2 (oo) (bb) छँटनी के वर्ग के प्रति अपवाद है जैसा औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में परिभाषित किया गया है। **नगरपालिका परिषद्, समराला बनाम राजकुमार** के मामले में एस॰ एम॰ निलजगर द्वारा प्रदत्त निर्णय जो विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया था, पर भी विचार किया गया था और **नगरपालिका परिषद्, समराला बनाम राजकुमार** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि एस॰ एम॰ नीलजकर मामले में दिया गया निर्णय इस प्रतिपादना पर प्रामाणिक निर्णय नहीं है कि अस्थायी कालावधि के प्रोजेक्ट अथवा योजना के अलावा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(oo) (bb) की प्रयोज्यता नहीं होगी। मामले के तथ्यों में अभिनिर्धारित किया गया था कि चूँकि इस निबंधन को स्पष्टत: अंतर्विष्ट करने वाला नियुक्ति का प्रस्ताव कि संविदा अल्पकालिक थी और समाप्ति की दायी होगी जैसे और जब नियोक्ता ऐसा करना सुयोग्य और समुचित अथवा आवश्यक समझता है, जिस निबंधन को प्रत्यर्थी कर्मकार द्वारा समझ लिया गया था और शपथ पत्र द्वारा अभिपुष्ट किया गया था, अत: मामला स्पष्टत: धारा 2(oo) (bb) के दूसरे भाग के अधीन आता है और, इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने श्रम न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय अपास्त कर दिया।

6. यहाँ, इस मामले में, यह प्रतीत होता है कि श्रम न्यायालय और विद्वान एकल न्यायाधीश कुछ उपधारणा पर अग्रसर हुए और कुछ अटकलों के आधार पर मामला विनिश्चित किया जिसकी कोई भी प्रासंगिकता इस तथ्य की दृष्टि में नहीं थी कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने नियोक्ता द्वारा विरचित नियोजन के स्थायी आदेश पर विचार किया जो उन कर्मचारियों की सेवा शर्तों को आच्छादित करता है जिन्हें नियोक्ता द्वारा प्रत्यक्षत: नियोजित किया गया था और न कि किसी प्रोजेक्ट के अधीन और ऐसा करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश खान अधिनियम की धारा 48 और उक्त प्रावधानों के अधीन रजिस्टर के अनुरक्षण के प्रावधानों के प्रभाव पर विचार करने के लिए अग्रसर हुए और स्थायी आदेश के खंड 3.1, 3.4 और 3.5, विशेषत: खंड 3.5 पर भी विचार किया जिसमें कथन किया गया है कि 'स्थायी कर्मकार' वह है जिसे कम से कम छह माह की अवधि के लिए स्थायी प्रकृति के काम पर नियोजित किया गया है अथवा जिसने प्रोबेशनर के रूप में स्थायी पद पर छह माह की निरंतर सेवा संतोषजनक रूप से दिया है। प्रतीत होता है कि उक्त खंडों को इस प्रकार लागू किया गया है मानों कर्मकारगण, जिन्हें प्रोजेक्ट के अधीन नियुक्ति दी गयी है, नियोक्ता के प्रत्यक्ष कर्मचारी थे इस तथ्य को अनदेखा करते हुए कि उन कर्मकारगण की नियुक्ति की प्रकृति क्या है। नियोक्ता द्वारा कर्मकारगण को दिए गए प्रस्ताव पत्र में अंतर्विष्ट शर्त स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि कर्मकारगण को प्रोजेक्ट के अधीन नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था और न कि स्वयं नियोक्ता के नियोजन के अधीन। यहाँ यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ द्वारा प्रोजेक्ट के लिए 100% धन दिया गया था। उस स्थिति में, यदि कर्मकारगण का गवाह, जिसका साक्ष्य कर्मकारगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, उपदर्शित करता है कि प्रोजेक्ट के अधीन काम अधूरा बना रहा, यह स्वयं में यह विश्वास करने का कारण नहीं हो सकता है कि प्रोजेक्ट नियोक्ता और यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ के बीच हुए प्रोजेक्ट की संविदा के निबंधनों के परे जारी रहा। किसी प्रोजेक्ट के अधीन, संविदा की अवधि के अवसान के फलस्वरूप काम पूरा नहीं हो सकता है। प्रोजेक्ट के अधीन, प्रोजेक्ट की अवधि के अवसान पर अथवा कोष समाप्त हो जाने पर, यदि काम पूरा नहीं हुआ है और नियोक्ता स्वयं अपने संसाधनों और कर्मचारीगण से उस काम को पूरा करने का वचन देता है, यह स्वयं प्रोजेक्ट को जारी रखना नहीं है बल्कि नियोक्ता का स्वतंत्र और पृथक काम है।

प्रोजेक्ट जो समाप्त हो गया है, को जारी रहना उपधारित नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रोजेक्ट की अवधि की समाप्ति के बाद प्रोजेक्ट में कुछ अथवा मुख्य काम को अधूरा छोड़ दिया गया है और प्रतीत होता है कि इस सुभिन्नता को श्रम न्यायालय और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा ध्यान में नहीं लिया गया है और इसलिए वे यह संप्रेक्षित करने के लिए अग्रसर हुए कि चूँकि प्रोजेक्ट के अधीन काम पूरा नहीं किया गया था, अत: करार, जिसके लिए नियोक्ता यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ से 100% कोष पा रहा था, की अवधि के परे प्रोजेक्ट जारी रहा।

7. इसके अतिरिक्त, श्रम न्यायालय और विद्वान एकल पीठ दो प्रोजेक्टों, एक जो हमारे समक्ष विचाराधीन है और दूसरा मीरानगर कैंप के प्रोजेक्ट, के बीच सुभिन्नता करने में विफल रहे। कर्मकारगण के विद्वान अधिवक्ता ने खुले मन से और निष्पक्षत: स्वीकार किया कि काम यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ के अधीन नहीं था बल्कि भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के प्रोजेक्ट के अधीन था। मामले के उस दृष्टिकोण में, दोनों प्रोजेक्ट के कर्मचारियों को किसी प्रयोजन से एक साथ मिश्रित नहीं किया जा सकता था और एक प्रोजेक्ट की संविदा की समाप्ति का अन्य प्रोजेक्ट के जारी रहने पर अथवा दूसरे प्रोजेक्ट में कर्मचारियों के आमेलन, यदि नियोक्ता ने दूसरे प्रोजेक्ट के कर्मचारियों को आमेलित करने का फैसला किया था, पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता है। इन दो प्रोजेक्टों में कोई समरुपता नहीं है।

8. कर्मकारगण के विद्वान अधिवक्ता प्राख्यान करते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रोजेक्ट के जारी रहने के संबंध में तथ्य के निष्कर्ष को मान्य ठहराया है जो, जैसी चर्चा हमने ऊपर की है, किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं प्रतीत होता है और नियोक्ता के गवाहों के मौखिक साक्ष्य का अपपठन किया गया है और दस्तावेजी साक्ष्य, परिशिष्ट-4 के आलोक में किसी गवाह के मौखिक साक्ष्य का कोई मूल्य नहीं है। इस स्थिति में, भले ही अन्य प्रोजेक्ट के कर्मचारी बने हुए थे, तब भी धारा 25G लागू नहीं की जा सकती है क्योंकि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25G कर्मकारगण के उस वर्ग पर लागू की जा सकती है जो एक ही वर्ग में हैं और इसलिए ऐसे मामले में जहाँ 28 कर्मचारियों में से कुछ को हटाया गया होता, तब धारा 25G का अवलंब लिया जा सकता था ताकि कहा जा सके कि 'अंत में आने वाले को पहले जाना चाहिए।' इस मामले में, समस्त 28 व्यक्तियों, जिन्हें प्रोजेक्ट के अधीन नियोजन का प्रस्ताव दिया गया था, की सेवायें दिनांक 1 जुलाई, 1992 के प्रभाव से समाप्त की गयी है।

9. उक्त कारणों की दृष्टि में, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 7 जुलाई, 2003 का आक्षेपित आदेश और दिनांक 1 मई, 1993 का अधिनिर्णय अपास्त किए जाने योग्य है और इसलिए दोनों अपास्त किए जाते हैं।

चूँकि स्वयं अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया गया है, कर्मकारगण द्वारा दाखिल एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किए जाने का दायी है क्योंकि उक्त एल॰ पी॰ ए॰ विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रदान किए गए अनुतोष की तुलना में अधिक अनुतोष पाने के लिए दाखिल किया गया है; जबकि कर्मकारगण को अनुतोष प्रदान किए जाने की जड़ को ही इस न्यायालय द्वारा इनकार किया गया है। अत:, कर्मकारगण द्वारा दाखिल अपील (एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 853 वर्ष 2003) खारिज किया जाता है और नियोक्ता द्वारा दाखिल अपील (एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 697 वर्ष 2003) अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

आलोक कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2718 of 2006. Decided on 24th August, 2011.

सेवा विधि–प्रोन्नति–एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना–ए॰ सी॰ पी॰ योजना के अधीन प्रोन्नति सामान्यतः उस पदधारी को दी जाती है जिसे सेवा के 12 वर्षों की अवधि के भीतर प्रोन्नति नहीं दी गयी है–हो सकता है कि कुछ अन्य लाभों के लिए सेवा चालू हो किंतु ए॰ सी॰ पी॰ योजना के अधीन लाभों को प्रदान करने के लिए इसपर विचार नहीं किया जा सकता है–याची आरंभ में केंद्रीय सहायक आसूचना अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया था जो उस पद की तुलना में बिल्कुल एक अन्य पद है जिसपर प्रतियोगिता परीक्षा में अर्हित होने के बाद याची को बाद में नियुक्त किया गया था–ए॰ सी॰ पी॰ योजना के अधीन लाभ प्रदान करने के लिए केंद्रीय सहायक आसूचना अधिकारी के पद पर याची द्वारा दी गयी पूर्व सेवाओं को सही प्रकार से प्रत्यर्थीगण द्वारा संगणित नहीं किया गया–याचिका खारिज। (पैराएँ 4, 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Ashok Kr. Yadav, For the Petitioner; J.C. to G.P-II, For the State.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका याची द्वारा एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना के अधीन लाभ पाने के लिए इस आधार पर दाखिल की गयी है कि उसे वर्ष 1991 में आरंभ में सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था जबकि प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 से उप–कलक्टर के पद पर उसकी नियुक्ति पर विचार कर रहे हैं और सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के रूप में याची द्वारा दी गयी सेवा को एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना के अधीन लाभ देने के लिए संगणित नहीं किया जा रहा है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को तत्कालीन बिहार राज्य में आरंभ में वर्ष 1991 में सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात याची ने दिनांक 31 दिसंबर, 1997 को बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा जारी सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसार राज्य प्रशासनिक सेवा में अपने चयन के लिए आवेदन दिया और लिखित एवं मौखिक संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा में उपस्थित हुआ और उपकलक्टर के नए पद के लिए चुना गया। तत्पश्चात, याची ने दिनांक 15 अक्टूबर, 2000 को पूर्व पद से त्याग पत्र दे दिया और उसी दिन नए पद अर्थात् उप–कलक्टर का प्रभार लिया। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि चूँकि याची ने वर्ष 1991 और इसके आगे सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के रूप में सेवा दिया था, पेंशन लाभों के लिए उसकी पूर्व सेवाओं पर विचार किया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका के मेमो के परिशिष्ट–11 और 12 पर विश्वास करते हुए निवेदन किया है कि पेंशन लाभों के लिए वर्ष 1991 से 15/16 अक्टूबर, 2000 तक दी गयी उसकी पूर्व सेवाओं को परिशिष्ट 11 द्वारा संगणित किया गया है। इसी प्रकार से, परिशिष्ट–12 द्वारा सेवाओं की निरंतरता पर विचार किया गया है और उसका वेतन संरक्षित किया गया है और इसलिए एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना के अधीन लाभ प्रदान करने के लिए भी प्रत्यर्थीगण को उसकी सेवाओं की गणना वर्ष 1991 से करना चाहिए था।

3. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को वर्ष 1991 में सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और, तत्पश्चात, वह सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसरण में वर्ष 1997 में संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा में उपस्थित हुआ और बाद में, उसके चयन पर, उसे उपकलक्टर के पद पर नियुक्त किया गया था। उपकलक्टर का पद नया और नयी सेवा होने के कारण याची ने सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के पूर्व पद से त्याग पत्र दे दिया और तत्पश्चात, वर्तमान

याची को दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 के प्रभाव से उपकलक्टर के रूप में नियुक्त किया गया है और, इसलिए, एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना के अधीन लाभ प्रदान करने के लिए उसकी सेवाओं पर दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 के प्रभाव से विचार किया जा सकता है, क्योंकि पश्चातवर्ती पद एक नया पद है जिस पर याची को संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से चयनित किया गया है। सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी के रूप में याची द्वारा दी गयी पूर्व सेवा पर केवल पेंशन लाभों और/अथवा सेवा में निरंतरता और वेतन सुरक्षा के प्रयोजन से याचिका के मेमो के परिशिष्ट–11 और 12 के तहत विचार किया गया है। किंतु एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना के अधीन लाभ वर्ष 1991 से और इसके आगे उसके द्वारा दी गयी सेवा पर विचार करते हुए याची को नहीं दिया जा सकता है और, इस प्रकार, दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 से उप कलक्टर के नए पद पर याची की सेवाओं पर विचार करने में प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गयी है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए वर्ष 1991 से और इसके आगे उसकी सेवाओं की संगणना करते हुए याची निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन योजना के अधीन लाभ का हकदार नहीं है:–

(i) ;kph dk vkjHk e fnukd 19.9.1991 dk vkj l lgk;d dnh; vkIpuk vfèkdkjh d :i e fu;Dr fd;k x;k vkj rc l og mDr in ij cuk gvk FkkA bl vofèk d nkjku] 42oh l;Dr çfr;kfxrk ijh{kk d fy, fcgkj ykd lok vk;kx }kjk fnukd 31 fnlcj] 1997 dk lkotfud foKkiu fudkyk x;k FkkA ;kph u mDr l;Dr çfr;kfxrk ijh{kk e mifLFkr gku d fy, vkonu fn;kA

(ii) ekey d rF;k l vkx çrhr gkrk g fd ;kph u ekf[kd vkj fyf[kr ijh{kkvk e mÙkh.k gvk vkj mi dyDVj d in d fy, mldk p;u fd;k x;k Fkk vkj blh in ij fnukd 15/16 vDVcj] 2000 dk fu;Dr fd;k x;k Fkk tk ,d fcYdy u;k in gA

(iii) rRi'pkr ;kph u fnukd 15/16 vDVcj] 2000 dk lgk;d dnh; vkIpuk vfèkdkjh d in l R;kx i= n fn;k vkj mlh fnu midyDVj dk u;k in xg.k fd;k] fdr] rF; cuk jgrk g fd midyDVj dk u;k in fcYdy fHkUu in g ftld fy, fcgkj jkT; ykd lok vk;kx }kjk çfr;kfxrk ijh{kk yh x;h Fkh vkj] blfy,] ;kph u fnukd 15/16 vDVcj] 2000 dk vkj l mi&dyDVj dk in xg.k fd;k vkj blfy, doy fnukd 15/16 vDVcj] 2000 d çHkko l mldh lokvk dh lx.kuk djr g, ;kph dk ,';kM dfj;j ikx'ku Ldhe dk ykHk fn;k tk ldrk gA

(iv) ;kph d fo}ku vfèkoDrk u fuonu fd;k fd ;kfpdk d eek d ifjf'k"V&11 vkj 12 d vkèkkj ij fnukd 9.9.1991 l 15 vDVcj] 2000 rd mldh io lokvk dh lx.kuk i'ku ykHkk vkj ,l vU; ykHkk d fy, dh x;h g vkj] blfy,] ,';kM dfj;j ikx'ku Ldhe d vèkhu ykHkk dk çnku dju d fy, iokDr vofèk d fy, Hkh mldh lokvk dh lx.kuk dh tkuh pkfg,A

;kph d fnekx e fofèk dh Hkked èkkj.kk gA ,';kM dfj;j ikx'ku Ldhe d vèkhu ykHkk dk çnk; fcYdy nljh phtg vkj blfy, bl ifjf'k"V&11 vkj 12

e fufn"V ugh fd;k x;k gA ,';kM dfj;j ikx'ku Ldhe d vèkhu ykHk lkekU; r% ml inèkkjh dk çnku fd;k tkrk g ft l 12 o"kk dh lokofèk d Hkhrj çkUufr ugh nh x;h gA

(v) ;kph d fo}ku vfèkoDrk dk rd g fd o"k 1991 l fnukd 15/16 vDVcj] 2000 rd ml d }kjk nh x;h io lokvk dk midyDVj d in ij ,';kM dfj;j ikx'ku Ldhe d vèkhu ykHk çnku dju d fy, lxf.kr fd;k tkuk pkfg,A

यदि इस तर्क को स्वीकार किया जाता है, तब मात्र दो-तीन वर्षों के भीतर याची उपकलक्टर के नए पद पर एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ पाने का हकदार बन जाएगा। यह विधि की दृष्टि में अनुज्ञेय नहीं है। परिशिष्ट-11 और 12 के मुताबिक कुछ अन्य लाभों के लिए सेवा की निरंतरता हो सकती है किंतु एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ प्रदान करने के लिए इस पर विचार नहीं किया जा सकता है। सहायक केंद्रीय आसूचना अधिकारी का पद उपकलक्टर के पद की तुलना में बिल्कुल भिन्न पद है जिसके लिए याची लोक सेवा आयोग के माध्यम से प्रतियोगिता परीक्षा में उपस्थित हुआ है और लिखित एवं मौखिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर याची को उपकलक्टर के बिल्कुल नए पद पर नियुक्त किया गया है। अत: एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ प्रदान करने के लिए दिनांक 9.9.1991 से दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 तक याची द्वारा दी गयी पूर्व सेवाओं को सही प्रकार से प्रत्यर्थीगण द्वारा संगणित नहीं किया गया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि इस पद पर भी याची को एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ नहीं दिया गया है।

6. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उपकलक्टर के पद पर दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 से उसकी सेवाओं की संगणना करते हुए याची को ऐसे लाभ दिए जाएँगे और यह काम इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से आठ सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थीगण द्वारा पूरा कर लिया जाएगा और इन्हें याची पर प्रयोज्य विधि, नियमों, विनियमों, नीतियों और प्रवर्तनीय सरकारी आदेशों के अनुरुप दिया जाएगा।

7. पूर्वोक्त निवेदन की दृष्टि में, उपकलक्टर के सम्यक पद पर दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 से उसकी सेवाओं की संगणना करते हुए याची एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ का हकदार होगा और एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ के प्रदाय के लिए दिनांक 9.9.1991 से दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 तक याची द्वारा दी गयी पूर्व सेवाओं को विचार में नहीं लिया जाएगा। तद्नुसार, दिनांक 9.9.1991 से दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 तक सेवा की इस अवधि को छोड़ने में प्रत्यर्थी राज्य द्वारा कोई गलती नहीं की गयी है, जैसा यहाँ ऊपर कथन किया गया है और यह सत्य है कि याची दिनांक 15/16 अक्टूबर, 2000 को और से उपकलक्टर के पद पर एश्योर्ड कैरियर प्रोग्रेशन स्कीम के अधीन लाभ का हकदार है। यह लाभ याची पर प्रयोज्य विधि, नियमों, विनियमों, नीतियों और प्रवर्तनीय सरकारी आदेशों के अनुरुप इस न्यायालय के आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा याची को दिया जाएगा।

8. तद्नुसार, पूर्वोक्त निर्देशों के साथ यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkkVV] U;k;efr

नीरज कुमार सिंह

cuke

भारत संघ एवं अन्य

W.P. (S) No. 202 of 2011. Decided on 23rd November, 2011.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–सेवा समाप्ति–याची को पिछली तिथि से नियुक्ति दी गयी–समस्त पाँच पदों को भरा गया था और कोई रिक्त पद विद्यमान नहीं था–स्क्रीनिंग कमिटि के अनुमोदन के बिना नियुक्ति दी गयी थी–आवेदन अस्वीकृत करने में अधिकरण सही था–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 4 एवं 6)

अधिवक्तागण.–M/s Satish Bakshi, M.A. Khan, M. Singh, For the Petitioner; Mr.M.M. Khan, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ओ॰ ए॰ सं॰ 150 वर्ष 2010 में केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना पीठ, पटना, सर्किट न्यायालय, राँची द्वारा दिनांक 7 दिसंबर, 2010 के आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा दिनांक 4.8.2010 को पारित आदेश, जिसके द्वारा उसकी सेवाएँ दिनांक 16 अगस्त, 2010 के प्रभाव से समाप्त कर दी गयी है, के अभिखंडन के लिए याची का ओ॰ ए॰ अस्वीकार कर दिया गया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को रिक्त पद पर सम्यक् रूप से नियुक्त किया गया था और उसकी सेवायें उसको नोटिस दिए बिना समाप्त कर दी गयी है। यह निवेदन भी किया गया है कि यदि नियुक्ति देने के पहले किसी स्क्रीनिंग कमिटि द्वारा स्क्रीनिंग की कोई प्रक्रिया करनी थी, तब यह याची की जानकारी में नहीं था और यह कि स्क्रीनिंग नियुक्ति के बाद भी की जा सकती थी। याची के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान उत्तर में पैरा 10 में कथित तथ्यों की ओर आकृष्ट किया जिसमें यह विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी–याची को पीठासीन अधिकारी, जो अधिकरण के भर्ती नियम के मुताबिक नियुक्ति प्राधिकारी है, द्वारा मंजूर और रिक्त पद के विरुद्ध नियुक्त किया गया था।

4. हमारा सुविचारित मत है कि परिशिष्ट–4 में अभिकथित नियुक्ति की तिथि दिनांक 13 फरवरी, 2009 है और याची को नियुक्ति पिछली तिथि अर्थात् दिनांक 12 फरवरी, 2009 से दी गयी है, इसलिए नियुक्ति पूर्व दिनांकित है। दिनांक 12 अथवा 13 फरवरी, 2009 की इस नियुक्ति के बाद भी श्रम एवं नियोजन मंत्रालय, नयी दिल्ली ने किसी विलंब के बिना दिनांक 5 मार्च, 2009 को पत्र जारी किया कि प्रश्नगत पद रिक्त नहीं था और स्क्रीनिंग कमिटि का सामना करने के बाद नियुक्ति नहीं की गयी है। यद्यपि, उत्तर में कथन किया गया है कि नियुक्ति मंजूर पद के विरुद्ध की गयी थी, किंतु उत्तर के साथ संबद्ध परिशिष्ट जिसे पूरक शपथपत्र के साथ परिशिष्ट–13 के रूप में याची द्वारा दाखिल किया गया है जिसमें यह स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि पाँच पद थे और उन सबों को भर दिया गया था और कोई रिक्त पद विद्यमान नहीं था और नियुक्ति स्क्रीनिंग कमिटि के अनुमोदन के बिना दी गयी थी, की दृष्टि में यह तथ्य का बिल्कुल गलत बयान था।

5. उक्त कारणों की दृष्टि में, अधिकरण ओ॰ ए॰ अस्वीकार करने में बिल्कुल सही था। गुणागुण रहित होने के कारण रिट याचिका खारिज की जाती है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

मनोरंजन मुखर्जी

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Miscellaneous No. 3048 of 1999 (R). Decided on 24th November, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 167, 465, 409 सह-पठित धारा 109—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लोक सेवक द्वारा न्यास का दांडिक भंग और कूट रचना–संज्ञान–रेलवे क्वार्टर में समय से अधिक ठहरना–जब यह पाया गया था कि परिवादी ने अवधि, जिसके लिए उसे क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति दी गयी थी, के अवसान के बावजूद क्वार्टर खाली नहीं किया, तब मामले का दर्ज किया जाना याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 167 के कार्यक्षेत्र के अधीन नहीं ला सकता है–यह बिल्कुल अनधिसंभाव्य है कि परिवादी को केवल सेवानिवृत्ति के लाभों से इनकार करने के प्रयोजन से बेदखली वाद दाखिल किया जाएगा–धारा 167 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है–धाराएँ 465 अथवा 409 के अधीन अपराध निर्मित नहीं होते हैं–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 8 से 10)

अधिवक्तागण.–None, For the Petitioner; Mr. Krishna Shankar, For the State.

आदेश

राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह आवेदन धनबाद पी॰ एस॰ केस सं॰ 517 वर्ष 1996 से उद्भूत होने वाले सी॰ पी॰ केस सं॰ 392 वर्ष 1996 में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही और दिनांक 1.9.1997 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन तत्कालीन विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद ने याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 167, 465, 409 सह-पठित धारा 109 के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया था।

3. आदेश के परिशीलन से सामने आने वाले तथ्य ये हैं कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 रेलवे गार्ड दिनांक 1.7.1994 को सेवानिवृत्त हुआ। वह क्वार्टर में रह रहा था। अपनी सेवानिवृत्ति पर उसने आगे आठ माह के लिए क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति उसको देने के लिए रेलवे प्राधिकारियों से अनुरोध किया। उसे क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति दी गयी थी।

4. परिवादी के मामले के अनुसार, उस अवधि के अवसान के बाद, उसने 26.2.1995 को क्वार्टर खाली कर दिया। उसके क्वार्टर खाली करने पर, उसे अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी किया गया था किंतु उसके बावजूद, उसके सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान इस कारण से नहीं किया गया था कि अवधि, जिसके दौरान उसे क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति दी गयी थी, बीतने के बावजूद परिवादी ने क्वार्टर खाली नहीं किया था जिसके लिए डी॰ आर॰ एम॰, धनबाद और एस॰ एम॰, धनबाद ने एच॰ आर॰ यादव के साथ दुरभिसंधि करके सार्वजनिक परिसर (अप्राधिकृत अधिभोगी की बेदखली) अधिनियम के प्रावधानों के अधीन क्वार्टर से याची की बेदखली के लिए मामला संस्थापित करवाया गया था, यद्यपि उस क्वार्टर को परिवादी द्वारा काफी पहले खाली कर दिया गया था किंतु इसे इस अभिवचन कि परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने क्वार्टर खाली नहीं किया है, की आड़ में सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान नहीं करके याची को हानि

पहुँचाने की दृष्टि से दर्ज किया गया था। ऐसे तथ्य पर जब भारतीय दंड संहिता की धाराओं 109, 465 और 409 के अधीन धनबाद पी॰ एस॰ केस सं॰ 517 वर्ष 1996 दर्ज किया गया था, मामले का अन्वेषण अन्वेषण अधिकारी द्वारा किया गया था और अन्वेषण अधिकारी ने अंतिम फॉर्म तथ्य की गलती के रूप में प्रस्तुत किया। तदुपरांत, विरोध याचिका दाखिल की गयी थी, जिस पर इस तथ्य को दर्ज करते हुए कि यद्यपि परिवादी ने क्वार्टर खाली कर दिया था, बेदखली वाद केवल इस प्रयोजन से दाखिल किया गया था कि याची को सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान नहीं किया जाए, दिनांक 1.9.1997 के आदेश के तहत पूर्वोक्तानुसार अपराधों का संज्ञान लिया गया था। पूर्वोक्त परिस्थितियों में, यह मामला संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के और याची के विरुद्ध पूर्वोक्तानुसार अपराध का संज्ञान लेने वाले आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

5. याचिका में कथन किया गया है कि अवधि, जिसके लिए क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति उसे दी गयी थी, के अवसान के बावजूद जब परिवादी ने क्वार्टर खाली नहीं किया था, दिनांक 12.1.1996 को केस सं॰ E 203/96/DEN/HQ के तहत बेदखली वाद दाखिल किया गया था। उस मामले में, परिवादी को नोटिस दिया गया था जिसका उसने कभी जवाब नहीं दिया और तब उक्त क्वार्टर से उसकी बेदखली के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विरुद्ध दिनांक 20.5.1996 को संपदा अधिकारी ने आदेश पारित किया। उस आदेश के बावजूद जब क्वार्टर खाली नहीं किया गया था, संपदा अधिकारी ने दिनांक 6.6.1996 को सब डिविजनल अधिकारी, धनबाद ने एक दंडाधिकारी प्रतिनियुक्त करने का अनुरोध किया ताकि क्वार्टर खाली करवाया जा सके।

6. आगे मामला है कि केवल तत्पश्चात परिवाद झूठे अभिकथन के साथ दाखिल किया गया कि उसने पहले ही क्वार्टर खाली कर दिया है और इस प्रकार, वर्तमान अभियोजन द्वेष से कलंकित है और अपास्त किए जाने योग्य है।

7. याची के मामले में गए बिना यह देखा जाना है कि क्या प्राथमिकी/परिवाद भारतीय दंड संहिता की धाराओं 167, 465 और 409 सह-पठित धारा 100 के अधीन कोई मामला बनाता है, यदि परिवाद में किए गए अभिकथन को सत्य माना जाता है अथवा परिवादी का मामला बिल्कुल अनधिसंभाव्य है?

8. जैसा पहले ही दर्ज किया गया है कि बेदखली का मामला तब दर्ज किया गया था जब यह पाया गया था कि परिवादी ने अवधि, जिसके दौरान क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति उसे दी गयी थी, के अवसान के बावजूद क्वार्टर खाली नहीं किया था और तब मामला दर्ज किया जाना भारतीय दंड संहिता की धारा 167 के कार्यक्षेत्र के अधीन याची को नहीं ला सकता है जो उपहति कारित करने के आशय के साथ लोक सेवक द्वारा गलत दस्तावेजों को विरचित करने के अपराध पर विचार करता है। यह बिल्कुल अनधिसंभाव्य प्रतीत होता है कि बेदखली वाद केवल परिवादी को सेवानिवृत्ति लाभ से इनकार करने के प्रयोजन से दाखिल किया जाएगा और इस प्रकार, मेरी दृष्टि में, धारा 167 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है।

9. आगे दर्ज किया जाए कि पूर्वोक्त मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 465 अथवा 409 के अधीन अपराध कभी नहीं गठित करेगा क्योंकि याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 464 के निबंधनानुसार, झूठा दस्तावेज निर्मित करने वाला नहीं कहा जा सकता है और न ही याची को न्यास के दांडिक भंग का अपराध करता हुआ कहा जा सकता है क्योंकि तथ्यों और परिस्थितियों में याची को उस राशि, जिसे परिवादी को स्वयं उसके इस्तेमाल के लिए भुगतान किया जाना था, को गैर-ईमानदार रूप से दुर्विनियोजित करता हुआ कभी नहीं कहा जा सकता है।

10. इन परिस्थितियों के अधीन, धनबाद पी॰ एस॰ केस सं॰ 517 वर्ष 1996 से उद्भूत होने वाली सी॰ पी॰ केस सं॰ 392 वर्ष 1996 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही और मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद

द्वारा पारित दिनांक 1.9.1997 का अपराध का संज्ञान लेने वाले आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k

रणविजय प्रकाश सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) No. 28 of 2009. Decided on 25th November, 2011.

रेलवे सुरक्षा बल अधिनियम, 1957—धारा 20—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 323, 504 एवं 385—आर॰ पी॰ एफ॰ सब-इंस्पेक्टर का दांडिक अभियोजन–अधिनियम 1957 की धारा 20 भा॰ दं॰ सं॰ के प्रावधानों के अधीन दंडनीय अपराध पर प्रयोज्य नहीं है–विधिपूर्ण कार्रवाई, न कि विधि विरूद्ध कार्रवाई के लिए सुरक्षा उपलब्ध है–परिवाद दाखिल करने में विलंब और गवाहों के बयानों में विरोधाभास, इत्यादि परिवाद अभिखंडित करने का आधार नहीं हो सकते हैं–याचिका खारिज। (पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–M/s. D.P. Jerath, A. Kumar, V.K. Vashistha, V. V. Pradhan, For the Appellant/Petitioner; APP, For the Respondent State; Mr. M.B. Lal, For the Respondent No.2.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने सी॰ पी॰ केस सं॰ 1972/2007 के संबंध में आरंभ की गयी संपूर्ण दांडिक कार्यवाही और दिनांक 16 सितंबर, 2008 के संज्ञान लेने वाले आदेश को चुनौती दिया है।

3. यह विवादित नहीं है कि याची रेलवे सुरक्षा बल में सब-इंस्पेक्टर का पद धारण कर रहा था और याची के अनुसार, दिनांक 3 अक्टूबर, 2007 को उसे सूचना मिली कि कुछ सामग्रियों, जिन्हें रेलवे वैगनों के माध्यम से परिवहित किया जा रहा था, को रेल की पटरी पर पाया गया था और उसने उसी दिन इस तथ्य को आर॰ पी॰ एफ॰ आउटपोस्ट, महुदा के दैनिक डायरी में प्रविष्ट किया और केस सं॰ सी॰ 5-1, आदि दर्ज किया। परिवादी-प्रत्यर्थी को दिनांक 5 अक्टूबर, 2007 को ही गिरफ्तार कर लिया गया था और औपचारिक प्राथमिकी जो विस्तृत प्राथमिकी थी, दर्ज करने के बाद दिनांक 5 अक्टूबर, 2007 को ही परिवादी को न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था। याची के अनुसार, दिनांक 5 अक्टूबर, 2007 को ही परिवादी-प्रत्यर्थी का इकबालिया बयान दर्ज किया गया था और अन्य गवाहों का परीक्षण भी किया गया था। याची की इस कार्रवाई, जिसे रेलवे सुरक्षा बल अधिनियम, 1957 के अधीन अपने सरकारी कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था, से व्यथित होकर परिवादी ने विलंब के बाद दिनांक 10 दिसंबर, 2007 को अवर न्यायालय में परिवाद दाखिल किया जिसमें परिवादी और उसके गवाहों का परीक्षण किया गया था और दिनांक 16 सिंतबर, 2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा संज्ञान लिया गया था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि याची के विरुद्ध कार्रवाई आरंभ नहीं की जा सकती थी क्योंकि उसकी कार्रवाई रेलवे सुरक्षा बल अधिनियम, 1957 की धारा 20 के अधीन

संरक्षित है और याची के विरुद्ध परिवादी–प्रत्यर्थी के किसी शिकायत के लिए उसने अधिनियम, 1957 की धारा 20(3) का अनुपालन नहीं किया है, जो आज्ञा देती है कि कोई विधिक कार्यवाही, सिविल अथवा दांडिक, रेलवे सुरक्षा बल के सदस्यों के विरुद्ध केवल ऐसी कार्यवाही के लिए लिखित में नोटिस जारी करने के बाद आरंभ की जा सकती है और परिवाद किए गए मामले की तिथि से तीन माह के भीतर कार्यवाही आरंभ हो सकती थी।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि यदि ऐसी सुरक्षा याची को उपलब्ध नहीं करायी जाती है, रेलवे के सशस्त्र बल के सदस्यों का मनोबल टूट जाएगा। याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि परिवाद अत्यधिक विलम्ब के उपरांत दाखिल किया गया है। यह निवेदन किया गया कि परिवादी द्वारा लगाये गए आरोप, परिवाद में किए गए अभिकथनों की अत्यन्त अनधिसंभाव्यता की दृष्टि में और गवाहों के बयानों में विरोधाभास की दृष्टि में कोई अपराध गठित नहीं करते हैं।

6. परिवादी–प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी को दिनांक 5 अक्टूबर, 2007 को गिरफ्तार किया गया था, किंतु परिवाद में अभिकथित उसके साथ मार–पीट किए जाने और उससे रिश्वत मांगे जाने के तथ्य की दृष्टि में, यह नहीं कहा जा सकता है कि परिवाद अपराध किए जाने को प्रकट नहीं करता है। यह निवेदन भी किया गया है कि परिवादी की गिरफ्तारी की कार्रवाई आधिकारिक कृत्य हो सकती है किंतु शेष कार्रवाई, जो अपराध गठित करती है, अधिकारिक कृत्य अथवा वह कृत्य नहीं है जो आधिकारिक कृत्य के प्रयोग में किया गया हो और इसलिए, अधिनियम 1957 की धारा 20 प्रयोज्य नहीं है। यह भी निवेदन किया गया है कि परिवादी डेढ़ माह से अधिक कारा में बंद रहा, जिस तथ्य को उसने परिवाद में पहले ही कथित किया है और इसलिए, परिवाद दर्ज करने में विलंब नहीं हुआ है।

7. मैंने पक्षों के निवेदनों पर विचार किया और आक्षेपित आदेश में दिए गए तथ्यों और कारणों का और परिवाद में कथित तथ्यों का भी परिशीलन किया। मेरा सुविचारित मत है कि अधिनियम की धारा 20 भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के अधीन दंडनीय अपराध के प्रति प्रयोज्य नहीं है और इस मामले में विनिर्दिष्टत: भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 323, 504 और 385 अभिकथित की गयी है और पूर्वोक्त कृत्य के लिए कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं है और सुरक्षा विधिपूर्ण कार्रवाई के लिए, न कि विधिविरूद्ध कार्रवाई के लिए उपलब्ध है।

8. जहाँ तक विलंब का संबंध है, परिवादी–प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने विलंब को स्पष्ट करने का प्रयास किया। किंतु मामले के गुणागुण पर कोई टिप्पणी पक्षों में से किसी के प्रति प्रतिकूल होगी; अत:, मैं मामले के गुणागुण पर मत अभिव्यक्त करने का इच्छुक नहीं हूँ। परिवाद दाखिल करने में विलंब और गवाहों के बयानों में विरोधाभास आदि वर्तमान परिवाद को अभिखंडित करने का आधार नहीं हो सकते हैं और इसलिए, यह न्यायालय दांडिक कार्यवाही और संज्ञान लेने वाले आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है। विचारण न्यायालय को शीघ्रातिशीघ्र अग्रसर होने और किसी विलंब के बिना मामले को विनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है।

इस संप्रेक्षण के साथ, याचिका खारिज की जाती है। चूँकि स्थगन रिक्त कर दिया गया है और याची इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के फलस्वरूप विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ था, याची को दिनांक 9.1.2012 को अथवा इसके पहले विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

प्रेम शंकर मिश्रा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5049 of 2009. Decided on 21st November, 2011.

सेवा विधि–प्रोन्नति–पुलिस के सब-इंस्पेक्टर का पद–प्रोन्नति को प्रभाव नहीं दिया जा सकता था क्योंकि तत्कालीन बिहार राज्य में उसके विरुद्ध दांडिक मामला लंबित था–दांडिक मामला काफी पहले वर्ष 1996 में दाखिल किया गया था और प्रोन्नति के संबंध में आदेश वर्ष 2007 में जारी किया गया था–दिनांक 28.11.2008 के सरकारी संकल्प का भविष्यलक्षी प्रभाव होगा और इसे भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता है–यह प्रोन्नति को प्रभाव देने के लिए याची के मामले पर विचार करने लायक सुयोग्य मामला है–राज्य को याची के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.–M/s S. N. Pathak, Rishikesh Giri, For the Petitioner; J.C. To A.G., For the State.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रार्थना करते हुए दाखिल की गयी है कि समस्त पारिणामिक लाभों के साथ मेमो सं॰ 2200/P के तहत दिनांक 27 दिसंबर, 2007 के आदेश के तहत बोर्ड द्वारा प्रोन्नति प्रदान किए जाने की तिथि से विशेष शाखा, झारखंड, राँची में पुलिस के सब-इंस्पेक्टर के प्रोन्नत पद पर याची का पदग्रहण स्वीकार करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देते हुए परमादेश प्रकृति का रिट/आदेश अथवा निर्देश जारी किया जाय।

2. याची का मामला यह है कि उसे जिला चाईबासा में वर्ष 1983 में पुलिस के स्टेनो-सह-सब-इंस्पेक्टर के रूप में आरंभ में नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात पुलिस के सब-इंस्पेक्टर के पद पर प्रोन्नति के लिए उसके मामले पर विचार किया गया था और दिनांक 5.6.2007 के आदेश द्वारा याची का नाम उन अधिकारीगण की ग्रेडेशन सूची में क्रमांक सं॰ 91 के रूप में उपदर्शित किया गया था जिन्हें प्रोन्नत किया गया है और प्रोन्नत पद पर स्थानांतरित किया गया है किंतु याची की प्रोन्नति को प्रभाव नहीं दिया जा सका था क्योंकि उसके विरुद्ध तत्कालीन बिहार राज्य में वर्ष 1996 से जब वह गया जिला में पदस्थापित था दांडिक मामला लंबित था। याची ने दिनांक 26.6.2009 को प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष प्रोन्नति के लिए उसके मामले पर विचार करने के लिए अभ्यावेदन दाखिल किया था किंतु आज की तिथि तक इस पर विचार नहीं किया गया है।

3. प्रत्यर्थीगण का मामला है कि संकल्प सं॰ 6227 दिनांक 20.11.2008 की दृष्टि में इस चरण पर प्रोन्नति पाने के लिए याची पात्र और हकदार नहीं है।

4. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपने मामले के समर्थन में प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ 10 को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है और निवेदन किया है कि दिनांक 27.12.2007 के मेमो सं॰ 2200/P के तहत याची को पुलिस के सब-इंस्पेक्टर के पद पर इस शर्त के साथ प्रोन्नत किया गया था कि यदि विधि के न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई विभागीय कार्यवाही अथवा दांडिक कार्यवाही लंबित है, प्रोन्नति को प्रभाव नहीं दिया जाएगा और इस शर्त को दिनांक 27.12.2007 के आदेश के खंड-4 में अधिकथित किया गया था।

5. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और कागजात के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची को दिनांक 27.12.2007 के आदेश के तहत प्रोन्नत किया गया था जिसे राज्य द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है और समरुप आदेश याची द्वारा दाखिल याचिका के साथ भी संलग्न किया गया है जो परिशिष्ट–1 है किंतु तिथि में तनिक अंतर है और उक्त आदेश पुलिस उप–महानिरीक्षक (कार्मिक) द्वारा दिनांक 27.12.2007 के अपने आदेश के तहत संसूचित किया गया था। उक्त आदेश के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि याची का नाम अधिकारियों के ग्रेडेशन सूची के क्रमांक सं० 91 पर उपदर्शित किया गया था किंतु उक्त आदेश का खंड 4 विहित करता था कि प्रोन्नति को प्रभाव नहीं दिया जाएगा यदि विधि के न्यायालय के समक्ष कोई विभागीय कार्यवाही अथवा दांडिक मामला लंबित है। उक्त खंड में विहित काल दांडिक मामले अथवा किसी परिवाद के संस्थापन की तिथि से तीन वर्ष है।

6. प्रत्यर्थी का दृष्टिकोण है कि दिनांक 20.11.2008 के संकल्प सं० 6227 की दृष्टि में याची प्रोन्नति को प्रभाव दिए जाने का पात्र और हकदार नहीं है क्योंकि उसके विरुद्ध दांडिक मामला लंबित है।

7. यह गौर करना उपयुक्त है कि याची को दिनांक 27.12.2007 के आदेश के तहत अर्थात् दिनांक 28.11.2008 के सरकारी संकल्प को जारी किए जाने के पहले प्रोन्नति प्रदान की गयी है। दिनांक 28.11.2008 के सरकारी संकल्प का भविष्यलक्षी प्रभाव होगा और इसे भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता है। याची की प्रोन्नति दिनांक 27.12.2007 के कार्यालय आदेश के अधीन शासित होगी और खंड 4 में विहित शर्त विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करती है कि विभागीय कार्यवाही और/अथवा दांडिक मामले के संस्थापन की तिथि से तीन वर्षों की अवधि के लिए प्रोन्नति को प्रभाव नहीं दिया जाएगा।

8. इन परिस्थितियों के अधीन, प्रत्यर्थीगण की ओर से दिए गए तर्कों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और याची, जिसे 5.6.2007/27.12.2007 के आदेश के तहत पुलिस के सब–इंस्पेक्टर के पद पर प्रोन्नति दी गयी है, की प्रोन्नति को दिनांक 5.6.2007/27.12.2007 के आदेश के खंड 4 की दृष्टि में परिवाद संस्थापित/दाखिल करने की तिथि से तीन वर्ष पूरा होने पर प्रभाव देने की आवश्यकता है। वर्तमान मामले में दांडिक मामला काफी पहले वर्ष 1996 में दाखिल किया गया था और प्रोन्नति के संबंध में आदेश वर्ष 2007 में जारी किया गया था। इस प्रकार, वर्ष 2007 में प्रोन्नति आदेश जारी करने के समय पर स्वयं प्रोन्नति आदेश के खंड–4 की दृष्टि में आदेश की तिथि से प्रोन्नति को प्रभाव देने की आवश्यकता थी। याची के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में किए गए प्रकथनों से इंगित किया है कि सम–स्थित पुलिस अधिकारीगण, जो उक्त दांडिक मामले में सह–अभियुक्त थे, को दांडिक मामला/विभागीय जाँच के संस्थापन/दाखिल किए जाने की तिथि से तीन वर्षों की अवधि के पूरा होने के तथ्य पर विचार करते हुए बिहार राज्य में प्रोन्नति दी गयी है जबकि झारखंड राज्य में याची के मामले पर याची द्वारा दाखिल अभ्यावेदन के बावजूद विचार नहीं किया गया है।

9. इस प्रकार, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि प्रोन्नति को प्रभाव देने के लिए याची के मामले पर विचार किए जाने लायक यह सुयोग्य मामला है। अत: समस्त पारिणामिक लाभों के साथ दिनांक 5.6.2007/27.12.2007 के कार्यालय आदेश के मुताबिक सम्यक् तिथि से उसकी प्रोन्नति को प्रभाव देने के लिए याची के मामले पर विचार करने का निर्देश झारखंड राज्य को दिया जाता है। यह भी प्रतीत होता है कि इस संबंध में याची द्वारा दाखिल दिनांक 26.6.2009 के अभ्यावेदन पर भी प्रत्यर्थी द्वारा निर्णय नहीं लिया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का

ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि याची दिनांक 31.12.2011 को अधिवर्षित होने जा रहा है। अतः इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से दो सप्ताह के भीतर याची की प्रोन्नति को प्रभाव देने के लिए याची के मामले पर विचार करने और समुचित आदेश पारित करने का निर्देश प्रत्यर्थी-राज्य को देना आवश्यक है।

उक्त संप्रेक्षण के साथ यह याचिका निपटायी जाती है।

इस आदेश की प्रति याची और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

---

ekuuh; idk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड, धनबाद, कुसंदा कोलियरी प्रबंधन के संबंध में कर्मकारगण

cuke

महासचिव, राष्ट्रीय कोलियरी मजदूर संघ, धनबाद

L.P.A. No. 143 of 2004. Decided on 8th December, 2011.

लेटर्स पेटेंट के खंड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

श्रम एवं औद्योगिक विधि—नियमितिकरण—अधिकरण बी०सी०सी०एल० के प्रबंध को नौकरी में कर्मकारों को आमेलित करने का कोई निर्देश नहीं दे सकता, अगर उस नौकरी की कोई रिक्ति नहीं है या इसी प्रकार की कोटि के किसी अन्य कार्य की कोई रिक्ति है—अगर कोई रिक्ति नहीं है, तो नियमितिकरण का प्रश्न नहीं हो सकता—अधिनिर्णय का अंश अपास्त।
(पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Appellant; None, For the Respondent.

आदेश

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. अपीलार्थी CWJC सं० 1822 वर्ष 1997(R) में पारित दिनांक 20 जनवरी, 2004 के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा केन्द्र सरकार औद्योगिक अधिकरण सं० 2, धनबाद द्वारा संदर्भ केस सं० 306 वर्ष 1986 में पारित दिनांक 26 जुलाई, 1996 के अधिनिर्णय को चुनौती देने वाली अपीलार्थी की रिट याचिका खारिज कर दी गयी है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि कर्मकार नौकरी में नहीं थे और, अतएव, कर्मकारों को नियमित नहीं किया जा सकता था न ही कर्मकारों के नियमितिकरण का प्रश्न उठ सकता था क्योंकि नियमितिकरण उस कर्मचारी का हो सकता है जो सेवा में हो। यह निवेदन किया गया है कि कोई रिक्त पद नहीं था और, अतएव, कर्मकारों को नियमित नहीं किया जा सकता था। यह भी निवेदन किया गया है कि अपने मामले को सिद्ध करने का भार कर्मकारों पर था कि उन्होंने नियमितिकरण का लाभ प्राप्त करने के लिए अपेक्षित दिनों तक कार्य किया था।

4. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदनों पर विचार किया है तथा आक्षेपित अधिनिर्णय एवं विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में भी दिये गये कारणों का परिशीलन किया है। चूंकि अधिनिर्णय को बरकरार रखा गया है तब अधिनिर्णय का प्रभावी भाग प्रभावी है, जो स्पष्टतः घोषित करता था कि अधिकरण बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के प्रबंध को नौकरी में कर्मकारों को आमेलित करने का कोई निर्देश

नहीं दे सकता था, अगर उस नौकरी की कोई रिक्ति नहीं है या अभी उस कोटि की कोई अन्य नौकरी रिक्ति नहीं है। तथापि, ऐसी घोषणा करने के उपरांत, यह सम्परीक्षित किया गया है कि अधिनिर्णय के क्रियान्वयन की तिथि से छः महीनों के भीतर कर्मकारों को नियमित करने के लिए संदर्भ के परिशिष्ट के अनुसार एक सूची तैयार करने का एक निर्देश प्रबंध को दिया जाता है और बीच की अवधि के दौरान उन्हें किसी कोटि के आकस्मिक प्रकृति के कार्य प्रदान किये जायें जिसका वेतन स्थायी कर्मचारियों के वेतन के समान हो और ऐसा आवश्यक रूप से करना है।

5. अधिनिर्णय के उक्त प्रभावी भाग से यह प्रतीत होता है कि प्रबंध का यह अभिवाक् अधिकरण द्वारा स्वीकार किया गया था कि अगर कोई रिक्ति नहीं है, तब नियमितिकरण का कोई प्रश्न ही उद्भूत नहीं हो सकता। तथापि, अधिकरण ने स्थायी कर्मचारियों के समान वेतन वाले उसी कोटि के आकस्मिक प्रकृति की कोई नौकरी कर्मकारों को प्रदान करने का आदेश पारित किया था, परन्तु इस निर्देश के साथ यह निर्देश दिया गया था कि कर्मकारों का छः महीने के भीतर नियमितिकरण किया जाएगा। यह निर्देश प्रकटतः ही उपरोक्त दिये गये निर्देश के प्रतिकूल है, जिसमें अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया था कि कर्मकारों के नियमितिकरण के लिए निर्देश निर्गत नहीं किया जा सकता जब कोई रिक्ति नहीं है अतएव, अधिनिर्णय का वह अंश अपास्त किये जाने योग्य है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को अधिनिर्णय के क्रियान्वयन की तिथि से छः महीने के भीतर कर्मकारों को नियमित करने का निर्देश दिया गया है। जहां तक अस्थायी प्रकृति की नौकरी प्रदान करने का सवाल है, इसे भी आवश्यकता के अनुसार दिया जा सकता है। इस चरण पर, यहां यह उल्लिखित करना यथोचित होगा कि जो व्यक्ति नौकरी में नहीं थे, उन्होंने नियमितिकरण की इप्सा की थी और जहां तक कानूनी स्थिति का सवाल है, जो नौकरी में नहीं है वे नियमितिकरण की इप्सा नहीं कर सकते, परन्तु इस मामले में पृथककरणीय लक्षण यह है प्रबंध ने स्वयं निर्णय लिया था तथा कर्मकारों के संघ के साथ एक समझौता करके कर्मकारों के समक्ष अपनी योजना पेश की थी और, अतएव, ऐसा अभिवाक् मामले के तथ्यों पर लागू नहीं किया जा सकता, परन्तु इसी समय जब कोई रिक्ति नहीं है, तो कोई नियमितीकरण भी नहीं हो सकता है और, अतएव, जहां तक कर्मकारों के नियमितिकरण के दावे का सवाल है जो नौकरी में नहीं थे, यह स्वयं प्रबंध द्वारा लिये गये निर्णय से प्रवाहित हो रहा था और इसका प्रवर्तन औद्योगिक विवाद उठाकर इप्सित किया गया था, जिसे प्रारंभ में उठाया गया था तथा अधिकरण द्वारा निर्णित किया गया था।

6. उपरोक्त कारण की दृष्टि में, अधिनिर्णय उपांतरित किया जाता है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अपीलार्थी अपने निर्णय के सुसंगत तिथियों, अर्थात् 2 मार्च, 1983 के संदर्भ में रिक्तियों की जांच करेंगे और इन कर्मकारों की वरीयता सूची तैयार करेंगे और रिक्तियों की संख्या का पता लगायेंगे तथा ऐसी रिक्तियां अगर उस तिथि को उपलब्ध थीं, कर्मकारों को नियोजन तथा नियमितिकरण का प्रस्ताव दिया जाएगा।

7. इसकी दृष्टि में, उपरोक्त उपांतरण के साथ यह लेटर्स पेटेंट अपील उपरोल्लिखित सीमा तक आंशिक रूप से अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k ,o Mhï ,uï mikè;k;] U;k;efrx.k

प्रद्युमन कुमार प्रधान एवं अन्य (366 में)

केताकी प्रधान (287 में)

अंतर्जामी प्रधान (317 में)

cuke

झारखंड राज्य (सभी में)

Cr. Appeal (DB) Nos. 366, 287 with 317 of 2001. Decided on 22nd November, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 238 वर्ष 1999 में श्री पी॰ एन॰ लाल, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 26.6.2001 और 28.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 37—हत्या–हत्या का प्रयास–सामान्य आशय–आजीवन कारावास–चश्मदीद गवाहों ने अभियोजन मामले का पूर्णतः समर्थन किया जो दोनों डॉक्टरों के चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि पाता है–भले ही दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था, फिर भी तलवारों की बरामदगी के संबंध में, परिस्थितियों की संपूर्णता में, अपराध किए जाने के संबंध में बयानों का शेष भाग ठुकराया नहीं जा सकता है–दोनों अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देते हुए अपीलों को अंशतः खारिज किया गया।

(पैराएँ 7, 8, 10 से 14)

अधिवक्तागण.–Mr. Zaid Ahmad, (in 366 and 287), For the Appellants; Mr. D.K. Chakravorty (in 317), For the Appellants; Mr. Ravi Prakash, APP, For the State.

आदेश

इन समस्त अपीलों को एक साथ सुना गया था और इस एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. ये अपीलें सत्र विचारण सं॰ 238/1999 में श्री पी॰ एन॰ लाल, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 26.6.2001 और 28.6.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश से उद्भूत होती है जिनमें अपीलार्थीगण अर्थात् प्रद्युमन कुमार प्रधान, प्रमोद प्रधान और प्रकाश प्रधान (दांडिक अपील सं॰ 366/2001 में) और केताकी प्रधान (दांडिक अपील सं॰ 287/2001 में) को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए और अपीलार्थी अंतर्जामी प्रधान (दांडिक अपील सं॰ 317/2001 में) को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/120 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि किया गया था। प्रमोद प्रधान को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया है। उन सबों को आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है और अपीलार्थी प्रमोद प्रधान को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दस वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। किंतु समस्त दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि अ॰ सा॰ 11 जितेन्द्र प्रधान ने अपने कजिन अ॰ सा॰ 10 रमाकांत प्रधान और अन्य ग्रामीणों के साथ दिनांक 2.5.1999 को प्रातः लगभग 11.30 बजे फर्दबयान दर्ज किया कि वह प्रातः लगभग 10.15 बजे अपने कजिन कार्तिकेश्वर प्रधान (मृतक) के साथ मोटरसाइकिल पर गाँव के मध्य विद्यालय की ओर जा रहा था। वे जैसे ही अपीलार्थी प्रमोद प्रधान के घर के निकट पहुँचे, उसने और उसके भाई प्रकाश प्रधान ने हाथ में तलवार लेकर उनको रोकने का प्रयास किया। सूचक ने भागने का प्रयास किया किंतु विफल रहा। इसी बीच, प्रमोद प्रधान और प्रकाश प्रधान दौंड़ते हुए आए और मृतक पर तलवार से अंधाधुंध प्रहार करने लगे। जब सूचक ने भागने का प्रयास किया, प्रमोद महाजन ने उपहति कारित करते हुए उसके मस्तक पर प्रहार किया। आगे अभिकथित किया गया है कि मृतक ने भी भागने का प्रयास किया किंतु प्रकाश और उसकी पत्नी केतकी प्रधान (अपीलार्थी) ने उसको रोक लिया। मामला मृतक के बड़े भाई सूरत प्रधान (अ॰ सा॰ 10) को सूचित किया गया, जो मृतक को बचाने दौड़ा किंतु प्रद्युमन ने तलवार लिए उसका पीछा किया जिस पर अ॰ सा॰ 10 वहाँ से भाग गया। कार्तिकेश्वर की मृत्यु हो गयी थी। प्राथमिकी में आगे अभिकथित किया गया है कि लगभग छह माह पहले किसी ने अपीलार्थी प्रद्युमन पर गोली चलायी थी जिस कारण अपीलार्थी को इस संदेह पर शिकायत थी कि मृतक ने गोली चलवायी थी।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर आक्षेपित आदेश का विरोध किया।

5. उन्होंने निवेदन किया कि अभियोजन मामले में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं और अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध नहीं किया है। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि अपीलार्थीगण केतकी प्रधान और अंतर्जामी प्रधान को इस मामले में झूठा फँसाया गया है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान सामान्य है और उसमें तलवारों की बरामदगी उपदर्शित नहीं की गयी है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया।

7. अभियोजन ने दस्तावेजों को प्रदर्शित करने के अतिरिक्त 13 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 सुजन कुमार प्रधान (मृतक का संबंधी), अ॰ सा॰ 3 पार्वती देवी (मृतक की माता), अ॰ सा॰ 10 रमाकांत प्रधान (मृतक का भाई) और अ॰ सा॰ 11 जितेन्द्र प्रधान (मृतक का कजिन) घटना के चश्मदीद गवाह हैं और उन्होंने पूर्णत: अभियोजन मामले का समर्थन किया है।

अ॰ सा॰ 2 तपस कुमार प्रधान (मृतक का मामा) मृत्यु समीक्षा गवाह है। उसने भी प्रद्युमन, प्रकाश और प्रमोद को रक्तरंजित कपड़ों और तलवारों के साथ भागते देखा है। अ॰ सा॰ 4 और 5 मंगला प्रधान और मोतीलाल प्रधान–रक्तरंजित मिट्टी के अभिग्रहण गवाह हैं। अ॰ सा॰ 6 गौतम प्रधान वह गवाह है जिसने प्रमोद और प्रकाश को तलवारों के साथ भागते देखा था। अ॰ सा॰ 7 डॉ॰ बिजय कुमार सिंह ने मृतक का शव परीक्षण किया। उसने मृतक के शरीर पर छह कटे हुए जख्मों को पाया और गर्दन धड़ से अलग पायी गयी थी। उनके मत में, उपहतियाँ तलवार जैसे तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी जो मृत्यु का कारण थीं। अ॰ सा॰ 8 भोला नाथ प्रधान अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 9 सूरत प्रधान मृतक का भाई है। उसने प्रकाश और प्रमोद को तलवार छुपाते देखा था और वह तीन तलवारों की बरामदगी का गवाह है। अ॰ सा॰ 13 अन्वेषण अधिकारी है।

8. चश्मदीद गवाहों ने पूर्णत: अभियोजन मामले का समर्थन किया है, जो दोनों डॉक्टरों के चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि पाता है।

9. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दुश्मनी के कारण अपीलार्थीगण को झूठा फँसाया गया है।

10. दुश्मनी दुधारी होती है। अभियोजन के अनुसार, अपीलार्थीगण को संदेह था कि मृतक ने छह माह पहले प्रद्युमन पर गोली चलायी थी। चाक्षुक और चिकित्सीय साक्ष्य पर अविश्वास करने के लिए कुछ भी नहीं है कि प्रमोद, प्रकाश और प्रद्युमन ने सूचक और मृतक को रोका था; मृतक पर अंधाधुंध तलवारों से उपहतियों को कारित किया था और जब सूचक ने भागने का प्रयास किया, उस पर भी तलवार से प्रहार किया गया था जिस कारण उसे उपहति हुई थी। भले ही तलवारों की बरामदगी के संबंध में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था, परिस्थितियों की संपूर्णता में, अपराध किए जाने के संबंध में बयानों के शेष भाग को ठुकराया नहीं जा सकता है।

11. किंतु, जहाँ तक अपीलार्थी केतकी प्रधान का संबंध है, उसके विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि जब मृतक ने भागकर अपनी जान बचाने का प्रयास किया, उसने भी उसे रोकने का प्रयास किया।

अभियोजन मामले के इस पहलू का समर्थन गवाहों द्वारा नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 10 रमाकांत प्रधान जब घटनास्थल पर आया जब प्रहार किया जा रहा था जबकि अ॰ सा॰ 3 पार्वती देवी ने कहा कि केतकी केवल खड़ी थी।

जहाँ तक अपीलार्थी केतकी प्रधान का संबंध है, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अथवा मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा है। अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302 और 120B के अधीन अपीलार्थी अंतर्जामी प्रधान के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा है। अभियोजन ने एक वृत्तांत निर्मित करने का प्रयास किया है कि वह मृतक की हत्या के षडयंत्र में अंतर्ग्रस्त सदस्यों में से एक था। उसके विरुद्ध अभिलेख पर लायी गयी सामग्रियाँ अस्पष्ट और आम है।

12. हमारे मत में, ये दोनों अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने योग्य हैं।

13. परिणामस्वरुप, दांडिक अपील सं॰ 366 वर्ष 2001 खारिज की जाती है और अभियुक्तगण प्रद्युमन कुमार प्रधान, प्रमोद प्रधान और प्रकाश प्रधान की दोषसिद्धि और दंडादेश संपुष्ट की जाती है।

14. किंतु, अंतर्जामी प्रधान द्वारा दाखिल दांडिक अपील सं॰ 317 वर्ष 2001 और कार्तिक प्रधान द्वारा दाखिल दांडिक अपील सं॰ 287 वर्ष 2001 अनुज्ञात किए जाते हैं और उनकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त किया जाता है। चूँकि वे जमानत पर हैं, उन्हें उनके जमानत बंधकों से उन्मोचित किया जाता है।

इन तीनों अपीलों को तद्नुसार निपटाया जाता है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

जसवंत सिंह

cuke

दिनेश प्रसाद एवं अन्य

Second Appeal No. 70 of 2008. Decided on 3rd August, 2011.

अभिधृति–बेदखली–किराया के भुगतान में व्यतिक्रम–अवर न्यायालयों ने समवर्ती रूप से पाया कि वादी और प्रतिवादी के बीच मकानमालिक और किराएदार का संबंध है और प्रतिवादी-अपीलार्थी ने किराया के भुगतान में व्यतिक्रम किया–किराया के विरुद्ध समायोजित किए जाने के लिए वादीगण को अग्रिम देने का अपीलार्थी का दावा झूठा और निराधार पाया गया–आक्षेपित निर्णय की आलोचना के लिए कोई आधार नहीं–अपील खारिज।

(पैराएँ 6 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Kumar Vimal, For the Appellant; Mr. D.K. Chakraborty, For the Respondents.

आदेश

यह द्वितीय अपील बेदखली अपील सं॰ 23 वर्ष 2006 में विद्वान पंचम अपर जिला न्यायाधीश, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 4 जनवरी, 2008 के निर्णय और डिक्री (डिक्री दिनांक 11.1.2008 को हस्ताक्षरित) के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने बेदखली वाद सं॰ 33 वर्ष 2001 में विद्वान मुंसिफ, जमशेदपुर द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को मान्य ठहराया है।

2. अपीलार्थी बेदखली वाद सं॰ 33 वर्ष 2001 में प्रतिवादी था। उक्त वाद प्रतिवादी-अपीलार्थी की बेदखली के लिए डिक्री की प्रार्थना करते हुए वादीगण-प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल किया गया था।

3. वादीगण का मामला यह था कि वे वाद पत्र की अनुसूची 'A' में पूर्णत: वर्णित मौजा गोलमुरी के 1436 वर्गफीट क्षेत्र के वाद परिसर के स्वामी और मकानमालिक हैं। प्रतिवादी को अंग्रेजी कैलेंडर माह के अनुसार 2200/- रुपयों की दर पर भुगतान योग्य मासिक किराए पर दुकान परिसर किराएदार के रूप में दिया गया था। प्रतिवादी ने दिनांक 20 जनवरी, 2000 को 20,000/- रुपयों की राशि कर्ज के रूप में वादीगण को दिया था। जिसमें से 6,300/- रु० की राशि का भुगतान वादी सं० 1 द्वारा 27.7.2000 को चेक द्वारा किया गया था। प्रतिवादी द्वारा भुगतान योग्य मासिक किराया के विरुद्ध 13,700/- रुपयों की शेष राशि समायोजित की जानी थी। प्रतिवादी ने पहले वाद दुकान के जीर्णोद्धार के लिए वादीगण को 65,000/- रुपया अग्रिम दिया था। उक्त राशि में से, वादीगण ने दिनांक 13.6.1998 के केनरा बैंक के दो चेकों द्वारा 40,000/- रुपयों का भुगतान कर दिया था। शेष राशि वादीगण को प्रतिवादी द्वारा भुगतान योग्य किराया के बकाया के विरुद्ध समायोजित की गयी थी। किराया की मासिक दर और अन्य निबंधनों एवं शर्तों को दिनांक 4.4.1998 के अभिधृति करार में उल्लिखित किया गया था। प्रतिवादी ने अगस्त, 1998 तक किराया का भुगतान कर दिया था। उसके बाद उसने वाद परिसर के किराया का भुगतान नहीं किया था। अग्रिम की शेष राशि को मासिक किराया में समायोजित किया गया था। समस्त राशियों के समायोजन के बाद प्रतिवादी सितंबर, 1998 से जून, 2001 तक 33,900/- रुपयों की राशि का भुगतान वाद परिसर के लिए किराया के बकाया के रूप में करने का दायी है। किंतु प्रतिवादी ने राशि के समायोजन के बाद बकाया अथवा चालू मासिक किराया का भुगतान करने में विफल रहा और व्यतिक्रमी बन गया। वादीगण ने प्रतिवादी से किराया के बकाया का भुगतान करने का अनुरोध किया किंतु प्रतिवादी ने किराया का भुगतान नहीं किया था और सितंबर, 1998 से वाद दाखिल करने की तिथि तक किराया का भुगतान नहीं करने के चलते स्वयं को व्यतिक्रमी बना लिया। अत: प्रतिवादी उस आधार पर वाद परिसर से बेदखल किए जाने का दायी है।

4. प्रतिवादी उपस्थित हुआ और वाद का प्रतिवाद किया। उसने अनेक आधारों पर वाद की पोषणीयता को चुनौती दी। प्रतिवादी ने वाद भूमि के ऊपर वादीगण के अधिकार और हक को भी चुनौती दिया। कथन किया गया था कि वाद परिसर खाता सं० 65 के ऊपर अवस्थित है जिसे बिहार राज्य के नाम पर दर्ज किया गया है। टिस्को को पट्टादार के रूप में दर्शाया गया है। बिहार राज्य और टिस्को वाद के आवश्यक पक्ष हैं। उक्त परिसर के संबंध में वादीगण मकानमालिक थे और प्रतिवादी किराएदार था, किंतु प्रतिवादी ने अक्टूबर, 1998 में वाद परिसर खाली कर दिया था और तत्पश्चात् वह भूखंड सं० 2911, जो खाता सं० 61, वार्ड सं० 12 के अधीन दर्ज नया भूखंड सं० 4129 के तत्सम है जो अभिकथित वाद परिसर के बगल में है, के ऊपर 'सैनी ऑटो' के नाम से ज्ञात ऑटो मोबाइल दुकान के नाम से दुकान चला रहा था। आगे कथन किया गया था कि वर्ष 1998 में उक्त वाद परिसर जीर्णशीर्ण हो गया और इसे मरम्मत की जरूरत थी। प्रतिवादी ने वादीगण से उसको अस्थायी रूप से वाद परिसर देने का अनुरोध किया था ताकि वह स्वयं अपनी दुकान की मरम्मत तक उसमें अपना दुकान चला सके। वादीगण वाद परिसर में प्रतिवादी को अपना दुकान चलाने देने के लिए सहमत हुए और अनुमति दी थी। मरम्मत का काम पूरा हो जाने के बाद, वह दुकान को स्वयं अपने परिसर में ले गया था। उसने अक्टूबर, 1998 में वादी का परिसर खाली कर दिया था। वादीगण के साथ करार के निष्पादन के समय उसने वादीगण को किराए के अग्रिम बतौर 30,000/- रुपयों का भुगतान किया था। वस्तुत:, वादीगण ने 65,000/- रुपयों का कर्ज लिया था और छह माह की अवधि के लिए 1075 वर्ग फीट माप वाले क्षेत्र की वाद संपत्ति को बंधक रख दिया था, किंतु वादीगण प्रतिवादी को 65,000/- रुपया लौटाने में विफल रहे। वादीगण का प्रकथन कि उन्होंने चेक के माध्यम से शेष राशि का भुगतान कर दिया था, बिल्कुल झूठा है। कोई बकाया नहीं है जैसा अभिकथित किया गया है। वादीगण का दावा झूठा और निराधार है और, इसलिए, वाद पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने का दायी है।

5. पक्षों के उक्त अभिवचनों पर विद्वान विचारण न्यायालय ने तथ्य और विधि के अनेक विवाद्यकों को विरचित किया।

6. दोनों पक्षों ने अपने साक्ष्य प्रस्तुत किए। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और तथ्य पर पूरी तरह विचार किया और विवाद्यकवार अपने निष्कर्षों पर आया। अन्य बातों के साथ साथ यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रतिवादी वाद दुकान में किराएदार था, वह इसके अधिभोग में बना रहा किंतु सितंबर, 1998 से किराया के भुगतान में व्यतिक्रम किया। प्रतिवादी का अभिवचन कि उसने अक्टूबर, 1999 में वाद दुकान खाली कर दिया था, साक्ष्यों द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने लगभग समस्त विवाद्यकों को वादीगण के पक्ष में विनिश्चित किया और प्रतिवादी को वाद दुकान रिक्त करने और इसका रिक्त कब्जा वादीगण को देने का निर्देश देते हुए वाद डिक्री किया और वादीगण को 33,000/- रुपया के किराये के बकाये का भुगतान करने का आगे निर्देश दिया।

7. उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध, प्रतिवादी ने जिला न्यायाधीश, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम के न्यायालय में बेदखली अपील सं० 23 वर्ष 2006 दाखिल किया। उक्त अपील को अंतिम रूप से सुना गया था और पंचम अपर जिला न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा विनिश्चित किया गया था।

8. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने भी अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों पर चर्चा किया और समस्त प्रासंगिक पहलूओं पर विचार करने के बाद अपना विस्तृत निष्कर्ष दर्ज किया। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों के साथ सहमत होते हुए और उनको मान्य ठहराते हुए स्वयं अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर आया। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री में कोई दुर्बलता नहीं थी और अपील खारिज कर दिया।

9. इस द्वितीय अपील में, आक्षेपित निर्णय और डिक्री का विरोध मुख्यत: इस आधार पर किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और प्रतिवादी के साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में विफल रहे और गलत निष्कर्षों को दर्ज किया है। प्रतिवादी–अपीलार्थी के विरुद्ध किराया के भुगतान में व्यतिक्रमी होने के निष्कर्ष पर पक्षों के बीच हुए करार पर विचार किए बिना और यह विचार किए बिना कि कर्ज राशि को अभी भी किराया के विरुद्ध समायोजित किया जाना था, पहुँचा गया है। विद्वान अवर न्यायालयों का उक्त निष्कर्ष विकृत है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अधिमान के विरुद्ध है।

10. मैंने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और विद्वान अवर न्यायालयों के निर्णयों का परिशीलन किया है। मैं पाता हूँ कि किराया के विरुद्ध समायोजन के लिए वादीगण को अग्रिम देने का अपीलार्थी के दावे पर विद्वान अवर न्यायालयों द्वारा पूरी तरह विचार किया गया है और विस्तारपूर्वक साक्ष्यों के प्राकलन और उन पर चर्चा के बाद निष्कर्ष दर्ज किया गया है। यह समवर्ती रूप से पाया गया है कि प्रतिवादी का अभिवचन झूठा और निराधार है। दोनों न्यायालयों ने समवर्ती रूप से पाया है कि वादी और प्रतिवादी के बीच मकानमालिक और किराएदार का संबंध है और कि प्रतिवादी ने किराया के भुगतान में व्यतिक्रम किया है। प्रतिवादी द्वारा लिया गया अन्य बचाव भी अवर न्यायालयों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है।

11. निष्कर्ष साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के सम्यक अधिमूल्यन पर आधारित है। विद्वान अवर न्यायालयों के निर्णय और डिक्री का विरोध करने के लिए कोई विधिक आधार नहीं है।

12. मैं विधि के किसी सारवान प्रश्न को उद्भूत करने वाला कोई आधार नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इस द्वितीय अपील को खारिज किया जाता है।

ekuuh; ç'kkUr dekj] U;k;efr

मेसर्स जेसप उर्फ कंपनी लि॰ एवं एक अन्य

cuke

एम॰ ए॰ सिद्दीकी एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 962 of 2004. Decided on 23rd August, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 469 एवं 471—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—कूटरचना–संज्ञान–संकर्म करार–पृथक पत्र द्वारा करार के निबंधनों और शर्तों में एकपक्षीय परिवर्तन को याचीगण द्वारा बनाया गया मिथ्या दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है–परिवादी की शिकायत सिविल प्रकृति की प्रतीत होती है जिसके लिए संविदा अधिनियम के अधीन क्षतिपूर्ति के लिए सिविल वाद दाखिल किया जा सकता है–संज्ञान का आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 8 से 13)

निर्णयज विधि.–(2007) 12 SCC 1—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Ramit Satendra, For the Petitioners; Mr. R.K. Mahata, For the Opp. Parties.

आदेश

यह आवेदन सी॰ पी॰ केस सं॰ 275 वर्ष 2003 में न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 17.12.2003 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 के अधीन याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया था।

2. यह प्रतीत होता है कि वि॰ प॰ 2 ने उसमें यह अभिकथन करते हुए परिवाद दाखिल किया कि कर्मकार/प्रहरी की आपूर्ति के लिए याची सं॰ 1 के साथ उसका करार हुआ। आगे कथन किया गया है कि करार की दृष्टि में दिनांक 18.2.1994 को संकर्म आदेश जारी किया गया था किंतु उक्त संकर्म आदेश को समय-समय पर अंतिम बार दिनांक 1.4.1999 को संशोधित किया गया था। आगे अभिकथित किया गया है कि याचीगण/अभियुक्तगण ने दिनांक 26.6.2001 के पत्र के तहत पूर्वोक्त संकर्म आदेश में एकपक्षीय रूप से परिवर्तन किया। आगे कथन किया गया है कि संविदा के निबंधनों में एकपक्षीय रूप से परिवर्तन करने की शक्ति अभियुक्तगण/याचीगण को नहीं है। कथन किया गया है कि परिवादी को वित्तीय हानि कारित करने और उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने के आशय से संविदा में ऐसे परिवर्तन किए गए थे। तद्नुसार, यह अभिकथित किया गया है अभियुक्त/याचीगण ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 के अधीन अपराध किया है।

3. यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान स्वयं का एस॰ ए॰ पर और तीन गवाहों का परीक्षण किया। आगे प्रतीत होता है कि विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने प्रथम दृष्टया सामग्री पर विचार करने के बाद दिनांक 17.12.2003 के आदेश के तहत इस निष्कर्ष पर आए कि याचीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 के अधीन अपराध बनते हैं और तद्नुसार, उन्होंने संज्ञान लिया और याचीगण के विरुद्ध आदेशिका जारी किया। पूर्वोक्त आदेश को वर्तमान आवेदन में चुनौती दी गयी है।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका के परिशीलन से स्पष्ट है कि पक्षों के बीच का विवाद सिविल प्रकृति का है। आगे निवेदन किया गया है कि यदि उक्त अभिकथनों को ज्यों का त्यों उनके संपूर्णता में स्वीकार किया जाता है, तब भी वे भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 के अधीन अपराध गठित नहीं करते हैं। अत: संज्ञान लेने वाला आदेश न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

5. दूसरी ओर, परिवादी वि० प० सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याचीगण/अभियुक्तगण ने परिवादी की प्रतिष्ठा को हानि कारित करने और परिवादी को वित्तीय हानि कारित करने के लिए उक्त दस्तावेज का प्रयोग करने की दृष्टि से करार के निबंधनों और शर्तों को एकपक्षीय रूप से परिवर्तित कर दिया, अत: भा० दं० सं० की धाराओं 469 और 471 के अधीन अपराध बनते हैं।

6. निवेदन सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने भा० दं० सं० की धाराओं 469 और 471 के अधीन संज्ञान लिया। भा० दं० सं० की धारा 463 के अधीन कूटरचना को परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित है:–

*"463. **dV jpuk-**&tk dkb feF;k nLrkot vFkok feF;k byDVkfud vfHky[k ;k nLrkot vFkok byDVkfud vfHky[k d fdlh Hkkx dk bl vk'k; l jprk g fd ykd dk ;k fdlh 0;fDr dk udlku ;k {kfr dkfjr fd;k tk, fd dkb 0;fDr lifÙk vyx dj ;k dkb vfHk0;Dr ;k foof{kr lfonk dj ;k bl vk'k; l jprk g fd diV dj] ;k diV fd;k tk ld] og dV jpuk djrk gA*

7. शब्दों 'झूठे दस्तावेजों को बनाना,' जैसा भा० दं० सं० की धारा 463 में कथित किया गया है, को भा० दं० सं० की धारा 467 के अधीन आगे स्पष्ट किया गया है जो निम्नलिखित है:–

*"464. **feF;k nLrkot jpuk-**&[m l 0;fDr d ckj e ;g dgk tkrk g fd og 0;fDr feF;k nLrkot vFkok feF;k byDVkfud vfHky[k jprk g&*

***igyk-**&tk cbekuh l ;k diViod&*

(a) fdlh nLrkot dk] ;k nLrkot d Hkkx dk jpuk] gLrk{kj djrk] enkfdr ;k fu"ikfnr djrk g(

(b) fdlh byDVkfud vfHky[k ;k byDVkfud vfHky[k d Hkkx dk jprk ;k çlkfjr djrk g(

(c) fdlh byDVkfud vfHky[k ij byDVkfud gLrk{kj djrk g(

(d) fdlh nLrkot dk fu"iknu dju okyk dkb fpUg yxkrk g ;k byDVkfud gLrk{kj dh vfèkçekf.kdrk djrk g(bl vk'k; l fd] fo'okl fd;k tk, fd] nLrkot ;k nLrkot d Hkkx] byDVkfud vfHky[k ;k vdh; gLrk{kj dh jpuk] gLrk{kj.k] enkdj.k] fu"iknu] lEç"k.k ;k l;ktu ,l 0;fDr vFkok ,l 0;fDr d çkfèkdkj }kjk fd;k x;k Fkk] ftld }kjk ;k ftld çkfèkdkj }kjk] mldh jpuk] gLrk{kj.k] enkdj.k] fu"iknu] lEç"k.k ;k l;ktu u gku dh ckr og tkurk g] vFkok

***nlj k-**&tk fdlh nLrkot ;k byDVkfud vfHky[k d fdlh rkfRod Hkkx e ifjoru] mld }kjk ;k fdlh vU; }kjk] pkg ,lk 0;fDr ,l ifjoru d le; thfor gk ;k ugh ml nLrkot ;k byDVkfud vfHky[k d jfpr ;k fu"ikfnr fd; tku] vFkok byDVkfud gLrk{kj fd; tku d i'pkr ml jí dju }kjk] ;k vU;Fkk fofèkiod çkfèkdkj d fcuk cbekuh l ;k diViod djrk g] vFkok*

***rhlj k-**&tk fdlh 0;fDr }kjk] ;g tkur g,] ,lk 0;fDr fdlh nLrkot ;k byDVkfud vfHky[k dh fo"k;&oLr dh] ifjoru d :i dk fpÙk&foÑfr ;k eÙkrk dh gkyr e gku d dkj.k tku ugh ldrk ;k ml çcpuk d dkj.k] tk ml dh xb g] tkurk ugh g] ml nLrkot vFkok byDVkfud vfHky[k dk cbekuh l ;k diViod gLrk{kj.k] ;k byDVkfud vfHky[k ij byDVkfud gLrk{kj fd;k tkuk dkfjr djrk gA**

8. पूर्वोक्त प्रावधानों से स्पष्ट है कि धाराएँ 469 और 471 के अधीन अपराध की पुरोभाव्य शर्त कूटरचना है। जब कोई व्यक्ति झूठा दस्तावेज बनाता है, इसे कूटरचना कहा जाता है। अत: इस मामले में प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या याचीगण ने दिनांक 26.6.2001 के पत्र के तहत करार के निबंधनों और शर्तों में एकपक्षीय रूप से परिवर्तन करके कोई झूठा दस्तावेज बनाया था। प्रथमत: परिवाद में ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि यह विश्वास किया जाना कारित करने के आशय के साथ कि ऐसा दस्तावेज किसी अन्य व्यक्ति या उनके द्वारा निष्पादित किया गया था, याची ने गैरईमानदार रूप से अथवा कपटपूर्वक दस्तावेज बनाया था; द्वितीयत: कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने उनके अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा निष्पादित विद्यमान दस्तावेज के तात्विक भाग में परिवर्तन किया था। तृतीयत: ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण ने यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति दिमागी हालत ठीक नहीं होने, नशे में धुत होने अथवा उसके साथ की गयी प्रवंचना के कारण दस्तावेज के विषय वस्तु अथवा परिवर्तन की प्रकृति को नहीं जान सकता था, गैर-ईमानदार रूप से अथवा कपटपूर्वक किसी व्यक्ति को ऐसे दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने, निष्पादित करने अथवा परिवर्तन करने के लिए प्रेरित किया। अत: पृथक पत्र द्वारा करार के निबंधनों और शर्तों को एकपक्षीय रूप से परिवर्तित करने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि याचीगण ने झूठा दस्तावेज बनाया है। इस प्रकार मैं पाता हूँ कि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 में संगणित अपराधों के अवयव इस मामले में गायब है।

9. संपूर्ण परिवाद याचिका के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि परिवादी की मुख्य शिकायत यह है कि परिवादी और याचीगण के बीच हुए संविदा के निबंधनों और शर्तों को एकपक्षीय रूप से परिवर्तित कर दिया गया है और उक्त परिवर्तन के कारण परिवादी को वित्तीय हानि हो सकती है। ऐसी शिकायत के प्रतितोष के लिए मेरे दृष्टिकोण में, परिवादी सिविल वाद दाखिल कर सकता है।

10. इंदर मोहन गोस्वामी एवं एक अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, (2007)12 SCC 1 में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि पक्षों के बीच विवाद शुद्धत: सिविल प्रकृति का है और प्राथमिकी/परिवाद में किए गए संपूर्ण अभिकथनों को सत्य मानते हुए विचार में लेने के बाद भी अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है, तब अभियुक्तगण के विरुद्ध दांडिक मामला दाखिल करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। इन परिस्थितियों के अधीन न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने और न्याय के उद्देश्य को पूरा करने की दृष्टि से दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए न्यायालय कर्तव्यबद्ध है।

11. वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, संपूर्ण परिवाद के परिशीलन से भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। दिनांक 26.6.2001 के पत्र के तहत निबंधनों और शर्तों में एकपक्षीय संशोधन के संबंध में परिवादी/वि॰ प॰ सं॰ 2 की शिकायत सिविल प्रकृति की प्रतीत होती है जिसके लिए परिवादी, यदि वह ऐसी इच्छा रखता है, भारतीय संविदा अधिनियम के अधीन नुकसानी के लिए सिविल वाद दाखिल कर सकता है।

12. चूँकि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 469 और 471 के अधीन संगणित कोई अपराध नहीं बनता है, अत: मेरा दृष्टिकोण है कि आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा विद्वान अवर न्यायालय ने याची के विरुद्ध संज्ञान लिया, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, अत: इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

13. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं यह आवेदन अनुज्ञात करता हूँ। आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है।

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

बासुदेव यादव एवं अन्य

cuke

ईश्वर यादव एवं अन्य

Second Appeal No. 71 of 2008. Decided on 4th August, 2011.

परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 14—परिसीमा के आधार पर अपील की खारिजी—अवर न्यायालय द्वारा बीमारी का अभिवचन इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि कोई मेडिकल कागजात अथवा नुस्खा नहीं था—अंतिम डिक्री जिसके विरुद्ध अवर न्यायालय के समक्ष अभिधान अपील दाखिल किया गया था, के विरुद्ध कहीं भी कोई कार्यवाही लंबित नहीं थी—अपील खारिज। (पैराएँ 8 से 10)

अधिवक्तागण.—Mr. V. Shivnath, For the Appellants; Mr. R. Choubey, For the Respondents.

आदेश

यह द्वितीय अपील हक अपील सं॰ 37 वर्ष 2007 में विद्वान जिला न्यायाधीश, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 22 जनवरी, 2008 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध है जिसके द्वारा परिसीमा के आधार पर अपीलार्थीगण के अपील को खारिज कर दिया गया था।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा लिया गया संक्षिप्त आधार यह है कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों पर विचार नहीं करने और 202 दिनों के विलंब के फलस्परूप समय वर्जित होने के कारण अपीलार्थीगण की याचिका को खारिज करने में गंभीर गलती की।

3. प्रतिवादीगण अपीलार्थीगण हैं। मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि वादीगण ने वाद भूमि में अपने हिस्सों का दावा करते हुए बँटवारा वाद दाखिल किया था। वाद विद्वान उप-न्यायाधीश-I, कोडरमा द्वारा खारिज कर दिया गया था। उपन्यायाधीश-I, के उक्त निर्णय के विरुद्ध वादीगण ने विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष हक अपील सं॰ 58 वर्ष 1991 दाखिल किया था। पक्षों को सुनने के बाद उक्त हक अपील अनुज्ञात की गयी थी और विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अपास्त कर दी गयी थी। वादीगण का वाद व्यय के साथ डिक्री किया गया था।

4. प्रतिवादीगण, जो वर्तमान अपील में अपीलार्थीगण हैं, ने विद्वान प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, कोडरमा के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध द्वितीय अपील सं॰ 72 वर्ष 1999 दाखिल किया था। विद्वान प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, कोडरमा द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अभिपुष्ट करते हुए द्वितीय अपील खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात, दोनों पक्षों के अधिवक्ता की उपस्थिति में दिनांक 14.2.2007 को वाद विद्वान उपन्यायाधीश-I कोडरमा के समक्ष अंतिम निपटारे के लिए रखा गया था। उस दिन पर पृथक तख्त काढ़कर निकालते हुए और पक्षों को हिस्सा आवंटित करते हुए प्लीडर कमिश्नर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को संपुष्ट किया गया था और अंतिम डिक्री तैयार करने का निर्देश दिया गया था। अंतिम डिक्री तैयार और सील की गयी थी और विद्वान उपन्यायाधीश-I कोडरमा ने इस पर हस्ताक्षर किया था। तत्पश्चात् प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण ने 202 दिनों के विलंब के बाद उक्त अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील दाखिल किया। अपील दाखिल करने में हुए विलंब को माफ करने की प्रार्थना करते हुए सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 3A के अधीन याचिका दाखिल की गयी थी।

5. विद्वान जिला न्यायाधीश, कोडरमा द्वारा दिनांक 22.1.2008 को आक्षेपित आदेश/निर्णय यह अभिनिर्धारित करते हुए पारित किया गया है कि अपीलार्थीगण अपील नहीं दाखिल करने में हुए 202 दिनों के विलंब को स्पष्ट करने में सक्षम नहीं थे और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 3A के अधीन आवेदन खारिज कर दिया। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने भी परिणामस्वरुप इसे समय वर्जित अभिनिर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दिया।

6. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री वी० शिवनाथ ने विद्वान जिला न्यायाधीश के उक्त आदेश/निर्णय का विरोध किया और निवेदन किया कि उक्त आदेश समस्त प्रासंगिक पहलूओं पर विचार नहीं करने और न्यायिक विवेक का इस्तेमाल नहीं करने के कारण दोषपूर्ण है। विद्वान अवर न्यायालय अपीलार्थीगण द्वारा स्पष्ट किए गए परिस्थितियों पर विचार करने में विफल रहा है और मनमाने रूप से अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थीगण द्वारा 202 दिनों का विलंब स्पष्ट नहीं किया गया है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्लीडर-कमिश्नर के रिपोर्ट के विरुद्ध अपीलार्थीगण ने आपत्ति दाखिल किया था जिसे विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त आदेश के विरुद्ध, वादीगण ने रिट याचिका डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 3609 वर्ष 2005 दाखिल किया था। उक्त रिट याचिका के लंबित रहने की दृष्टि में, याचीगण ने अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील दाखिल नहीं किया था। चूँकि अपीलार्थीगण उक्त रिट अधिकारिता में सद्भावपूर्ण अभियोजन कर रहे थे, अत: विद्वान अवर न्यायालय द्वारा उक्त परिस्थिति पर विचार किया जाना चाहिए था। ऐसा नहीं करके विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि अपीलार्थीगण 202 दिनों के विलंब को स्पष्ट करने में सक्षम नहीं हुए थे।

7. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस अपील का प्रतिवाद किया। अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया है कि वर्तमान अपील गलत विधिक धारणा के अधीन दाखिल किया गया है और इस अपील में विधि के सारवान प्रश्न को अंतर्ग्रस्त करने वाला कोई आधार नहीं है। वर्तमान अपील केवल प्रत्यर्थीगण को अनावश्यक हानि पहुँचाने और तंग करने के लिए दाखिल किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिसीमा अधिनियम की धारा 14 वर्तमान अपील में प्रयोज्य नहीं है। रिट याचिका अंतिम डिक्री के विरुद्ध दाखिल नहीं की गयी थी और रिट याचिका का लंबित रहना धारा 14 की परिधि के अंतर्गत आने वाले किसी आधार को गठित नहीं करता है। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने मामले के प्रत्येक पहलू पर विचार किया और अपील दाखिल करने में हुए विलंब को स्पष्ट करने में लिए गए आधार पर पूरी तरह विचार किया और सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया कि अपीलार्थीगण ऐसा कोई कारण अथवा परिस्थिति दर्शाने में विफल रहे जिसके अधीन उन्हें समय पर अपील दाखिल करने से रोका गया था। आदेश/निर्णय पर अच्छी तरह चर्चा की गयी है और यह कारणों से समर्थित है। आदेश/निर्णय में कोई गलती नहीं है जो इस न्यायालय की द्वितीय अपीलीय अधिकारिता में हस्तक्षेप करने की अपेक्षा करता हो।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार किया है। मैंने विद्वान अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश/निर्णय का परिशीलन भी किया है। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विलंब की माफी के लिए गए आधार पर पूरी तरह चर्चा की है और स्पष्टीकरण नहीं स्वीकार करने के लिए कारण दर्ज किया है। अपीलार्थीगण ने दो आधारों को लिया है; यह कि मामला विभिन्न न्यायालयों में लंबित था जिससे अपील दाखिल करने में विलंब हुआ और कि अपीलार्थीगण गंभीर बीमारी से पीड़ित थे जिस कारण वे समय के भीतर अपील दाखिल नहीं कर सके थे। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने यह संप्रेक्षित करते हुए बीमारी का आधार अस्वीकार कर दिया कि छह प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण थे और यह अभिवचन कि वे एक ही समय गंभीर बीमार थे, अविश्वसनीय है। इसके अतिरिक्त, उक्त आधार के समर्थन में कोई मेडिकल कागजात अथवा नुस्खा नहीं था। जहाँ तक विभिन्न न्यायालयों में अन्य कार्यवाहियों के लंबित रहने का संबंध है, विद्वान अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है और इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थीगण ने स्वीकार भी किया है कि अंतिम डिक्री, जिसके विरुद्ध अवर न्यायालय में हक-अपील सं० 37 वर्ष 2007 दाखिल की गयी थी, के विरुद्ध कहीं भी कोई कार्यवाही लंबित नहीं थी।

9. विद्वान अवर न्यायालय के आक्षेपित आदेश/निर्णय पर पूरी तरह चर्चा की गयी है। परिसीमा अधिनियम की धारा 14 प्रयोज्य नहीं है क्योंकि अंतिम डिक्री, जिसके विरुद्ध विद्वान अवर न्यायालय में अपील दाखिल किया गया था, के विरुद्ध कहीं भी कोई कार्यवाही लंबित नहीं थी।

10. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं इस अपील में विधि के सारवान प्रश्न को उद्भूत करने वाला कोई आधार नहीं बनाया गया पाता हूँ।

11. तद्नुसार, यह द्वितीय अपील खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

सोगेन मुर्मू

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 419 of 2009. Decided on 10th October, 2011.

संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949—धारा 5—संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1951—नियम 3—ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्ति–ग्राम प्रधान के रूप में अपीलार्थी की नियुक्ति को रिट न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया–आनुवांशिक अधिकार केवल अधिमानी अधिकार है और न कि संपूर्ण अधिकार–पात्र बनना एक बात है किंतु इसके अतिरिक्त जरूरत है कि नियमावली के मुताबिक उसे ग्रामीणों को स्वीकार्य होना चाहिए–घरजमाई अपने पिता के परिवार से समस्त संबंध विच्छेद कर लेता है और समस्त प्रयोजन से अपने ससुर का पुत्र बन जाता है–यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि घरजमाई की पत्नी को भी अपने पिता के उसके पति-उत्तराधिकारी के साथ बराबर का हिस्सा होगा–प्रत्यर्थी-पुत्री ग्राम प्रधान के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए विचार किए जाने की पात्र नहीं है–आक्षेपित आदेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 15 से 21)

निर्णयज विधि.–1987 PLJR 938; **1997 (2) BLJ 840;** 1965 BLJR 674; AIR 1961 SC 564; 1987 PLJR 938—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash Jha, Prakash Jha, A. Prakash, Banita Jha, For the Appellant; M/s Kanti Kumar Ojha, Rakesh Kumar, No.4, For the Respondent.

प्रकाश तातिया, मुख्य न्यायाधीश.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3416 वर्ष 2003 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 4 श्रीमती देवीमाई मुर्मू द्वारा दाखिल रिट याचिका अनुज्ञात की गयी है और अपीलार्थी को ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त करने वाले कमिश्नर द्वारा पारित आदेश (परिशिष्ट-6) को अपास्त कर दिया गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि कोई डोमन मुर्मू पाकुड़ जिला के अंतर्गत बिचपहार गाँव का ग्राम प्रधान था। अपने पीछे चार पुत्रियों को छोड़कर उसकी मृत्यु हो गयी और स्वीकृत तथ्य के मुताबिक डोमन मुर्मू अपने घर में सनातन टूड्डू को 'घरजमाई' बनाकर लाया। (''घरजमाई विवाह'' संथाल आदिवासी में रुढ़िजन्य विवाह है जिसमें पति के घर में दुल्हन देने के बजाय दूल्हे को पत्नी के घर में

लाया जाता है। डोमन मुर्मू की मृत्यु के बाद उक्त घरजमाई सनातन टुड्डू की पत्नी श्रीमती देवीमाई जो डोमन मुर्मू की पुत्री है ने ग्राम प्रधान के पद के लिए आवेदन दिया जबकि अपीलार्थी सोगन मुर्मू ने इस अभिवचन पर इसी पद के लिए आवेदन दिया कि वह डोमन मुर्मू का भतीजा है और चूँकि ग्राम प्रधान के पद पर उत्तराधिकार के लिए डोमन मुर्मू का कोई पुरुष उत्तराधिकारी/पात्र उत्तराधिकारी नहीं है, वह ग्राम प्रधान के पद का हकदार है।

यहाँ यह उल्लिखित करना उपयुक्त है कि घरजमाई सनातन टुड्डू जो घरजमाई के रूप में डोमन मुर्मू के घर आया था, ने पद के लिए आवेदन नहीं दिया था और अन्य चार पुत्रियों ने भी ग्राम प्रधान के पद के लिए आवेदन नहीं दिया था।

4. तथ्य बना रहता है कि दो दावेदार थे, एक प्रत्यर्थी सं॰ 4 देवीमाई मुर्मू, डोमन मुर्मू की पुत्री होने के नाते किंतु डोमन मुर्मू के घरजमाई की पत्नी की हैसियत से और प्रतिवाद करने वाला व्यक्ति डोमन मुर्मू का भतीजा अपीलार्थी सोगन मुर्मू था। पक्षगण संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 द्वारा शासित होते हैं और देवीमाई मुर्मू द्वारा दावा किया गया है कि ग्राम प्रधान का पद आनुवांशिक है, यद्यपि यह अधिनियम, 1949 के अधीन लोक पद है। अधिनियम 1949 की धारा 5 खास गाँव के ग्राम प्रधान की नियुक्ति प्रावधानित करती है और यह प्रावधानित करती है कि किसी खास गाँव के रैयत अथवा भूस्वामी के आवेदन पर विहित तरीके से अभिनिश्चित गाँव के जमाबंदी रैयतों के कम से कम दो-तिहाई की सहमति से उप-आयुक्त ग्राम प्रधान की नियुक्ति कर सकता है। उसकी धारा 6 गाँव, जो खास गाँव नहीं है, ग्राम प्रधान की मृत्यु पर हुई आकस्मिकता पर विचार करती है और, उस स्थिति में, विहित तरीके से ग्राम प्रधान की नियुक्ति की दृष्टि से गाँव के भू-स्वामी को इस तथ्य को इसके होने के तीन माह के भीतर उपायुक्त को रिपोर्ट करने की आवश्यकता है। धारा 7 प्रावधानित करती है कि अपने कर्तव्य के सम्यक् निर्वहन के लिए ग्राम प्रधान को पट्टा प्रदान किया जाय और कबूलियत निष्पादित किया जाय और प्रतिभूति प्रस्तुत की जाय।

5. अधिनियम 1949 की धारा 71 की उपधारा (2) के खंड (i) और (ii) द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में नियमावली भी विरचित की गयी है जो संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1951 के रूप में ज्ञात है। नियम 3 धारा 5 के अधीन जमाबंदी रैयतों की सहमति अभिनिश्चित करने और प्रधान की नियुक्ति की प्रक्रिया प्रावधानित करता है। नियम 3 का उपनियम (1) कहता है कि धारा 5 के अधीन रैयत अथवा भूस्वामी से आवेदन की प्राप्ति पर उपायुक्त गाँव के जमाबंदी रैयतों और भूस्वामी को फॉर्म A में नोटिस जारी करेगा। नियम 3 का उपनियम (2) गाँव के जमाबंदी रैयतों के रूप में दर्ज किए गए व्यक्तियों की कम से कम दो-तिहाई की सहमति की प्राप्ति प्रावधानित करता है जिसे हाथ दिखाकर उपायुक्त द्वारा अभिनिश्चित किया जाएगा। नियम 3 का उपनियम (5) धारा 5 अथवा धारा 6 अर्थात् धारा 5 के अधीन खास गाँव के लिए प्रधान अथवा धारा 6 के अधीन गाँव जो खास गाँव नहीं है के प्रधान की नियुक्ति प्रावधानित करता है। उपायुक्त को अनुसूची V में विहित प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा सिवाय वहाँ के जहाँ ये नियम, अभिव्यक्त रूप से अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा अन्यथा प्रावधानित करते हैं। अनुसूची V प्रावधानित करती है कि प्रधान को गाँव का निवासी होना होगा और उसका स्थायी घर गाँव के एक मील के भीतर होना होगा।

6. इस विवाद जो हमारे समक्ष है, को विनिश्चित करने के प्रयोजन से अनुसूची (V) का खंड (1) और खंड (3) प्रासंगिक है, जो निम्नलिखित है:-

[kM (1)

*^^çèkkuk dh fu;fDr;k xko dh çFkk d vu#i dh tk,xh vkj fdlh fu;fDr dk li"V dju d igy mik;Dr Lo; dk lr"V djxk fd mEehnokj lkekU; r% j;rk dk Lohdk; g vkj fdlh mEehnokj d çfr vkifÙk dju d fy, LoRoèkkjh dk çR;d ekey e volj Hkh fn;k tk,xkA***

[kM (3)

^^çèkku dk in vuokf'kd gku d dkj.k vxyk mÙkjkfèkdkjh] tk ;kX; g] çèkku gkuk pkfg,A ;fn mÙkjkfèkdkjh vo;Ld g] ml o;Ldrk çkIr dju rd ml d fy, 0;oLFkk dju d fy, ljc[kj d lkFk çèkku fu;Dr fd;k tk ldrk gA

*;fn mi;Dr ljc[kj ugh ik;k tkrk g] vo;Ld dk vfèkdkj lekIr gk tkrk gA***

7. सब–डिविजनल अधिकारी ने दिनांक 29 सितंबर, 2001 के आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान अपीलार्थी, मूल ग्राम प्रधान डोमन मुर्मू का भतीजा, जिसके पक्ष में अधिकतर रैयतों ने मत दिया है और जो उत्तराधिकारी भी है, ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने का हकदार है जबकि प्रत्यर्थी सं॰ 4 देवीमाई मुर्मू घरजमाई की पत्नी और डोमन मुर्मू की पुत्री होने के नाते उत्तराधिकारी नहीं है और न ही अपीलार्थी के पक्ष में गाँववालों द्वारा दिए गए मत की दृष्टि में गाँव वालों को स्वीकार्य है।

8. दोहराने की कीमत पर, स्मरण किया जा सकता है कि घरजमाई सनातन टुड्डू ने पद के लिए आवेदन नहीं दिया था, जो पक्षों को शासित करने वाले रुढ़िजन्य विधि के मुताबिक मूल ग्राम प्रधान मृतक डोमन मुर्मू के पुत्र के रूप में माना जा सकता था।

9. अपील में, उपायुक्त, पाकुड़ ने अभिनिर्धारित किया कि गाँव के रैयतों की सहमति प्राप्त करने के लिए सब–डिविजनल अधिकारी द्वारा प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया था और सब डिविजनल अधिकारी ने प्रत्यर्थी सं॰ 4 देवीमाई मुर्मू के विरुद्ध दाखिल वर्ष 1995 के परिवाद के अप्रासंगिक तथ्य को भी विचार में लिया है। उपायुक्त, पाकुड़ ने यह मत भी दिया कि मृतक डोमन मुर्मू की पुत्री के साथ घर जमाई विवाह करने के बाद देवीमाई मुर्मू ने भी अपने पिता डोमन मुर्मू के पुत्र का दर्जा पाया था और, इसलिए, वह उत्तराधिकारी है और अपीलार्थी भतीजा की तुलना में ग्राम प्रधान के पद की हकदार भी है।

10. उपायुक्त का दिनांक 12 सितंबर, 2002 के आदेश को डिविजनल आयुक्त, दुमका, संथाल परगना, के समक्ष द्वितीय अपील दाखिल करके चुनौती दी गयी थी जिन्होंने पक्षों के अभिवचन पर विचार करने के बाद अभिनिर्धारित किया कि घरजमाई दत्तक पुत्र का दर्जा अर्जित करता है और वह हिंदू विधि में दत्तक पुत्र के समतुल्य है। चूँकि, संथाल परगना में विवाह का घरजमाई रूप विवाह का मान्यता प्राप्त रूप है, अत: सनातन टुड्डू डोमन मुर्मू का उत्तराधिकारी बन सकता है और, इसलिए, डोमन मुर्मू की पुत्री देवीमाई मुर्मू उत्तराधिकारी नहीं है और ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्त किए जाने की हकदार नहीं है।

11. डिविजनल आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 20 मई, 2003 के आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं॰ 4 देवीमाई मुर्मू ने रिट याचिका दाखिल किया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा, यह संप्रेक्षण करने के बाद अनुज्ञात किया गया था कि प्रधान का पद आनुवंशिक है और अगले उत्तराधिकारी को प्रधान के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए और ऐसा व्यक्ति पुत्र अथवा पुत्री हो सकता है। पुत्री प्रधान बनने

की केवल तब हकदार है यदि वह 'घरजमाई पुत्री' है तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि वह विवाह के घरजमाई रूप के अनुसार किसी व्यक्ति से विवाहित है और उसका पति स्वयं अपने परिवार से अपना संबंध विच्छेद करके अपने ससुराल में रह रहा है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष पर आने के लिए 'गांटजर रिपोर्ट' पर भी विचार किया कि घरजमाई पुत्री बनने के बाद डोमन मुर्मू की पुत्री देवीमाई मुर्मू डोमन मुर्मू के समस्त अधिकारों का हकदार बन गयी।

12. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि विधि की पूर्णत: अपव्याख्या की गयी है जो विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 18 अगस्त, 2009 के आक्षेपित निर्णय से प्रकट है जिसमें एक नया संबंध गढ़ा गया है जो 'घरजमाई पुत्री' है जबकि आदिवासियों में ऐसा कोई संबंध नहीं है। तब निवेदन किया गया है कि प्रथमत: पद, यदि इसे आनुवंशिक पद माना जाता है, तब देवीमाई मुर्मू उत्तराधिकारी नहीं है क्योंकि वह विवाहित पुत्री है और संथाल आदिवासी पर प्रयोज्य विधि के मुताबिक विवाहित पुत्री किसी भी तरीके से अपने पिता की संपत्ति अथवा अधिकारी की उत्तराधिकारी नहीं है। द्वितीयत:, यदि कोई घरजमाई विवाह संपन्न करता है और पिता के परिवार में पति लाता है, तब भी अधिकाधिक उक्त घरजमाई आदिवासी के रुढ़िजन्य विधि के मुताबिक उत्तराधिकारी बन सकता है और ऐसा ही होता है यदि पक्षगण हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा शासित होते हैं और घरजमाई को दत्तक पुत्र के रूप में माना जाता है। इस मामले में डोमन मुर्मू के घरजमाई, देवीमाई मुर्मू के पति, ने ग्राम प्रधान के पद पर ऐसी नियुक्ति के लिए किसी अधिकार का दावा नहीं किया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **1965 BLJR 674** में प्रकाशित **जगदीश मिश्रा बनाम चमकलाल मिश्रा** और **1997 (2) Bihar Law Judgement, 840** में प्रकाशित **बाबूलाल हेम्ब्रम बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामलों में दिए गए पटना उच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर और इसके अतिरिक्त सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 180 वर्ष 1968 में दिनांक 31 मार्च, 1969 को दिए गए **दुर्योधन मंडल बनाम घोषतो मंडल एवं अन्य** के मामले में पटना उच्च न्यायालय के अप्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया है। निवेदन किया गया है कि सर्वोपरि ध्यान ग्रामीणों का चयन है और ग्राम प्रधान का पद आनुवंशिक पद अथवा अधिकार नहीं है जैसा **जगदीश मिश्रा के मामले (ऊपर)** में अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें भतीजे को प्राथमिकता दी गयी थी जबकि मृतक ग्राम प्रधान का पुत्र वहाँ था किंतु गाँववालों द्वारा उसे पूरी तरह अस्वीकार कर दिया गया था। **बाबूलाल हेम्ब्रम के मामले (ऊपर)** में ग्राम प्रधान के पुत्र का दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि वह नियमित रूप से गाँव के एक मील के भीतर नहीं रह रहा था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार आनुवंशिक दावा केवल अधिमानी अधिकार है और न कि संपूर्ण अधिकार और इसे उन मामलों में अस्वीकार किया जा सकता है, प्रथमत:, जहाँ अभिकथित उत्तराधिकारी ग्रामीणों की सहमति प्राप्त करने में विफल रहता है और इस आधार पर भी कि वह गाँव में अथवा गाँव के एक मील के भीतर निवास नहीं कर रहा है। इस मामले में, अपीलार्थी मृतक ग्राम प्रधान का निकटतम संबंधी है और ग्रामीणों के मतों का बहुमत भी पाया है जैसा विधि के अधीन आवश्यक है और उसके विरुद्ध प्रत्यर्थी सं॰ 4 को केवल आठ मत मिले, जिसने स्पष्टत: अपीलार्थी का दावा सिद्ध किया। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **अशोक कुमार हेम्ब्रम बनाम रानी हेम्ब्रम,** 1987 PLJR 938, मामले में प्रदत्त निर्णय पर विश्वास किया और **गजूला दशरथ रामा राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, AIR 1961 SC 564,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आनुवंशिक दावा के प्रश्न पर विचार किया गया है।

13. प्रत्यर्थी सं॰ 4 के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 "घरजमाई पुत्री'' है और स्वीय विधि की दृष्टि में, जैसा वर्ष 1935 के संथाल परगना के जिला गजट में भी मान्यता दी गयी है; 'घरजमाई पुत्री' (घरजमाई की पत्नी) पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारी बनती है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 के विद्वान अधिवक्ता ने संथाल परगना के उक्त जिला गजट, 1938 के उद्धरणों को अंतर्विष्ट करने वाले एक पुस्तक को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

हम उस उद्धरण को उद्धृत करना चाहेंगे जिस पर प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया है जो निम्नलिखित है:–

> ^^mÙkjkfèkdkj dh lFkky fofèk firlÙkkRed gA tc rd og thfor g firk dk ifjokj dh lifÙk ij i.k fu;=.k gA mÙkjkfèkdkj dh #f<tU; lFkky fofèk ifjokj dh lifÙk ij efgyk d mÙkjkfèkdkj dk ekU;rk ugh nrh gA lifÙk e efgyk dk dkb nkok ugh gkrk gA i=h viu er firk dh lifÙk dk mÙkjkfèkdkjh rc rd ugh cu ldrh g tc rd og ?kjtekb :i e fookfgr ugh gA ?kj tekb i=h leLr vk'kf;r ç;ktuk l i= dk ifjy{k.k ikrh gA mÙkjkfèkdkj dh lFkky fofèk doy ifjokj dh ifDr dk tkjh j[ku d fy, mÙkjkfèkdkjh cuu d fy, ?kj tekb i=h dk Lohdkj djrh gA ;fn ?kjtekb i=h dh eR; fu%lrku gk tkrh g] erd dh lifÙk ?kjtekb vFkok nkekn dk U;kxr ugh gkxhA nkekn viuh iRuh vkj i= d lkFk l;Dr Lokeh gA bu nkuk dh vuifLFkfr e mldk lifÙk e dkb fofèkd nkok ugh gkrk gA og doy [kkjik'k vFkok Hkj.k&ik"k.k dk nkok dj ldrk g tc rd og thfor g vkj foèkj dh rjg jgrk gA fdr ;fn og iufookg djrk g] Hkj.kik"k.k dk nkok Hkh leiâr djrk gA ,lk blfy, g D;kfd mÙkjkfèkdkj dh lFkky #f<tU; fofèk ?kjtekb i=h d ekey d flok; ,d Parish (ifDr) l nlj Parish (ifDr) rd lifÙk d vrfjr gku dh vuefr ugh nrh gA lFkky ijxuk dk ijku ftyk xtV mfYyf[kr djrk g fd foèkok ?kjtekb lftr ugh dj ldrh gA fdr bl xyr ik;k x;k gA foèkok viu er ifr d vxy mÙkjkfèkdkfj;k dh lgefr l ?kjtekb lftr dj ldrh gA
>
> i= vFkok ik= d 0;frØe e Hkh vU; fookfgr i=h dk er firk dh lifÙk ij dkb nkok ugh gA fdr gky e dN ekey g, g ftue fookfgr if=;k u viu firkvk dh iFkd lifÙk e oèk gd vftr fd;k FkkA fdr] i=h mÙkjkfèkdkjh ugh gk ldrh g ;fn lifÙk l;Dr gA dfri; ifjfLFkfr;k e] tlk dgh vkj dfFkr fd;k x;k g] viu er firk dh py lifÙk e if=;k dk li.k vfèkdkj gA**

14. पुस्तक (जिसके प्रकाशक और लेखक का नाम पुस्तक में नहीं है जो हमें दी गयी है, शायद इस तथ्य के चलते कि पुस्तक बहुत पुरानी है) में उल्लिखित उद्धरण के आधार पर प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 'घरजमाई पुत्री' है और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष को अनदेखा नहीं किया जा सकता है, जिसमें यह विनिर्दिष्टत: अभिनिर्धारित किया गया है कि मतदान की प्रक्रिया वैध नहीं थी और परिवाद के दस्तावेज को विचार में लिया गया था जो वर्ष 1995 का था, और विवाद्यक विनिश्चित करने के लिए प्रासंगिक नहीं था और न ही रैयतों और ग्रामीणों की सहमति दर्ज करने के प्रयोजन से साक्ष्य का तात्विक टुकड़ा हो सकता था।

15. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है। जहाँ तक संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 में बनाए गए

प्रावधानों का संबंध है, उसकी धारा 5 खास गाँव के ग्राम प्रधान की नियुक्ति को शासित करती है जबकि धारा 6 उन गाँवों, जो खास गाँव नहीं है, के प्रधान, जिसके लिए प्रधान की मृत्यु के कारण रिक्तता हो सकती है, की नियुक्ति प्रावधानित करती है। धारा 5 स्पष्टत: प्रावधानित करती है कि खास गाँव में, उक्त गाँव में रैयत अथवा भूस्वामी के आवेदन पर प्रधान की नियुक्ति की जा सकती है और ऐसी नियुक्ति गाँव के जमाबंदी रैयतों के कम से कम दो-तिहाई की सहमति के साथ की जा सकती है जिसे उपायुक्त द्वारा अभिनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है। ऐसी सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता है जैसा नियमावली 1951 के नियम 3 के अधीन प्रावधानित किया गया है और यह स्वयं नियमावली 1951 में विहित फॉर्म A में भूस्वामी और गाँव के जमाबंदी रैयतों को नोटिस जारी किए जाने और प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए सहमति की अपेक्षा करती है। धारा 5 के अधीन, स्वयं उपायुक्त द्वारा सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता है और ऐसा हाथ दिखाकर करना होगा और न कि गोपनीय मतदान द्वारा। यद्यपि ग्राम प्रधान की नियुक्ति के लिए नियम 3 के अधीन पृथक प्रावधान बनाया गया है जब ऐसे गाँव में प्रधान की मृत्यु के कारण रिक्तता होती है जो खास गाँव नहीं है। नियमावली 1951 के नियम 3 का उपनियम (5) प्रावधानित करता है कि धाराओं 5 और 6 के अधीन प्रधान की नियुक्ति करते हुए दोनों मामलों में उपायुक्त को अनुसूची V में विहित नियमों का अनुसरण करना होगा सिवाय वहाँ के जहाँ ये नियम, अभिव्यक्त रूप से अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा अन्यथा प्रावधानित करते हैं। यह किसी का मामला नहीं है कि अनुसूची V की प्रयोज्यता को अभिव्यक्त रूप से अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा अपवर्जित कर दिया गया है। अनुसूची V का खंड (1) गाँव की रुढ़ि के अनुरुप प्रधान की नियुक्ति प्रावधानित करता है और यह अत्यन्त विनिर्दिष्टत: स्पष्ट किया गया है कि किसी नियुक्ति को संपुष्ट करने के पहले उपायुक्त को स्वयं को संतुष्ट करना होगा कि उम्मीदवार रैयतों को सामान्यत: स्वीकार्य है। धाराएँ 5 और 6 संपूर्णता में कहीं नहीं प्रावधानित करती है कि ग्राम प्रधान का पद आनुवंशिक होगा और न ही ऐसा अनुसूची V के खंड (1) में प्रावधानित किया गया है। किंतु, अनुसूची V का खंड (3) उल्लिखित करता है कि 'प्रधान का पद आनुवंशिक होने के नाते अगला उत्तराधिकारी जो सुयोग्य है प्रधान होना चाहिए।' यहाँ, नियमावली में, पहली बार, यह उल्लिखित किया गया है कि प्रधान का पद आनुवंशिक है। अत: धाराओं 5 और 6 के साथ नियम 3 के उपनियमों (3) और (5) सह-पठित अनुसूची V के खंड (1) और (3) के संयुक्त पठन पर पता चलता है कि दोनों गाँवों अर्थात् खास गाँव और वैसे गाँव जो खास गाँव नहीं हैं के प्रधान की नियुक्ति की प्रक्रिया एक ही है। खास गाँव के मामले में नियुक्ति गाँव के जमाबंदी रैयतों के कम से कम दो-तिहाई की सहमति के साथ विनिर्दिष्टत: किए जाने की आवश्यकता है और जहाँ तक उन गाँवों जो खास गाँव नहीं है के प्रधान की नियुक्ति का संबंध है, तब उस मामले में प्रधान की मृत्यु पर अनुसूची V और अनुसूची V के खंड (1) के अनुरुप नियमावली 1951 के नियम 3 के उपनियम (5) के मुताबिक प्रधान की नियुक्ति गाँव की रुढ़ि के अनुरुप की जाएगी और यह भी कहता है कि उम्मीदवार रैयतों को सामान्यत: स्वीकार्य होना चाहिए। अत:, इस मामले में विवाद उद्भूत हुआ कि क्या कोई व्यक्ति, जो उत्तराधिकारी है, अपने उत्तराधिकारी होने के फलस्वरुप गाँव के प्रधान के पद पर नियुक्त किया जा सकता है अथवा उसके रैयतों को स्वीकार्य होने की आवश्यकता है।

16. इसके लिए, **जगदीश मिश्रा बनाम चमकलाल मिश्रा, 1965 BLJR 674** के मामले में पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रधान रैयतों का प्रतिनिधि होता है और उसकी नियुक्ति प्रधान के रूप में नियुक्त किए जा रहे व्यक्ति विशेष की स्वीकार्यता के प्रति रैयतों की भावनाओं के अनुसार उपायुक्त द्वारा की जानी होगी। खंडपीठ ने यह भी संप्रेक्षित किया कि प्रधान

की नियुक्ति करने के पहले सबसे महत्वपूर्ण बात उपायुक्त को स्वयं को संतुष्ट करना है कि क्या वह व्यक्ति जिसे प्रधान के रूप में नियुक्त किया जा रहा है जमाबंदी रैयतों को स्वीकार्य है या नहीं क्योंकि नियुक्ति जमाबंदी रैयतों के मत के अनुरुप उपायुक्त द्वारा की जानी है।

धारा 5 और धारा 6 सह-पठित नियम 3 के उपनियम (5) की भाषा स्पष्टत: उपदर्शित करती है कि सर्वोपरि ध्यान जमाबंदी रैयतों के मत के अनुरुप उपायुक्त की संतुष्टि है। आनुवंशिक अधिकार केवल अधिमानी अधिकार है और न कि संपूर्ण अधिकार और यह अधिकार प्रधान के पद पर विचार किए जाने के लिए अन्यों के मुकाबले किसी को अधिक पात्र बनाता है और किसी तरीके से निर्णायक कारक नहीं है। इस प्रकार पात्र बनना एक बात है किंतु आगे आवश्यकता यह है कि उसे नियमावली के मुताबिक गाँव वालों को स्वीकार्य होना चाहिए। **जगदीश मिश्रा के मामले (ऊपर)** में बेहतर उत्तराधिकारी का दावा गाँव वालों को अस्वीकार्य होने के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था। केवल यही नहीं, पुत्र का दावा भी अस्वीकार किया जा सकता है यदि वह गाँव में अथवा गाँव के एक मील क्षेत्र के भीतर नियमित रूप से नहीं रह रहा है जैसा **बाबूलाल हेम्ब्रम बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 1997 (2) Bihar Law Judgment 840,** में पटना उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है।

17. किंतु, यहाँ इस मामले में उक्त प्रश्न नहीं है जो तथ्यों से प्रकट हो जाएगा बल्कि प्रश्न है कि क्या प्रत्यर्थी देवीमाई, घरजमाई की पत्नी मृत ग्राम प्रधान डोमन मुर्मू की उत्तराधिकारी है भी या नहीं।

18. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत पुस्तक से हमने केवल यह दर्शाने के प्रयोजन से उद्धरण को उद्धृत किया है कि उक्त पुस्तक में शब्द 'घरजमाई पुत्री' के प्रति निर्देश है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट इसी पुस्तक में, परिशिष्ट I में, जो भी गांटजर सेटलमेंट रिपोर्ट (पैराग्राफ 46, पृष्ठ 22-23) से उद्धरण है, संथाल आदिवासी में उत्तराधिकारी के विवाद्यक पर चर्चा की गयी है। इसी पुस्तक में यह कहा गया है कि उत्तराधिकार के हिन्दू या मुस्लिम विधि संथालों पर लागू नहीं होते हैं। संथाल आदिवासी विधि स्त्रियों को उत्तराधिकारी होने की अनुमति नहीं देने में बिल्कुल निश्चित है। किंतु, यह संप्रेक्षित किया गया है कि यह विधि अब धीरे-धीरे बदल रही है और इस परिवर्तन द्वारा सृजित स्थिति पर भी लेखक द्वारा पृथक पैराग्राफ में चर्चा किया गया है किंतु चूँकि स्त्रियों को अधिकार नहीं देने की रुढ़िजन्य विधि अब तक प्रभावित नहीं हुई है और न ही उक्त रुढ़िजन्य विधि परिवर्तित कर दी गयी है। परिवर्तन प्रक्रिया में हो सकता है परन्तु अभी तक यह नया रूढिजन्य विधि नहीं बन पाया है क्योंकि हमारे समक्ष किसी पक्ष ने ऐसे पूर्ववृत का दावा नहीं किया है। चाहे जो भी हो, विधिक स्थिति की दृष्टि में इसे विवादित नहीं किया जा सकता है कि हिंदू और मोहम्मडन उत्तराधिकार विधियाँ संथालों पर लागू नहीं होती है और संथाल आदिवासी विधि स्त्रियों को उत्तराधिकार की अनुमति नहीं देने में बिल्कुल निश्चित है। हम ऐसी रुढ़िजन्य विधि के जारी रहने के तर्क का परीक्षण नहीं कर रहे है जब समस्त सरकारें महिलाओं की शिक्षा और स्वावलंबन को प्रोत्साहित कर रही हैं, और सब स्त्री के समान अधिकारों का प्रवचन दे रहे हैं और निर्वाचित निकायों में अध्यक्ष पद भी आरक्षित किया जा रहा है और इससे भी अधिक एस॰ सी॰ और एस॰ टी॰ महिलाओं को चुनावों में आरक्षण दिया जा रहा है, तो क्या वैसे रुढ़िजन्य विधि को जारी रहना चाहिए जो न केवल पिता की संपत्ति में अधिकार से इनकार करता है बल्कि लोक पद से भी इनकार करता है। घरजमाई का अंगीकरण एक औपचारिक कार्यवाही जो ससुर के आशय के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ता है और जिसका परिणाम यहाँ तक संपत्ति के अपने अधिकारों का संबंध है,

घरजमाई द्वारा स्वयं अपने परिवार के साथ पूर्ण संबंध विच्छेद और समस्त आशयों और प्रयोजन से अपने ससुर का पुत्र बन जाने में होता है। जब ऐसा अंगीकरण औपचारिक रूप से किया जाता है, घरजमाई पुत्र के रूप में उत्तराधिकारी हो सकता है और अन्य पुरुष संबंधियों को बाहर निकाल सकता है। लेखक ने यह भी कहा है कि यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि घरजमाई को विवाह के समय ग्रामीण समुदाय की उपस्थिति में एक सोच विचारकर किए गए सार्वजनिक कृत्य द्वारा अंगीकार किया जा सकता है।

घरजमाई विवाह एक विचित्र प्रकार का विवाह है और उस विवाह में दुल्हन पक्ष दुल्हन के घर से संभावित पति को लाने जाता है और दहेज नहीं दिया जाता है जबकि घरजमाई को पुत्र के रूप में स्थायी रूप से अंगीकार किया जाता है। विवाह के एक अन्य रूप अर्थात घरदी जमाई भी है जो अपनी पत्नी के घर में केवल पहले से अनुबंधित अवधि, जो पाँच वर्ष तक बढ़ायी जा सकती है, के लिए रहता है और काम करता है।

19. एक अन्य गजट प्रकाशन है जिसे अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है और **अशोक कुमार हेम्ब्रम बनाम रानी हेम्ब्रम,** 1987 PLJR 938 के मामले में पटना उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा विचार किया गया है अर्थात् अधीक्षक, सचिवालय मुद्रणालय, पटना द्वारा वर्ष 1965 में मुद्रित संथाल परगना का जिला गजट जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

> *^^ifjf'k"V&Ie] xtV d lVyeV fjikV l m) j.k fn;k x;k g tk dgrk g fd fL=;k dk Hkfe dk mÙkjkfèkdkjh cuu dh vuefr ugh nu e lFkky vkfnok lh fofèk fcYdy lxr g fdr i#"k ft l i= ugh cfYd i=h g dk viu nkekn dk ?kjtekb d :i e viu ?kj yku vkj ml dk i= dk leLr vfèkdkj nu dh NV gA , lk ?kjtekb viu firk d ifjokj d lkFk viuk lkjk lcèk rkM yrk g vkj leLr vk'k;k ,o ç;ktuk l viu llj dk i= cu tkrk gA fookg d le; ij xke lenk; dh mifLFkfr e doy lkp&le> x, ykd ÑR; }kjk ?kj tekb dk vxhdkj fd;k tk ldrk gA***

अत:, दोनों प्रकाशनों की दृष्टि में, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि घरजमाई अपने पिता के परिवार से समस्त संबंध विच्छेद कर लेता है और समस्त आशयों और प्रयोजनों से अपने ससुर का पुत्र बन जाता है।

20. अत:, हमारा सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत पुस्तक में 'घरजमाई पुत्री' शब्द का उपयोग अनवधानता के कारण किया गया था और हम पाते हैं कि शब्द घरजमाई विधिक प्रतिपादना के अनुरुप प्रतीत होता है कि घरजमाई समस्त प्रयोजनों से ससुर का पुत्र बन जाता है और यदि ऐसा है तब यह अभिनिर्धारित करना मुश्किल होगा कि घरजमाई के ससुर की मृत्यु पर पुत्री जो घरजमाई की पत्नी है, का भी अपने पिता के उत्तराधिकारी अपने पति के साथ बराबर का हिस्सा होगा।

21. उक्त कारणों की दृष्टि में, प्रत्यर्थी सं॰ 4 को विधिक उत्तराधिकारी नहीं कहा जा सकता है ताकि ग्राम प्रधान के पद पर नियुक्ति के लिए विचार करने के प्रयोजन से पात्र बना जा सके। अत:, सब–डिविजनल अधिकारी द्वारा पारित आदेश को दी गयी उसकी चुनौती पोषणीय नहीं थी और द्वितीय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सब–डिविजनल अधिकारी द्वारा पारित आदेश का पुनर्स्थापन विधिक और न्यायोचित है। यह प्रतीत होता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश 'घरजमाई पुत्री' जैसे संबंध को स्वीकार करने के लिए अग्रसर हुए किंतु हमारा दृष्टिकोण है कि 'घरजमाई पुत्री' जैसा कोई शब्द अथवा संबंध नहीं है।

22. उक्त कारणों की दृष्टि में, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 18 अगस्त, 2009 का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और इसलिए अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, सब-डिविजनल अधिकारी के आदेश को पुनर्स्थापित करने वाले अपीलीय आदेश को मान्य ठहराया जाता है।

23. तद्नुसार, लेटर्स पेटेन्ट अपील अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

एस॰ शेषाद्रि (459 में)

कुंज लाल दत्ता (248 में)

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से (दोनों में)

Cr. Rev. Nos. 459 with 248 of 2010. Decided on 29th November, 2011.

शासकीय गुप्त अधिनियम, 1923—धाराएँ 5(4) एवं 5(1) (d)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 13(3), 239 एवं 473—रेखाचित्रों का खो जाना–संज्ञान–इस आधार पर कि संज्ञान परिसीमा द्वारा वर्जित था, पर उन्मोचन के लिए प्रार्थना–आक्षेपित आदेश में परिवाद दाखिल करने में कारित विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था–आक्षेपित आदेश अवैधता से ग्रस्त है–सी॰ बी॰ आई॰ का अभिवचन कि मंजूरी प्रदान करने में प्राधिकारी द्वारा लिए गए समय को अपवर्जित करने की आवश्यकता है, स्वीकार्य नहीं है–परिवाद दाखिल करने में विलंब का कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं है–यदि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाती है, याचीगण त्वरित विचारण के अधिकार से वंचित हो जायेंगे जो अनुच्छेद 21 के अधीन अन्य असंक्राम्य है–संज्ञान का आदेश अपास्त किया गया। (पैराएँ 11 से 20)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 297; AIR 2000 SC 2754; (2009) 14 SCC 3—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s. D.K. Prasad, A.K. Das, For the Petitioners; Mr. M. Khan, For the C.B.I.

आदेश

ये दोनों पुनरीक्षण आवेदन आर॰ सी॰ सं॰ 5 वर्ष 1973 में सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी-सह-विशेष न्यायिक दंडाधिकारी (सी॰ बी॰ आई॰) द्वारा पारित दिनांक 20.1.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित हैं जिसके द्वारा याचीगण द्वारा अन्य आधारों के साथ इस आधार पर कि दिनांक 25.4.1978 को याचीगण के विरुद्ध लिया गया संज्ञान परिसीमा द्वारा वर्जित है, उनको उन्मोचित करने के लिए की गयी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है।

2. इन पुनरीक्षण आवेदनों को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि दिनांक 29.4.1940 को आयुध निरीक्षणालय, राँची ने विजयंत टैंक के रिक्वायल सिस्टम और सिस्टम इंडिकेटर 105/53 IA से संबंधित 37 रेखाचित्रों को घटकों के निर्माण की संभावना तलाशने की दृष्टि से दिनांक 29.4.1970 के गोपनीय पत्र के तहत वाणिज्यिक प्रबंधक, एच॰ ई॰ सी॰, राँची को भेजा। घटकों के निर्माण की संभावना तलाशने की प्रक्रिया में 37 में से तीन रेखाचित्र खो गए। जब मामला सी॰ बी॰ आई॰ को रिपोर्ट किया गया, मामला अन्वेषण के लिए पुलिस स्थापन की राँची शाखा में दर्ज किया गया था। अन्वेषण के दौरान, यह पता लगा था कि एच॰ ई॰ सी॰ में कनीय विक्रय अभियंता (सी॰ एंड एफ॰) के रूप में पदस्थापित याची एस॰ शेषाद्रि और एच॰ ई॰ सी॰ के वाणिज्यिक खंड में विक्रय प्रबंधक के रूप में पदस्थापित अन्य याची के॰

एल॰ दत्ता उन रेखाचित्रों की चोरी के लिए जिम्मेदार थे। तद्नुसार, दिनांक 29.3.1978 को उसमें यह अभिकथन करते हुए परिवाद दर्ज किया गया था कि याचीगण ने शासकीय गुप्त अधिनियम, 1923 की धारा 5(4) सह-पठित धारा 5(1) (d) के अधीन अपराध किया है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी दिए जाने पर दिनांक 25.4.1978 को अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. उस आदेश से व्यथित होकर, संज्ञान लेने वाले आदेश क्योंकि यह समय वर्जित था, को वापस लेने के लिए अवर न्यायालय के समक्ष आवेदन दिया गया था किंतु याचीगण में से एक द्वारा की गयी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी। उस पर दांडिक विविध सं॰ 6558 वर्ष 1980 में इस न्यायालय के समक्ष याची कुंज लाल गुप्ता आया। न्यायालय ने यह पाने पर कि याची को सुने बिना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 के निबंधनानुसार आदेश पारित किया गया है, संबंधित न्यायालय को परिसीमा के प्रश्न का नए सिरे से परीक्षण और आरोप विरचित किए जाने के समय संज्ञान की वैधता पर विचार करने का निर्देश देते हुए मामला निपटाया। उस आदेश को सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा एस॰ एल॰ पी॰ (दांडिक) सं॰ 2183 वर्ष 1982 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 7.10.1983 को खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात अभियोजन ने आरोप के पहले सात गवाहों का परीक्षण किया। आरोप के पहले अभियोजन साक्ष्य की समाप्ति पर मामले से याचीगण को उन्मोचित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन आवेदन इस आधार पर दाखिल किया गया था कि आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं है और परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण संज्ञान लेने वाले आदेश को भी चुनौती दी गयी थी। उस आवेदन को दिनांक 21.1.2010 के आदेश के तहत यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया था कि आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है। इसी समय पर न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए न्याय के हित में परिसीमा के बिंदु पर विलंब माफ करने के लिए आदेश पारित किया। इन दोनों आवेदनों में उस आदेश को चुनौती दी गयी है।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आदेश जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है, परिसीमा द्वारा वर्जित है क्योंकि प्राथमिकी वर्ष 1970 में हुए अपराध के लिए दिनांक 6.7.1973 को दर्ज की गयी थी और शासकीय गुप्त अधिनियम, 1923 की धारा 5(4) सह-पठित धारा 5(1)(d) के अधीन अपराध का संज्ञान दिनांक 25.4.1978 को लिया गया है जो तीन वर्षों के परे है और इस प्रकार, यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468 में अंतर्विष्ट प्रावधान के फलस्वरुप परिसीमा द्वारा वर्जित है।

5. इसके विरुद्ध, सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि वर्ष 1973 में चोरी के अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज की गयी थी किंतु अपराधकर्ताओं (याचीगण) को केवल दिनांक 17.8.1974 को ही पहचाना जा सका था। दोषियों की शिनाख्त होने पर दिनांक 9.12.1974 को अभियोजन की मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी की अनुमति इप्सित की गयी थी जिसे दिनांक 21.3.1978 को प्रदान किया गया था और उसके तुरन्त बाद दिनांक 29.3.1978 को परिवाद दर्ज किया गया था जिस पर दिनांक 25.4.1978 को अपराध का संज्ञान लिया गया था।

6. आगे निवेदन किया गया है कि यद्यपि विभाग द्वारा तीन वर्षों से अधिक का समय लिया गया था किंतु उस अवधि को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 470(3) में अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनानुसार परिसीमा की गणना करने के प्रयोजन से अपवर्जित कर देने की आवश्यकता है।

7. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 न्यायालय को इस तथ्य के बावजूद दो आधारों पर एक अपराध का संज्ञान लेने का व्यापक स्वविवेक प्रदान करता है कि कार्रवाई दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468

सह–पठित धारा 469 के फलस्वरूप परिसीमा द्वारा अन्यथा वर्जित है, अर्थात्, (i) कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विलंब को संतोषजनक रूप से स्पष्ट किया गया है और (ii) कि न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है।

8. वर्तमान मामले में, जैसा आक्षेपित आदेश से प्रतीत होता है, परिवाद दाखिल करने में हुए विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था। किंतु, न्यायालय ने विलंब माफ कर दिया क्योंकि इसके अनुसार, ऐसा करना न्याय के हित में आवश्यक था किंतु कोई कारण नहीं दिया गया था कि ऐसा करना क्यों आवश्यक था जबकि न्यायालय को इस संबंध में सकारण आदेश पारित करने की आवश्यकता थी।

9. इस संदर्भ में, मैं **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम तारादत्ता एवं एक अन्य, (AIR 2000 SC 297)** के मामले में दिए गए निर्णयों को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

> *^^èkkjk 473 ifjlhek dh vofèk d volku d ckn lKku yu oky U;k;ky; dk Lofood çnku djrh g fd ;fn ;g ekey d rF;k ij vkj ifjfLFkfr;k e lr"V g fd foyc dk lefpr :i l Li"V fd;k x;k g vkj fd U;k; d fgr e ,lk djuk vko';d FkkA vr%] Li"Vr% vijkèk] ftld fy, ifjlhek dh vofèk èkkjk 468 e çkoèkkfur dh x;h g] d lcèk e ifjlhek dh mDr vofèk c<ku d fy, lKku yu oky U;k;ky; dk 'kfDr çnku dh x;h g tgk foyc dk lefpr vkj lrk"ktud Li"Vhdj.k miyC/k g vkj tgk lKku yu okyk U;k;ky; ikrk g fd ;g U;k; d fgr e gkxkA U;k;ky; dk çnku fd, x, bl Lofood dk ç;kx U;k;i.k <x l ekU; fl)krk ij djuk gkxkA lKku yu oky U;k;ky; dk çnÙk Lofood gku d ukr tc dHkh Hkh U;k;ky; bl Lofood dk ç;kx djrk g] bl ldkj.k vkn'k }kjk djuk gkxkA** (ej }kjk tkj fn;k x;k)*

10. किंतु वर्तमान मामले में, जैसा मैंने ऊपर गौर किया है कि कोई कारण नहीं दिया गया है कि क्यों न्याय के उद्देश्य के लिए विलंब माफ करना आवश्यक था और इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में आक्षेपित आदेश अवैधता से निश्चय ही ग्रस्त है।

11. किंतु, इस न्यायालय के समक्ष अभिवचन किया गया है कि अवधि, जिसके दौरान मामला अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान किए जाने के लिए विचारार्थ लंबित था, को परिसीमा की गणना करने के प्रयोजन से अपवर्जित करना आवश्यक है।

12. इस संबंध में, गौर किया जाय कि प्रति शपथपत्र में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि अभियोजन के लिए मंजूरी देने में तीन वर्षों से अधिक का समय क्यों लिया गया था। किंतु, इस अभिवचन को सिद्ध करने के लिए मेरे समक्ष प्रासंगिक अभिलेखों को प्रस्तुत किया गया था कि मामला समुचित प्राधिकारी के समक्ष लंबित था। अभिलेखों जिन्हें, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था के परीक्षण पर मैंने कोई महत्वपूर्ण तथ्य नहीं पाया था जो मंजूरी प्रदान करने में कारित विलंब को वैध रूप से स्पष्ट कर सकता था। इसके विपरीत, मैं अनेक बार पाता हूँ कि मंजूरी प्रदान करने के लिए रिमाइंडर दिया गया था किंतु प्राधिकारी इसकी परवाह करते हुए प्रतीत नहीं होता है। अत: मैं मंजूरी प्रदान करने में इतना समय लेने के लिए कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं पाता हूँ।

13. इस स्थिति के अधीन, सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से किया गया अभिवचन कि मंजूरी प्रदान करने में प्राधिकारी द्वारा लिए गए समय को अपवर्जित करने की आवश्यकता है, स्वीकार्य नहीं है।

14. जहाँ तक अभियोजन आरंभ करने के पहले मंजूरी लेने से संबंधित निवेदन का संबंध है, यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 13 की उपधारा (3) में अंतर्विष्ट प्रावधान पर आधारित प्रतीत होता है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*^^dkbZ Hkh U;k;ky; bl vfèkfu;e d vèkhu fdlh vijkèk dk lKku ugh yxk tcrd fd bl lEcUèk e ;Fkkfpr ljdkj }kjk l'kDr fdlh vfèkdkjh ;k ;Fkkfpr ljdkj d ikfèkdkj d vèkhu ;k mlds vkn'k ij ifjokn nt u fd;k x;k gkA***

15. राकेश कुमार जैन बनाम राज्य, सी॰ बी॰ आई॰, नयी दिल्ली के माध्यम से, AIR 2000 SC 2754 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इसी प्रकार का प्रश्न विचारार्थ आया जहाँ माननीय न्यायालय ने धारा 13 की उपधारा (3) में अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में लेने के बाद निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:–

^^mièkkjk (3) çkoèkkfur djrh g fd vfèkfu;e d vèkhu vijkèk dk lKku doy ml ifjokn ij fy;k tk ldrk gftl (a) lefpr ljdkj d vkn'k }kjk nkf[ky fd;k x;k g(vFkok (b) lefpr ljdkj l çkfèkdkj d vèkhu nkf[ky fd;k x;k g(vFkok (c) lefpr ljdkj }kjk l'kDr cuk, x, fdlh vfèkdkjh }kjk nkf[ky fd;k x;k gA ljdkj vFkok fdlh çkfèkdkjh dh lgefr vFkok etjh] tks n0 ç0 l0 dh èkkjk 470 dh mièkkjk (3) d Li"Vhdj.k }kjk vuè;kr fd;k x;k g] vfèkfu;e d vèkhu ifjokn nkf[ky dju d fy, vko';d ugh gA n0 ç0 l0 dh èkkjk 470 d vèkhu ifjdfYir ^lgefr vFkok ^etjh* dk ifjokn nkf[ky dju d ç;ktu l] tks vfèkfu;e dh èkkjk 13 dh mièkkjk (3) }kjk ifjdfYir fd;k x;k g] ^vkn'k* vFkok ^çkfèkdkj* d lerY; ugh cuk;k tk ldrk gA mu vfèkfu;euk d vèkhu vfHk;Dr d fo#) vfHk;ktu vkjHk dju d ç;ktu l io lgefr vFkok etjh dk vko';d cuku oky vud lfofèk;k e fofufn"V çkoèkku cuk;k x;k gA n0 ç0 l0 dh èkkjk 470 dh mièkkjk (3) dk Li"Vhdj.k Li"Vr% ,lh lgefr vFkok etjh dk] vkj u fd vkn'k vFkok çkfèkdkj dk fufn"V djrk g tks vfèkfu;e d vèkhu vif{kr gA***

16. यह संप्रेक्षण करते हुए न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष पर आया जैसा उक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 में दर्ज किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*^^vr% ge Jh cgx.kk }kjk fd, x, fuonuk l lger g fd vfèkfu;e dh èkkjk 13 (3) d vèkhu dkb lgefr vFkok etjh çkoèkkfur ugh dh x;h g vkj ifjokn nkf[ky dju d fy, vkn'kk dk çkIr dju e yxk;k x;k le; n0 ç0 l0 dh èkkjk 470 dh mièkkjk (3) d Li"Vhdj.k d vèkhu vioftr ugh fd;k tk ldrk gA***

17. उस निष्कर्ष के बावजूद जिस पर न्यायालय आया यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन अपना उन्मोचन इप्सित करने का हकदार इस कारण से नहीं है कि परिवाद परिसीमा की अवधि के अवसान के 25 दिनों बाद इस कारण से दाखिल किया गया था कि परिवादी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 के अधीन समय का विस्तार इप्सित करने का अधिकार है और इसलिए, परिवादी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में दंडाधिकारी को संतुष्ट कर सकता था कि विलंब स्पष्ट करने योग्य था जो परिवाद दाखिल करने के प्रयोजन से मंजूरी प्राप्त करने के उनके सद्भावपूर्व विश्वास के कारण हुआ था।

18. यहाँ, वर्तमान मामले में, यह अभिवचन परिवादी को उपलब्ध हो सकता था कि परिवाद दाखिल करने के प्रयोजन से मंजूरी प्राप्त करने के उनके सद्भावपूर्व विश्वास के अधीन मंजूरी इप्सित की गयी थी, जिसे तीन वर्षों से अधिक के बाद दिया गया था जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण, युक्तियुक्त स्पष्टीकरण

की तो बात ही दूर, अवर न्यायालय के समक्ष अथवा इस न्यायालय के समक्ष नहीं दिया गया था। किंतु जैसा मैंने ऊपर कथन किया है कि प्रासंगिक अभिलेख जिन्हें सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से प्रस्तुत किया गया था, के परीक्षण पर कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं पाया जा सका था जिसका विलंब से निर्णय लेने के बहानों पर कोई प्रभाव हो सकता था और इस प्रकार, इस तथ्य के बावजूद कि मंजूरी प्रदान करने के लिए प्राधिकारी को समय-समय पर रिमाइंडर दिया गया था, मंजूरी प्रदान करने में लगे समय के लिए कोई वैध कारण के बारे में कुछ भी ध्यान में नहीं लिया जा सकता था। अतः, यह आसानी से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि परिवाद दाखिल करने में हुए विलंब का कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं है। किंतु, इस आदेश से अलग होने के पहले यह ध्यान में लिया जाता है कि घटना वर्ष 1970 की है जिसके लिए प्राथमिकी वर्ष 1973 में दर्ज की गयी थी और इस प्रकार, पहले ही अत्यधिक विलंब हुआ है और ऐसी स्थिति में यदि कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति दी जाती है, याचीगण को त्वरित विचारण के अधिकार से वंचित किया जाएगा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अन्य-असंक्राम्य अधिकार है।

19. इस मोड़ पर मैं **वकील प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, [(2009)14 SCC 3]** के मामले को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:-

> *^^vr% ;g lfuf'pr g fd leLr nkfMd vfHk;ktuk e Rofjr fopkj.k dk vfèkdkj Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 21 d vèkhu vU;&vlØkE; vfèkdkj gA ;g vfèkdkj u doy U;k;ky; e okLrfod dk;okgh ij ç;kT; g cfYd viuh 0;kidrk e ;g ioorh ifyl vUo"k.k dk Hkh lfEefyr djrk gA Rofjr fopkj.k dk vfèkdkj cjkcj :i l leLr nkfMd vfHk;ktuk rd tkrk g vkj ekeyk fdlh fo'k"k J.kh rd lhfer ugh gA çR;d ekey e] tgk Rofjr fopkj.k d vfèkdkj dk vfHkdfFkr :i l vfryf?kr fd;k x;k g] U;k;ky; dk Åij lxf.kr leLr vku"kfxd ifjfLFkfr;k dk fopkj e yr g, lryu LFkkfir djuk gkxk vkj çR;d ekey e fofuf'pr djuk gkxk fd D;k fdlh fn, x, ekey e Rofjr fopkj.k d vfèkdkj l budkj fd;k x;k gA tgk U;k;ky; bl fu"d"k ij vkrk g fd Rofjr fopkj.k d vfHk;Dr d vfèkdkj dk vfry?ku fd;k x;k g(vkjkik vFkok nk"kf lf}] tlk Hkh ekeyk gk] dk vfHk[kfMr fd;k tk ldrk g tc rd U;k;ky; ;g egll ugh djrk g fd vijkèk dh çofÙk vkj vU; çklfxd ifjfLFkfr;k dk è;ku e j[ku ij dk;okgh dk vfHk[kfMr djuk U;k; d fgr e ugh gk ldrk gA ,lh fLFkfr e fopkj.k d lekiu d fy, le; lhek fu;r dju lfgr lefpr vkn'k ikfjr dju dh NV U;k;ky; dk g tlk ;g U;k;kfpr vkj lkE;ki.k le>rk gA***

20. यहाँ वर्तमान मामले में, आरोप विरचित किए जाने के पहले 38 साल इस मामले में पहले ही बीत चुके हैं जहाँ अभियोजन की ओर से विलंब की माफी के लिए कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दिया गया हैं और इस प्रकार अपराध का संज्ञान लेने वाले आदेश को परिसीमा द्वारा वर्जित अभिनिर्धारित किया जाता है।

21. तद्नुसार, दिनांक 20.1.2010 का आदेश जिसके अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है, एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

परिणामस्वरुप, दोनों आवेदनों को अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkkVV] U;k;efr

आशीष कुमार सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 1872 of 2010. Decided on 23rd November, 2011.

पटना नगर निगम अधिनियम, 1951—धारा 242—बिहार क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1974–धारा 54—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—राँची के नगरपालिका क्षेत्र में अवैध निर्माण का विवाद्यक–जनहित याचिका–प्राधिकारी की अनुमति के बिना निर्माण पर सांविधिक निर्बंधन है–प्रत्येक निर्माण जो धारणा खंड के अधीन अभिव्यक्त रूप से अथवा विवक्षा द्वारा मंजूर नहीं किया गया है, अवैध निर्माण हैं–स्थानीय विधियाँ अथवा उपविधियाँ नगर निगम अथवा स्थानीय निकायों के अधिकारियों के लाभ के प्रयोजन से विरचित नहीं किए गए हैं और न ही ये केवल निर्माण इप्सित करने वाले व्यक्ति अथवा भूस्वामी के लाभ के लिए आशयित है बल्कि व्यापक जनहित को देखते हुए भी इन्हें विरचित किया गया है ताकि पर्याप्त सुविधाओं के साथ योजनाबद्ध शहर का विकास किया जा सके–गलत करने वाले को अभियोजित करने के अधिकार के अतिरिक्त अवैध निर्माण भंजित किए जाने की भी दायी है–निर्देशों के साथ याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 6, 8 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeev Kumar, For the Petitioner; M/s M. Sohail Anwar, L.C. N. Shahdeo, For the R.M.C.; Mr. A.K. Singh, For the R.R.D.A.; Mr. R.R. Mishra, For the Respondent-State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह शिकायत करते हुए वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गयी है कि राँची, जो राजधानी शहर है, के नगरपालिका क्षेत्र में अनेक लोगों द्वारा अनेक गैरकानूनी निर्माण खड़े किए गए हैं जिसका परिणाम अराजक स्थिति में हुआ है और इसने आम जनता को प्रभावित किया है और जाम की समस्या, पार्किंग की समस्या और अनेक समस्याओं को सृजित किया है जिन्हें विस्तार में कहने की जरूरत है। याचिका दिनांक 26 अप्रिल, 2010 को दाखिल की गयी थी और दिनांक 26 जुलाई, 2010 को आदेश दिया गया था कि **''प्रत्यर्थीगण योजना, जिसके अनुसार वे विगत काल में अधिक्रमण हटाने के लिए अग्रसर हो रहे थे, के संबंध में शपथ पत्र दाखिल करेंगे। यदि कोई योजना नहीं थी, किंतु मनमाने रूप से बेतरतीबी से चुने गए स्थानों पर अधिक्रमण हटाया जा रहा था, तब अधिकारियों को उत्तर देने के लिए काफी कुछ है, उन दुष्परिणामों पर विचार करते हुए जो अधिक्रमण हटाने के लिए स्थानों के ऐसे बेतरतीब चयन से अधिकारियों के लाभ में परिणत हो सकते थे।''** तब न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि प्रत्यर्थीगण को क्यों अल्प समय दिया जा रहा है जिसका कारण यह है कि अभी तक कोई योजना प्रकट नहीं की गयी है और झारखंड राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता कहते हैं कि उन्हें किसी कार्य योजना की जानकारी नहीं है जिसके अनुसार अधिक्रमण विरोधी टीम अब तक अग्रसर हुई है। दिनांक 13 सितंबर, 2011 को न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि मुख्य पथ पर विद्यमान अधिक्रमण हटाने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया है, जिस वजह से आम जनता दैनिक समस्या का सामना कर रही है। आर॰ आर॰ डी॰ ए॰ के अध्यक्ष और नगर निगम के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को

ठोस कार्य योजना के साथ दिनांक 19 सितंबर, 2011 को न्यायालय में उपस्थित रहने का और विद्यमान नगर योजना और मास्टर प्लान, यदि आर॰ आर॰ डी॰ ए॰ के पास इनका अस्तित्व है, के बारे में न्यायालय को अवगत कराने का निर्देश दिया गया था। तब दिनांक 19 सितंबर, 2011 को राँची क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण और राँची नगर निगम के अधिवक्ताओं के प्रतिवाद को ध्यान में लेने के बाद एक अन्य आदेश पारित किया गया था। दिनांक 19 सितम्बर, 2011 को कथन किया गया था कि राँची क्षेत्रीय विकास प्राधिकार के मामलों को आगे कार्रवाई के लिए राँची नगर निगम के पास भेज दिया गया था। कुछ भ्रम प्रतीत होता है कि अधिक्रमण हटाने की शक्ति का प्रयोग कौन करेगा, अत:, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण को लंबा समय दिया और इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि दो निकायों अर्थात् राँची क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण और राँची नगर निगम के बीच समन्वय और सहयोग की कमी हो सकती है और कुछ विवाद्यक हो सकते हैं जिन्हें कार्य और शक्तियों के वितरण के संबंध में संबोधित नहीं किया गया है। इस लंबी अवधि के दौरान उन विवाद्यकों पर भी विचार किया जा सकता है ताकि स्वयं राँची शहर में दो निकायों के बीच विवाद के कारण आम जनता पीड़ित होने पाए।

3. आज, राँची नगर निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान दिनांक 14 नवंबर, 2011 के शपथपत्र की ओर आकृष्ट किया और निवेदन किया कि राँची नगर निगम को कुछ शक्तियाँ दी गयी हैं किंतु राँची विकास प्राधिकरण अधिनियम की धारा 54 के अधीन शक्ति नहीं दी गयी है, जिसके अधीन राँची नगर निगम द्वारा केवल अवैध निर्माण को भंजित किया जा सकता है। हमने अभिलेख से पाया कि भवन निर्माण के लिए मंजूरी प्रदान करने के लिए नगर निगम को प्राधिकृत करने हेतु आदेश पारित किया गया है। सुनवाई के दौरान, हमें इस धारा अर्थात् पटना नगर निगम अधिनियम, 1951 की धारा 242 के बारे में पता चला। स्पष्टत: वर्ष 2000 में झारखंड राज्य के निर्माण के बाद इस अधिनियम को झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया था। झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया पटना नगर निगम अधिनियम, 1951 की धारा 242 का निम्नलिखित है:–

"242. ***Hkou d xj&dkuuh fuek.k vFkok iufuek.k d fy, nM-****&(1) ;fn dkb 0;fDr èkkjk 230 e fufn"V ukfVl fn, fcuk vFkok ,lk ukfVl nu d ckn ,d ekg dh vofèk rd çrh{kk fd, fcuk vFkok etjh nu l budkj djr g, e[; dk;ikyd vfèkdkjh }kjk ikfjr vkn'k d mYy?ku e vFkok èkkjk 233 d vèkhu e[; dk;ikyd vfèkdkjh d fyf[kr fun'kk d mYy?ku e Hkou d fuek.k vFkok iufuek.k vFkok ble fdlh rkfRod ifjoru vFkok d, dk fuek.k vFkok foLrkj vkjHk djrk g] tkjh j[krk g vFkok ijk djrk g] og ikp lk #i;k d vufèkd tekuk dk nk;h gkxkA*

(2) fdlh Hkh fLFkfr e] tgk e[; dk;ikyd vfèkdkjh fopkj djrk g fd fdlh Hkfe ij Hkou vFkok Hkou d Hkkx dk fuek.k] iufuek.k vFkok ifjoru] vFkok dvk dk fuek.k vFkok foLrkj mièkkjk (1) d vèkhu vijkèk g] og ml frfFk] ftl ij ,l vijkèk dh lpuk mld }kjk çklr dh x;h Fkh] l ,d ekg d Hkhrj fyf[kr ukfVl }kjk Hkfe d Lokeh vFkok vfèkHkkxh dk ,lk fuek.k] iufuek.k] ifjoru] fuek.k vFkok of) dk jkdu dk fun'k n ldrk g vkj blh rjhd l vkj mlh vofèk d Hkhrj ,l Hkou vFkok Hkou d Hkkx vFkok dvk d ifjoru vFkok Hktu] tlk og vko';d le>rk g] dk fun'k n ldrk g%

ijUr ;g fd ,lk fuek.k] iufuek.k] ifjoru] fuek.k vFkok of) dk ijk dj fy, tku d ,d ekg l vfèkd d ckn bl mièkkjk d vèkhu dkb dkjokb ugh dh tk,xhA

(3) ;fn dkb 0;fDr] ft l bl èkkjk d iokDr çkoèkkuk d vèkhu ukfVl fn;k x;k g] 28 fnuk vFkok ,l h ych vofèk t l k fty k U;k;kèkh'k mld vkonu ij vuefr n ldr g d volku d igy ukfVl dk vuikyu dju e foQy jgr k g] e[; dk;ikyd vfèkdkjh ç'uxr dk; dk fxjk vFkok gVk ldr k g vFkok mle ,l ifjoruk dk çHkko n ldr k g t l k og vko';d le>r k g vkj ,l k dju e e[; dk;ikyd vfèkdkjh }kjk ;fDr;Dr :i l mixr 0;; dk ml l oly ldr k gA

(4) ;fn e[; dk;ikyd vfèkdkjh }kjk ;k tukvk dk vuekfnr fd;k t kr k g vkj Hkou fuek.k dju dk vk'k; j[ku oky 0;fDr dk vueknu l lfpr fd;k t kr k g vFkok ;fn e[; dk;ikyd vfèkdkjh }kjk ;k tukvk dk vLohdkj dj fn;k x;k g] fdr fofgr vofèk d Hkhrj Hkou fuek.k dk vk'k; j[ku oky 0;fDr dk mud vLohdkj fd, tku dk ukfVl ugh fn;k x;k g] r k e[; dk;ikyd vfèkdkjh dk bl vkèkkj ij fd fdl h ;k tuk vFkok mifofèk;k vFkok bl vè;k; d vèkhu fdl h vU; vko';dr k d mYy?ku e Hkou dk fuek.k vFkok iufuek.k fd;k x;k g] mièkkjk (1) vFkok (2) d vèkhu ukfVl nu dh NV ugh gkxhA

*(5) bl èkkjk e dN Hkh bl vkèkkj ij fd ;g bl vfèkfu;e d fdl h çkoèkku vFkok mld vèkhu cuk;h x;h mifofèk;k dk mYy?ku djr k g] fdl h Hkou dk gVku vFkok ifjofrr dju d fy, 0;kn'k d fy, fty k U;k;kèkh'k dk vkonu nu dk fuxe vFkok fdl h vU; 0;fDr d vfèkdkj dk çHkkfor ugh djxk fdr ;fn Hkou vfèkfu;e vFkok mld vèkhu cuk;h x;h mifofèk;k d l cèk e g] fdr ;fn Hkou og g ft ld l cèk e ;k tuk vk dk tek fd;k x;k g vFkok ;k tuk vk dk e[; dk;ikyd vfèkdkjh }kjk ikfjr fd;k x;k g vFkok ukfVl fd mUg vLohdkj dj fn;k x;k g] mud tek dj nu d ckn fofgr vofèk d Hkhrj ugh fn;k x;k g] vkj ;fn dke ;k tuk vk d vu#i ijk fd;k x;k g] U;k;ky; dk 0;kn'k çnku djr g, dke d Lokeh dk ,l k evkotk t k U;k;ky; U;k;kfpr le>r k g dk Hkxrku dju dk vkn'k fuxe dk nu dh 'kfDr gkxh fdr ,l k dkb vkn'k ikfjr dju d igy U;k;ky; e[; dk;ikyd vfèkdkjh] ;fn og i{k ugh g] dk dk;okgh d i{k d :i e l ;kftr djuk dkfjr djxkA***

4. धारा 242 पर टिप्पणी करने के पहले, हम यहाँ उल्लिखित करना चाहेंगे कि उक्त अधिनियम का अध्याय–XIV भवन निर्माण नियंत्रण के विषय पर विचार करता है और अध्याय XVI गलियों एवं सार्वजनिक गलियों एवं गलियों के सार्वजनिक गलियों में परिवर्तित किए जाने में संव्यवहृत है। अध्याय VIII गलियों और लोक न्यूसेंस के सामान्य प्रावधानों पर विचार करता है। विभिन्न विषयों पर अनेक अध्याय हैं किंतु हमारा सरोकार रिट याचिका के विषय वस्तु की दृष्टि में अवैध निर्माण से संबंधित विवाद्यक है।

5. उक्त अधिनियम में अध्याय XIV के अधीन, धारा 229 है जो अनुमति के बिना भवनों के निर्माण अथवा पुनर्निर्माण को प्रतिषिद्ध करती है, जो कहती है कि कोई व्यक्ति तब तक किसी भवन का निर्माण अथवा पुनर्निर्माण नहीं करेगा अथवा किसी भवन का निर्माण अथवा पुनर्निर्माण आरंभ नहीं करेगा अथवा किसी भवन में कोई तात्विक परिवर्तन नहीं करेगा जबतक मुख्य कार्यपालक अधिकारी ने लिखित आदेश द्वारा अनुमति नहीं दिया हो अथवा भवन परिनिर्माण अथवा पुनर्परिनिर्माण के लिए अथवा किसी भवन के निर्माण अथवा पुनर्निर्माण के लिए अनुमति से अपने इनकार को विहित अवधि के भीतर सूचित करने में विफल रहा है। ऐसी अनुमति की तिथि से एक वर्ष अथवा ऐसी लंबी अवधि जैसा मुख्य कार्यपालक अधिकारी अनुमति दे सकता है के अवसान के बाद अथवा विहित अवधि के अंत से, जैसा भी मामला

हो, ऐसी अनुमति समाप्त हो जाएगी। अत:, प्राधिकारी की अनुमति के बिना निर्माण के विरुद्ध सांविधिक निर्बंधन है अथवा निर्माण के समझे गए अनुमति के अनुकूल निर्माण किया जा सकता है। परिणामस्वरुप, प्रत्येक निर्माण, जो अभिव्यक्त अथवा विवक्षित रूप से धारणा खंड के अधीन प्राधिकारी द्वारा मंजूर नहीं किया गया है, अवैध निर्माण है।

6. यद्यपि धारा 242 का शीर्षक ''भवन के अवैध निर्माण अथवा पुनर्निर्माण के लिए दंड'' है किंतु वस्तुत: हमारे मत में यह धारा बहलावे की बातें है और वस्तुत: नगर निगम अधिनियम के अधीन प्राधिकारीगण की शक्ति को यदि वापस नहीं लेती है, तब कम से कम उसे बेकार बनाती है और यह विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करती है कि कारण देते हुए अनुमति देने से इनकार करते हुए मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा पारित आदेश भी परिणामहीन होगा यदि मुख्य कार्यपालक अधिकारी अनुमति के बिना अवैध निर्माण के बारे में परिवाद की प्राप्ति पर परिवाद की प्राप्ति की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर कोई कार्रवाई करने में विफल रहता है और स्पष्टत: ऐसे अवैध निर्माण को भंजित करने की शक्ति उसके पास नहीं होगी। इसको और भी मजबूत बनाने के लिए धारा 242 की उपधारा (2) में परन्तुक जोड़ा गया है जो कहता है: ''परन्तु यह कि ऐसा निर्माण, पुनर्निर्माण, परिवर्तन, निर्माण अथवा वृद्धि पूरा कर लिए जाने के एक माह से अधिक के बाद इस उपधारा के अधीन कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।'' अत:, किसी भवन में उन समस्त निर्माणों, परिनिर्माण अथवा पुनपरिनिर्माण, जिनके लिए अनुमति इप्सित करने वाले व्यक्ति द्वारा कोई आवेदन दिया गया है, का उल्लंघन किया जाता है पर यदि ऐसी अनुमति सकारण आदेश के साथ इनकार की जाती है, तब धारा 242 के अधीन दोषकर्त्ता के विरुद्ध नगरपालिका प्राधिकारी द्वारा नगर निगम के अधिकारियों के गलती के कारण कार्रवाई नहीं की जा सकती है। स्थानीय विधियों और उपविधियों का अर्थ और इनकी विरचना नगर निगम अथवा स्थानीय निकायों के अधिकारियों को लाभ देने के प्रयोजन से नहीं किया गया है और न ही यह निर्माण की अनुमति इप्सित करने वाले व्यक्ति अथवा भूस्वामी को लाभ देने के लिए आशयित है बल्कि इनकी विरचना व्यापक जनहित में की गयी है ताकि पर्याप्त सुविधाओं के साथ योजनाबद्ध शहर का विकास किया जा सके और स्वस्थ और स्वच्छ जीवन का अधिकार आम लोगों को है। यह अत्यन्त विचित्र है कि पूर्णत: अवैध निर्माण, और वह भी अधिनियम के अधीन प्राधिकारी द्वारा घोषित, नियमित कर दिए गए हैं और यह समय बीतने के कारण अथवा अधिकारियों में से किसी की ओर से जानबूझकर की गयी निष्क्रियता के कारण अवैध निर्माण दोषकर्ता का अधिकार बन जाता है। हमें धारा 242 की वैधता पर गंभीर संदेह है क्योंकि इसके द्वारा दोषकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई करने की शक्ति एक माह तक सीमित कर दी गयी है, अत: सरकार द्वारा मामले को जाँचने की आवश्यकता है, प्रथमत: धारा 242 का परीक्षण करने और तत्पश्चात विवाद्यक पर विचार करने और इसका कारण बताने की आवश्यकता है कि क्यों नहीं एक माह का ऐसा निर्बंधन, जैसा धारा 242 की उपधारा (2) में प्रावधानित किया गया है, और परन्तुक को असंवैधानिक और लोकनीति के विरुद्ध घोषित किया जाए। किस प्रकार योजनाबद्ध शहर में रहने के उनके अधिकार को वापस लेते हुए आम जनता के विरुद्ध चालू गलती एक माह के अवैध अवसान के भीतर अथवा नगरपालिका अधिकारी के अवैध कृत्य पर विधिपूर्ण बन जा सकती है।

7. इस मोड़ पर, हम यहाँ उल्लिखित करना चाहेंगे कि सामान्यत: प्रत्येक नगर में दो विधियाँ होती हैं, एक नगरपालिका विधि है और दूसरी क्षेत्र विकास प्राधिकरण अधिनियम है। राजधानी राँची शहर में भी एक अधिनियम है जो बिहार के एकीकृत राज्य के समय से प्रभाव में है अर्थात्, बिहार क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1974। इस अधिनियम को झारखंड राज्य द्वारा अपने अस्तित्व में आने के समय से अपनाया गया है, अर्थात् वर्ष 2000 से बिहार क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण में अधिनियम, 1951 की धारा 54

के समान प्रावधान है जिसे झारखंड राज्य द्वारा अपनायी गयी है। अधिनियम, 1974 की धारा 54 का पठन हैं:–

*"54. **Hkou d Hktu dk vkn'k-**&(1) tgk fdlh Hkou dk fodkl vFkok fuek.k {k=h; ;ktuk] ekLVj ;ktuk vFkok tkuy fodkl ;ktuk d mYy?ku e vFkok èkkjkvk 35, 36, 37 e fufn"V vuefr] vueknu vFkok etjh d fcuk vFkok fdlh 'kr] ftld vè;èkhu , lh vuefr] vueknu vFkok etjh çnku dh x;h g] d mYy?ku e vkjHk fd;k x;k g vFkok fd;k tk jgk g vFkok ijk dj fy;k x;k g] bl fufeÙk bld }kjk l'kDr cuk, x, çkfèkdkjh dk dkb vfèkdkjh] vfHk;ktu ftl bl vfèkfu;e d vèkhu lLFkkfir fd;k tk ldrk g] d vfrfjDr ;g fun'k nr g, fd , lk fuek.k vFkok fodkl mld Lokeh }kjk vFkok ml 0;fDr }kjk] ftld dgu ij fuek.k vFkok fodkl dk; vkjHk fd;k x;k g vFkok fd;k tk jgk g vFkok ijk dj fy;k x;k g] ml frfFk] ftl ij gVku d vkn'k dh çfr Lokeh dk vFkok ml 0;fDr dk] tlk vkn'k e fofufn"V fd;k tk ldrk g] nh x;h g] l rhl fnuk dh vofèk d Hkhrj Hktu] Hkju vFkok vU;Fkk }kjk gVk fy;k tk,xk] vkj vkn'k dk vuikyu dju e mldh foQyrk ij çkfèkdkjh dk dkb vfèkdkjh fuek.k vFkok fodkl dk; dk gVk ldrk g vFkok gVk;k tkuk dkfjr dj ldrk g vkj , l gVk, tku dk [kp Hk&jktLo d cdk;k d :i e Lokeh l vFkok ml 0;fDr l ftld dgu ij fuek.k vFkok fodkl dk; vkjHk fd;k x;k Fkk] vFkok fd;k tk jgk Fkk vFkok ijk dj fy;k x;k Fkk%*

ijUr ;g fd , lk vkn'k rc rd ikfjr ugh fd;k tk,xk tc rd Lokeh vFkok lcfèkr 0;fDr dk bldk dkj.k crku dk vkn'k D;k ugh ikfjr fd;k tkuk pkfg,] dk ;fDr;Dr volj ugh fn;k x;k gA

(2) mièkkjk (1) d vèkhu ikfjr vkn'k l 0;fFkr dkb 0;fDr ml vkn'k d fo#) mld ikfjr fd, tku dh frfFk l 30 fnuk d Hkhrj bl vfèkfu;e d vèkhu xfBr vfèkdj.k d le{k vihy dj ldrk g(vkj vfèkdj.k vihy d i{kk dk luu d ckn vihy dk vuKkr vFkok [kkfjt dj ldrk g vFkok ml vkn'k vFkok bld fdlh Hkkx dk myV vFkok ifjofrr dj ldrk gA

(3) vihy ij vfèkdj.k dk fu.k; vkj doy , l fu.k; d vè;èkhu mièkkjk (1) d vèkhu vkn'k vfre vkj fu.kk;d gkxkA

*(4) bl èkkjk d çkoèkku rRle; çoÙk fdlh vU; fofèk e vrfo"V Hkou d Hktu l lcfèkr fdlh vU; çkoèkku d vYihdj.k e ugh gkx vkj bud vfrfjDr gkxA***

8. धारा 54 के अधीन, यह स्पष्टत: प्रावधानित किया गया है कि ऊपर निर्दिष्ट समस्त इस प्रकार के अवैध निर्माण दोषकर्ता के अभियोजन के अधिकार के अतिरिक्त भंजित किए जाने के दायी हैं। कैसे और क्यों दो विधियाँ हो सकती है, एक नगरपालिका क्षेत्र के निवासियों के लिए और दूसरी राँची क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र के भीतर निवास करने वाले उसी शहर के निवासियों के लिए?

9. जब दिनांक 11.8.2009 के संकल्प के तहत (प्रति शपथ पत्र का परिशिष्ट B) राज्य सरकार द्वारा नगर निगम को निर्माण करने के लिए अनुमति देने की अनुमति दी गयी है, तब नगर निगम को अधिनियम, 1974 की धारा 54 के अधीन शक्ति नहीं देने का कारण क्या था, यह ज्ञात नहीं है। उक्त तथ्य इस न्यायालय के संप्रेक्षण को पूर्णत: न्यायोचित ठहराता है जिसे काफी पहले दिनांक 26 जुलाई,

2010 को, एक से अधिक वर्ष पहले किया गया था जब न्यायालय को सूचित किया गया था कि अधिक्रमण हटाने के मामले में बेतरतीबी से चुनने-छाँटने की प्रक्रिया अपनायी जा रही है और कि इस मनमानी कार्रवाई के लिए अधिकारियों को जवाब देना होगा। जिनके पास जवाब देने के लिए और भी बहुत कुछ है, खास कर उन दुष्परिणामों पर विचार करते हुए जिनका परिणाम अधिक्रमण हटाने के लिए स्थानों के ऐसे बेतरतीब चयन से अधिकारियों के लाभ में हो सकता था।

10. याची के विद्वान अधिवक्ता ने और न्यायालय की सहायता कर रहे प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने भी राँची शहर के मुख्य भाग से अधिक्रमण हटाने के मामले में राज्य प्राधिकारी द्वारा कार्रवाई नहीं किए जाने के विरुद्ध आवाज उठाया है। उनका आवाज उठाना न्यायोचित हो सकता है और राँची नगर निगम के दृष्टिकोण से समर्थन पाता है जो कहता है कि अधिनियम, 1951 की धारा 242 के अधीन और अधिनियम 1974 की धारा 54 के अधीन कार्रवाई करने की शक्ति इसे नहीं है और इसलिए स्पष्टत: राँची क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण इस धारणा के अधीन कि क्षेत्र राँची नगर निगम की अधिकारिता के अंतर्गत आता है, अधिनियम 1974 की धारा 54 के अधीन शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है।

11. चाहे जो भी हो, हमें अभी भी पता लगाना है कि कौन प्राधिकारी अवैध निर्माण के विरुद्ध कार्रवाई करेगा और इसलिए कठोर आदेश पारित करने के पहले हम राज्य का दृष्टिकोण जानना चाहेंगे। राँची नगर निगम की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री एम॰ एस॰ अनवर ने निवेदन किया कि इस संबंध में समुचित विधि विरचित किए जाने का मामला राज्य सरकार के समक्ष लंबित है। यदि ऐसा है, तब हम प्रसन्न हैं कि अब सरकार ने संविधान की आज्ञा जो मजबूत शासकीय निकायों, पंचायतों की स्थापना प्रावधानित करती है और शक्ति के वितरण का आशय भी रखती है, के अनुकूल कृत्य करने की दिशा में सोचना आरंभ कर दिया है।

12. इस मामले को दिनांक 9 जनवरी, 2012 को लाया जाए।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

बिक्रम साहा एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 234 of 2010. Decided on 19th October, 2011.

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धारा 3(1)(x) एवं (xi)—जाति नाम से अपमान–दंडाधिकारी को संज्ञान के बिन्दु पर नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया–अभिकथित अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल परिवादी के घर के अंदर और न कि सार्वजनिक रूप से किया गया था–धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध नहीं बनता है–यह दर्शाने के लिए अभिकथन अथवा साक्ष्य नहीं है कि उनकी मर्यादा का उल्लंघन करने अथवा उनका अनादर करने के आशय से परिवादी अथवा उसकी बहू पर प्रहार किया गया था–धारा 3(1)(xi) के अधीन भी अपराध नहीं बनता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 8, 11 एवं 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Jai Shankar Tripathi, For the Petitioners; Mr. Din Dayal Saha, For the Opposite Party No.2.

आदेश

यह पुनरीक्षण दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 97 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 22.1.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने पुनरीक्षण अनुज्ञात किया था और पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 192 वर्ष 2009 के संबंध में संज्ञान के बिंदु पर नया आदेश पारित करने के लिए न्यायिक दंडाधिकारी को निर्देश दिया था।

2. यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय में यह अभिकथन करते हुए परिवाद दाखिल किया गया था कि अभियुक्तगण दिनांक 16.5.2009 को परिवादी के घर के अंदर घुसे और कहा कि परिवादी हरिजन बबरी है। आगे अभिकथित किया गया है कि समस्त अभियुक्तगण ने परिवादी के पुत्र और पुत्रवधु पर भी प्रहार किया और उनको गालियाँ दी।

3. यह प्रतीत होता है कि जाँच के बाद, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने केवल भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 323, 341, 379/34 के अधीन संज्ञान लिया और अभियुक्तगण (याचीगण) के विरुद्ध समन जारी किया। आगे प्रतीत होता है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 (परिवादी) ने इससे व्यथित होकर कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 के अधीन संज्ञान नहीं लिया गया है, दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 97 वर्ष 2009 के तहत अवर न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण दाखिल किया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने पूर्वोक्त दांडिक आवेदन अनुज्ञात किया और संज्ञान के बिंदु पर नया आदेश पारित करने का निर्देश विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी को दिया। उसके विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण दाखिल किया गया है।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री जयशंकर त्रिपाठी द्वारा निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका, एस॰ ए॰ पर परिवादी के बयान और जाँच के दौरान परीक्षित गवाहों के अभिसाक्ष्य से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति, (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध नहीं बनता है क्योंकि यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि सार्वजनिक रूप से परिवादी अथवा उसके परिवार के सदस्यों को अपमानित करने के आशय से याचीगण द्वारा अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल किया गया था। अभिकथित किया गया है कि उक्त घटना परिवादी के घर के अंदर हुई थी। इस प्रकार आम जनता द्वारा घटना देखे जाने का प्रश्न ही नहीं है। तब निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण ने उनकी मर्यादा का उल्लंघन करने के आशय से परिवादी अथवा उसकी पुत्रवधु पर प्रहार किया। अतः, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (भ्रष्टाचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 (1) (xi) के अधीन भी अपराध नहीं बनता है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने संज्ञान के बिंदु पर नया आदेश पारित करने का निर्देश दंडाधिकारी को गलत रूप से दिया था।

5. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता दीनदयाल साहा निवेदन करते हैं कि परिवाद याचिका में अभिकथन है कि याचीगण ने परिवादी पर तब प्रहार किया जब वे साहेबगंज स्टेशन ट्रेन पकड़ने जा रहे थे। इस प्रकार, याचीगण ने परिवादी को तब गाली दी जब वह सार्वजनिक स्थान पर था। तद्नुसार, वह निवेदन करते हैं कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध बनता है।

6. निवेदनों को सुनकर, मैंने मामले के अभिलेख और जाँच के दौरान परीक्षित गवाहों के अभिसाक्ष्य का परिशीलन किया है। यद्यपि परिवाद याचिका में उल्लेख है कि दिनांक 24.5.2009 को जब परिवादी अपने पुत्र एवं पुत्रवधु के साथ ट्रेन पकड़ने साहेबगंज स्टेशन जा रहा था, रास्ते में समस्त अभियुक्तगण ने उनको हरिजन बबरी कहकर गाली दी और उन पर प्रहार किया किंतु एस॰ ए॰ पर उसके बयान में

परिवादी द्वारा इस तथ्य का समर्थन नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 1 संजय बबरी, परिवादी का पुत्र, और परिवादी की पुत्रवधु अ॰ सा॰ 2 मौसमी बबरी ने केवल यह कथन किया था कि अभियुक्तगण परिवादी के घर आए और हरिजन बबरी कहकर उनको गाली दी। उन्होंने नहीं कहा था कि उक्त कथन सार्वजनिक रूप से किए गए थे।

7. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(x) निम्नलिखित है:–

*^^lkotfud ifj{k= d Hkhrj fdlh Hkh LFkku e fdlh vulfpr tkfr ;k vulfpr tutkfr d ,d lnL; dk viekfur dju d vk'k; l tkuc>dj vfHk=flr djuk ;k viekfur djukA***

8. पूर्वोक्त धारा का कोरा पठन दर्शाता है कि यदि किसी अन्य व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदाय का नहीं है, द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को सार्वजनिक रूप से अपमानित करने के आशय से अपमानित और/अथवा अभित्रासित करता है, तब पूर्वोक्त अन्य व्यक्ति को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार (निवारण) अधिनियम की धारा 3 (1)(x) के अधीन दंडित किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, स्वयं परिवादी और उसके गवाहों के ही अनुसार, अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल घर के अंदर किया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं पाता हूँ कि उक्त कथन सार्वजनिक रूप से नहीं किए गए थे। इस प्रकार, मेरे सुविचारित मत में, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(x) आकृष्ट नहीं होती है।

9. यह तब प्रतीत होता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कथन किया था कि यदि किसी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, के द्वारा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिला सदस्य पर प्रहार किया जाता है, तब अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(xi) के अधीन अपराध बनता है। मैं पाता हूँ कि विद्वान सत्र न्यायाधीश का पूर्वोक्त दृष्टिकोण भ्रामक है।

10. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i)(xi) का पठन निम्नलिखित है:–

*^^fdlh vulfpr tkfr ;k vulfpr tutkfr dh efgyk dk mldh yTtk Hkx dju ;k viekfur dju d vk'k; l igkj djuk ;k cy dk i;kx djukA***

11. इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि यदि उसकी मर्यादा का उल्लंघन करने अथवा अनादर करने के आशय से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के महिला सदस्य पर प्रहार किया जाता है अथवा उसके विरुद्ध बल प्रयोग किया जाता है, केवल तब अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i)(xi) के अधीन अपराध गठित होंगे। वर्तमान मामले में यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य और/अथवा अभिकथन नहीं है कि उनकी मर्यादा का उल्लंघन करने अथवा उनका अनादर करने के आशय से परिवादी अथवा उसकी पुत्रवधु पर प्रहार किया गया था। अत:, मेरे दृष्टिकोण में, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(i) (xi) के अधीन भी अपराध नहीं बनता है।

12. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश तात्विक अवैधता से ग्रस्त है। अत: इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरुप, आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मेसर्स मेट्रोग्राफ कंपनी प्राईवेट लिमिटेड एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. W.J.C. No. 51 of 1998. Decided on 25th November, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948—धाराएँ 22B एवं 22C—रजिस्टरों और अभिलेखों का अनुरक्षण नहीं किया जाना–संज्ञान–संज्ञान के आदेश को तथ्य, जो संज्ञान लिए जाते समय न्यायालय के समक्ष उपलब्ध नहीं था, के प्रश्न पर चुनौती नहीं दी जा सकती है–किंतु, संपूर्ण परिवाद याचिका में कहीं भी यह उल्लिखित नहीं किया गया है कि क्या नियोक्ता कर्मचारियों को किसी अनुसूचित नियोजन में काम पर लगा रहे थे जिसके संबंध में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन मजदूरी की न्यूनतम दर नियत की गयी है–परिवादी के पक्ष में उपधारणा करते हुए अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई कार्रवाई जारी नहीं रखी जा सकती है–दांडिक अभियोजन अभिखंडित। (पैराएँ 8 से 12)

निर्णयज विधि.–(2010)11 SCC 203—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. Kailash Prasad Deo, For the Petitioners; J.C. to G.P.-II, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण ने परिशिष्ट–6 में अंतर्विष्ट श्रम अधीक्षक, देवघर (प्रत्यर्थी सं॰ 2) द्वारा दाखिल परिवाद याचिका, जिसके आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध टी॰ आर॰ केस सं॰ 867 वर्ष 1997 संस्थापित किया गया था और परिशिष्ट–8 में अंतर्विष्ट दिनांक 21.4.1997 के आदेश द्वारा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (इसमें इसके उपरांत 'अधिनियम' के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 22B के अधीन संज्ञान लिया गया था, के फलस्वरुप उनके विरुद्ध आरंभ की गयी कार्यवाही को चुनौती दिया है।

3. परिवाद याचिका के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याची कंपनी अर्थात् मेसर्स मेट्रोग्राफ कंपनी प्राईवेट लिमिटेड को मुख्य अभियुक्त बनाया गया है। याची सं॰ 2 को उक्त कंपनी का प्रबंध निदेशक होने के नाते अभियुक्त बनाया गया है। जहाँ तक याची सं॰ 3 से 6 तक का संबंध है, जिन्हें भी इस मामले में अभियुक्तगण के रूप में पक्षकार बनाया गया है, परिवाद में कहीं भी उल्लिखित नहीं किया गया है कि किस हैसियत के अधीन उन्हें अभियुक्तगण बनाया गया है। परिशिष्ट–6 में अंतर्विष्ट परिवाद याचिका से आगे प्रतीत होता है कि उसमें कहीं नहीं उल्लिखित किया गया है कि अभियुक्तगण ने कर्मचारियों को 'अनुसूचित नियोजन' में काम पर लगाया था जिसके संबंध में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन मजदूरी की न्यूनतम दर नियत की गयी है और तद्द्वारा उन्होंने अधिनियम के अनेक प्रावधानों का उल्लंघन किया था। परिवाद याचिका केवल यह कहती है कि अभियुक्तगण कतिपय रजिस्टरों और रिकॉर्डों को अनुरक्षित नहीं कर रहे थे और तद्द्वारा, उन्होंने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 18 और न्यूनतम मजदूरी (केंद्रीय) नियमावली, 1950 के नियमों 21(4), 22, 25 (2) और 26 (2) के प्रावधानों का उल्लंघन किया था। यह प्रतीत होता है कि उक्त परिवाद याचिका के आधार पर टी॰ आर॰ सं॰ 867 वर्ष 1997 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, देवघर द्वारा दिनांक 21.4.1997 के आदेश द्वारा, जैसा परिशिष्ट–8 में अंतर्विष्ट है, संज्ञान लिया गया है और मामला विधि के अनुरुप आगे की प्रक्रिया के लिए न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय को अंतरित कर दिया गया था।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा की गयी कार्रवाई बिल्कुल गैर-कानूनी है, क्योंकि संपूर्ण परिवाद याचिका में कहीं नहीं उल्लिखित किया गया है कि क्या नियोक्तागण कर्मचारी को 'अनुसूचित नियोजन' में काम पर लगा रहे थे जिसके संबंध में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन मजदूरी की न्यूनतम दर नियत की गयी है। यह निवेदन भी किया गया है कि अभियुक्त/याची सं० 2 को कंपनी का प्रबंध निदेशक होने के नाते पक्षकार बनाया गया है किंतु यह कथन नहीं किया गया है कि किस हैसियत के अधीन अन्य याचीगण को अभियुक्तगण बनाया गया है यद्यपि वे कंपनी में निदेशक थे। इसके अतिरिक्त, कहीं पर भी यह उल्लिखित नहीं किया गया है कि याची सं० 2 से 6 कंपनी के प्रभारी थे अथवा कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार थे। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि आवश्यक विवरणों की अनुपस्थिति में अवर न्यायालय द्वारा संज्ञान नहीं लिया जा सकता था।

5. इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि निरीक्षण की अभिकथित तिथि पर कंपनी अस्तित्व में नहीं थी, क्योंकि दिनांक 5.2.1997 को अभिकथित रूप से कंपनी का निरीक्षण किया गया था जैसा स्वयं परिवाद याचिका से प्रकट है किंतु वस्तुत: कारखाना को दिनांक 2.9.1987 को ही बंद कर दिया गया था और कारखाना बंद किए जाने के बारे में संबंधित प्राधिकारियों को सूचित किया गया था। किंतु मेरा सुविचारित मत है कि इस चरण पर यह अभिवचन नहीं किया जा सकता है क्योंकि याचीगण को इस तथ्य को अवर न्यायालय के ध्यान में लाना था। संज्ञान के आक्षेपित आदेश को तथ्य, जो संज्ञान लिए जाते समय न्यायालय के समक्ष उपलब्ध नहीं था, के प्रश्न पर चुनौती नहीं दी जा सकती है।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याचीगण ने अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन किया है और अनेक रजिस्टरों और रिकॉर्डों को रखने और अनुरक्षित नहीं करने के कारण अधिनियम की धारा 18 और न्यूनतम मजदूरी (केंद्रीय) नियमावली, 1950 के नियमों 21 (4), 22, 25 (2) और 26 (2) के अधीन उनके विरुद्ध प्रथम दृष्टया अपराध निर्मित हुए हैं। तद्नुसार, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित कार्यवाही में कोई अवैधता नहीं है और रिट अधिकारिता में इस चरण पर इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

7. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि वर्तमान अभियुक्तगण याचीगण कंपनी और इसके प्रबंध निदेशक हैं। याची सं० 3 से 6 को परिवाद याचिका में वर्णित नहीं किया गया है कि किस हैसियत के अधीन उन्हें इस मामले में अभियुक्त बनाया गया है, यद्यपि वे निदेशक थे जैसा स्वयं रिट याचिका में कथन किया गया है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 की धारा 22C का पठन निम्नलिखित है:–

> *"22C.* ***difu;k }kjk vijkèk-*** *&(1) ;fn bl vfèkfu;e d vèkhu vijkèk dju okyk 0;fDr diuh g] rk çR;d 0;fDr tk vijkèk fd, tku d le; ij diuh d 0;olk; d lpkyu d fy, çHkkj e Fkk vkj diuh d çfr ftEenkj Fkk dk vkj diuh dk Hkh vijkèk dk nk"kh le>k tk,xk vkj viu fo#) dk;okgh dk nk;h gkxk vkj rnulkj nfMr fd;k tk,xk%*
>
> ** * * *"*
>
> *(tkj fn;k x;k)*

8. सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम एशियन ग्लोबल लिमिटेड एवं अन्य, (2010) 11 SCC 203 के मामले में परक्राम्य लिखत अधिनियम के अधीन कंपनी के निदेशकों के प्रतिनिधिक दायित्व पर

फैसला करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया गया है। उक्त निर्णय में, अभिनिर्धारित किया गया है कि कंपनी के निदेशकों के विरुद्ध अभियोजन आरंभ करने के लिए प्रश्नगत संव्यवहार में उनके द्वारा निभायी गयी भूमिका के संबंध में परिवाद में विनिर्दिष्ट अभिकथन होना होगा। अभिकथनों को स्पष्ट और असंदिग्ध होना होगा, यह दर्शाते हुए कि निदेशक कंपनी के व्यवसाय के लिए प्रभार में थे और जिम्मेदार थे। उक्त मामले में, चूँकि यह मामला कि वे कंपनी के क्रिया-कलापों के प्रभार में थे और इसकी कार्रवाई के लिए जिम्मेदार थे, बनाने के लिए परिवाद में कोई सामग्री प्रकट नहीं की गयी थी, अत: माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निदेशकों के विरुद्ध परिवाद को अभिखंडित कर दिया गया था।

9. वर्तमान मामले में भी, मैं पाता हूँ कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 22C स्पष्टत: अधिकथित करती है कि कंपनी के मामले में प्रत्येक व्यक्ति जो अपराध किए जाने के समय पर कंपनी के प्रभार में था और कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी के प्रति जिम्मेदार था, को दोषी समझा जाएगा। तद्नुसार, यह स्पष्ट है कि परिवाद याचिका में इन तथ्यों का विनिर्दिष्ट अभिकथन करना होगा और उसकी अनुपस्थिति में, मेरे सुविचारित मत में उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई जारी नहीं रखी जा सकती है। वर्तमान मामला **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा पूर्णत: आच्छादित होती है।

10. परिवाद में एक अन्य दुर्बलता है। संपूर्ण परिवाद याचिका में कहीं पर भी यह उल्लिखित नहीं किया गया है कि क्या नियोक्तागण कर्मचारियों को अनुसूचित नियोजन में काम पर लगा रहे थे जिसके संबंध में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन मजदूरी की न्यूनतम दर नियत की गयी है। अधिनियम की धारा 18 'नियोक्ता' पर कतिपय रजिस्टरों और रिकॉर्डों को अनुरक्षित करने का दायित्व डालती है। अधिनियम की धारा 2(e) के अधीन शब्द ''नियोक्ता'' को यह अर्थ देने के लिए परिभाषित किया गया है कि कोई व्यक्ति जो प्रत्यक्षत: अथवा किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से किसी ''अनुसूचित नियोजन'' के संबंध में एक अथवा अधिक कर्मचारियों को नियोजित करता है जिसके संबंध में अधिनियम के अधीन मजदूरी की न्यूनतम दर नियत की गयी है। पुन: अधिनियम की धारा 2(g) के अधीन ''अनुसूचित नियोजन'' को परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है (अधिनियम की) अनुसूची में विनिर्दिष्ट नियोजन। इस प्रकार, इस तथ्य को भी परिवाद में विनिर्दिष्टत: कथित करने की आवश्यकता है कि नियोक्तागण किसी ''अनुसूचित नियोजन'' में कर्मचारियों को काम पर लगा रहे थे जिसके संबंध में अधिनियम के अधीन मजदूरी की न्यूनतम दर नियत की गयी है और ऐसे किसी बयान की अनुपस्थिति में, मेरे सुविचारित मत में, परिवादी के पक्ष में और अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा करते हुए अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई कार्रवाई जारी नहीं रखी जा सकती है।

11. पूर्वोक्त कारणों से, मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही का आरंभ किया जाना बिल्कुल गैर-कानूनी और विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और यह अभिखंडित किए जाने योग्य है।

12. तद्नुसार, परिशिष्ट-6 में अंतर्विष्ट प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा दाखिल परिवाद याचिका के आधार पर संस्थापित टी॰ आर॰ केस सं॰ 867 वर्ष 1997 में याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही और परिशिष्ट-8 में अंतर्विष्ट मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, देवघर द्वारा पारित संज्ञान का आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किए जाते हैं। तद्नुसार, इस रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सुरेन्द्र राय, क्षेत्रीय सचिव, राष्ट्रीय कोलियरी मजदूर संघ, ई॰ जे॰ क्षेत्र, भोरा, धनबाद द्वारा प्रतिनिधित्व में उनके कर्मकार

cuke

नियोक्ता, मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड, धनबाद के सुदामडीह कोलियरी के प्रबंधन के सम्बन्ध में कर्मकारगण

L.P.A. Nos. 33 with 55 of 2007. Decided on 24th November, 2011.

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 25F—छँटनी–रिट न्यायालय द्वारा पुनर्बहाली का आदेश अपास्त–मात्र नियोक्ता और कर्मचारी का संबंध स्वयं में कर्मकारों के पक्ष में अधिनिर्णय पारित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है जब वे यह स्थापित करने में विफल रहे कि धारा 25-F के अधीन लाभ का दावा करने के लिए उन्होंने 240 दिनों तक काम किया है–अपील खारिज। (पैराएँ 13 से 15)

निर्णयज विधि.–1970 (20) FLR 308—Relied on; (1992) 1 SCC 695; (2001)7 SCC 1; (2002)3 SCC 25; (2005) 1 SCC 639;—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. Kalyan Roy, A.K. Sahani, B. K. Jha, For the Appellant; Mr. A.K. Mehta, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी दिनांक 20 दिसंबर, 2006 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 856 वर्ष 1993 (R) और 859 वर्ष 1993 (R) को अनुज्ञात किया गया है और निर्देश केस सं॰ 32 वर्ष 1989 और निर्देश केस सं॰ 35 वर्ष 1989 में औद्योगिक अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय अपास्त कर दिया गया था।

3. निर्देश केस सं॰ 32 और 35 वर्ष 1989 में केंद्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण सं॰ 1, धनबाद के अधिनिर्णय को इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं को दाखिल करके चुनौती दी गयी थी और उन रिट याचिकाओं, सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 856 वर्ष 1993 (R) और 859 वर्ष 1993 (R) को दिनांक 10 अगस्त, 1998 के आदेश के तहत औद्योगिक अधिकरण द्वारा पारित दोनों अधिनिर्णयों को मान्य ठहराते हुए खारिज कर दिया गया था। दिनांक 10 अगस्त, 1998 के आदेश को दो लेटर्स पेटेन्ट अपील सं॰ 424 और 425 वर्ष 1998 (R) दाखिल करके चुनौती दी थी, जिन्हें भी इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 17 मई, 1999 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। कर्मचारियों ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील सं॰ 1902 और 1903 वर्ष 2000 दाखिल किया और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 16 जनवरी, 2006 के आदेश के तहत मामला इस न्यायालय को वापस भेज दिया। दिनांक 16 जनवरी, 2006 के सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का मुख्य भाग निम्नलिखित है:–

^^;g çrhr gkrk g fd vfèkdj.k vkj mPp U;k;ky; u Åij xkj fd, x, fofèkd voLFkk dh i"BHkfe e rkfRod voLFkk ij fopkj ugh fd;k FkkA fu'p; gh le; d ml fcn ij tc ekeyk fofuf'pr fd;k x;k Fkk] ,;j bfM;k d ekey (Åij) e fn;k x;k fu.k; iHkkoh FkkA fdr LVhy vkFkkfjfV d ekey (Åij) e loèkkfud ihB dh mn?kk"k.kk dh nf"V e] ekey ij mPp U;k;ky; }kjk iufopkj fd, tku dh vko';drk gA ;|fi Jh mikè;k; }kjk fuonu fd;k x;k Fkk fd vihykFkh }kjk Nnekoj.k viuk, tku d ckj e fu"d"k Fkk fdr vfèkdj.k vkj@vFkok mPp U;k;ky; }kjk bl lcèk e dkb fuf'pr fu"d"k ugh gA bl U;k;ky; d dfri; lç{k.kk d çfr fun'k ek= rkfF;d voLFkk d ijh{k.k d fcuk

*i;kIr ugh gkxkA bld vfrfjDr] nkonkjk] ftudk ekeyk ;fu;u }kjk mBk;k tk jgk Fkk] d ukek dk yki dju d çHkko ij mPp U;k;ky; }kjk lefpr ifjç{; e fopkj ugh fd;k x;k gA rkRif;r le>kr d lcèk e Hkh le#i fLFkfr gA bu fofp= ifjfLFkfr;k e] ekey ij iufopkj djuk mPp U;k;ky; d fo}ku ,dy U;k;kèkh'k d fy, ;Fkkfpr gkxkA rnulkj] ekeyk mPp U;k;ky; dk ifrif"kr fd;k tkrk g rkfd fo}ku ,dy U;k;kèkh'k Åij LFkkfir fl)krk dk fopkj e yr g, vkj vihykFkh }kjk mBk, x, fook|dk ij i"BHkfe d rF;k d çfr mudh ç;kT;rk ij fopkj djr g, ekey ij u, flj l fopkj dj ldr gA pfd ekeyk dkQh fnuk l yfcr g] mPp U;k;ky; d fo}ku e[; U;k;kèkh'k l ekey dk fdlh fo}ku ,dy U;k;kèkh'k dk vkofVr dju dk vujkèk fd;k tkrk g tk fo}ku e[; U;k;kèkh'k }kjk ekey d vkoVu dh frfFk l Ng ekg dh vofèk d Hkhrj ekey dk u, flj l fuiVku dk ç;kl djxA***

4. इस रिमांड के बाद, मामला विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सुना गया था और विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 20 दिसंबर, 2006 के निर्णय के तहत रिट याचिका को अनुज्ञात किया और निर्देश केस सं॰ 32 और 35 वर्ष 1989 में पारित अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया। अत: इस एल॰ पी॰ ए॰ को दाखिल किया गया है।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिमांड के आदेश में उल्लिखित विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए और उन विवाद्यकों पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए मामला रिमांड किया था: प्रथमत:, इसको लेकर कि क्या नियोक्ता ने नियोक्ता और कर्मचारी के बीच ठेकेदार सृजित करके छद्मावरण अपनाया और यदि यह छद्मावरण है तब, द्वितीयत:, क्या कर्मचारियों को प्रिंसिपल अर्थात् प्रत्यर्थी के कर्मचारियों के रूप में माना जा सकता है। तीसरा प्रश्न यह था कि सरकार द्वारा अधिकरण को भेजे गए निर्देश प्रश्न में दावेदारों जिनका मामला यूनियन द्वारा उठाया जा रहा था, नामों को उल्लिखित नहीं करने का प्रभाव क्या था और चौथा प्रश्न यह था कि तात्पर्यित समझौते का प्रभाव क्या था। उक्त प्रश्नों के साथ-साथ, विलंब के प्रश्न पर यह पता लगाने के लिए क्या दावेदारों का दावा पुराना दावा बन गया था इसपर विचार करना आवश्यक था। निवेदन किया गया है कि इस न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई अन्य प्रश्न निर्दिष्ट नहीं किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश रिमांड आदेश के निबंधनों को अनदेखा करते हुए मामले को नए सिरे से विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुए और, इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि नियोक्ता द्वारा दावा किया गया था कि समझौता हुआ था किंतु स्वीकृत रूप से समझौते को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जैसा औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियमावली, 1957 के नियम 58 की उप-धारा (4) के अधीन अपेक्षित है एवं अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अगर नियम 58 (4) का अनुपालन नहीं किया जाता है, तब समझौता विधि की दृष्टि में समझौता नहीं है और प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है और न ही कर्मचारियों के विरुद्ध इसका प्रयोग किया जा सकता है।

6. जहाँ तक विलंब का संबंध है, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि यह विलंब का मामला नहीं है बल्कि वस्तुत:, यह नियोक्ता द्वारा अपनायी गयी सुस्ती का मामला हो सकता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि कर्मकारों को दिनांक 9 जुलाई, 1997 से काम करने से रोक दिया गया था; तत्पश्चात, कुछ अभ्यावेदनों को दाखिल किया गया था और अंतत: दिनांक 23 फरवरी, 1981 को चर्चा की गयी थी और तत्पश्चात कर्मकारों ने दिनांक 3 अक्टूबर, 1981 को विवाद उठाया था और यूनियन के माध्यम से दिनांक 28 मई, 1982 को विवाद उठाया गया था। दिनांक 9 अगस्त

1982 को यूनियन द्वारा विवाद उठाए जाने पर दिनांक 11 मई, 1983 को सुलह का नोटिस जारी किया गया था जिस पर, सुलह कार्यवाही की विफलता के बाद मामला औद्योगिक अधिकरण को निर्दिष्ट किया गया था, अत:, कोई विलंब नहीं हुआ है और अपीलार्थीगण उपचार का अनुसरण कर रहे थे और उन्होंने किसी भी तरीके से अपना अधिकार अधित्यजित नहीं किया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि जहाँ तक दावेदारों की पहचान का संबंध है, यह सुस्थापित किया गया है और दस्तावेज प्रदर्श W6 की मदद से अधिकरण द्वारा तथ्य का निष्कर्ष दर्ज किया गया है जो विवाद उठाने के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया दस्तावेज था जिसमें उन कर्मकारों के नाम पहले से ही वहाँ थे जिन्हें स्वयं दावा याचिका में यूनियन द्वारा अधिकरण के समक्ष प्रकट किया गया है और, इसलिए, नियोक्ता द्वारा एक बिल्कुल गलत अभिवचन किया गया है। निवेदन किया गया है कि यदि सरकार ने निर्देश प्रश्न में समुचित रूप से दावेदारों को वर्णित करने में कुछ गलती किया है, तब भी इस मामले में नियोक्ता पर कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई है क्योंकि अधिकरण को निर्देश दिए जाने के पहले ही यूनियन द्वारा नामों को प्रकट किया गया था और नियोक्ता स्वयं अधिकरण के समक्ष तुरन्त दावेदारों आदि की पहचान को चुनौती दे सकता था। चाहे जो भी हो, दावेदारों में से कुछ के नाम पहले से ही समझौते में है जिसे नियोक्ता द्वारा दर्शाया एवं स्वीकार किया गया है, अत: नियोक्ता द्वारा किया गया अभिवचन पश्चातवर्ती विचार है और दावा अस्वीकार करने के आधार के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उक्त कारणों की दृष्टि में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह विवाद्यक कि कर्मकारों ने एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरा किया था या नहीं पर विचार करके विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी विधि की गलती की थी। निवेदन किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश का उक्त निष्कर्ष ताथ्यिक रूप से गलत और अधिकरण द्वारा दर्ज निष्कर्ष के विपरीत है क्योंकि अधिकरण ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि कर्मकार वर्ष 1974 से वर्ष 1977 तक काम कर रहे थे और काम चिरस्थायी और स्थायी प्रकृति का था। अधिकरण ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि ठेकेदार सेवा देने के लिए उनके वैध लाभों से कर्मकारों को वंचित करने के लिए नियोक्ता का सृजन था। यह निवेदन भी किया गया है कि दावेदार खानों में कार्यरत थे और संविदा श्रम (विनियम एवं समाप्ति) अधिनियम, 1970 की धारा 10 के अधीन खानों में ठेका श्रम प्रतिषिद्ध है और इसलिए अधिनियम, 1970 की धारा 10 के उल्लंघन में कर्मकारों को काम पर लगाया जाना प्रिंसिपल नियोक्ता के साथ कर्मकारों के प्रत्यक्ष नियोजन के तुल्य है। निष्कर्ष में ''छद्मावरण'' जैसे शब्द अधिकरण द्वारा पारित आदेश में प्रयुक्त नहीं किए जा सकते हैं किंतु छद्मावरण के रूप में ठेकेदार के सृजन की घोषणा करती घटना अधिनिर्णय में विस्तारपूर्वक उपदर्शित की गयी है जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनदेखा कर दिया गया है।

7. यह भी निवेदन किया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मेसर्स दिल्ली क्लॉथ एंड जेनरल मिल्स के कर्मकार बनाम मेसर्स दिल्ली क्लॉथ एंड जेनरल मिल्स लि॰ का प्रबंधन, 1970 (20) FLR 308,** मामले में अभिनिर्धारित किया कि सुलह कार्यवाही के दौरान हुए समझौते को यदि प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है और औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियमावली, 1957 के नियम 58 (4) का अननुपालन होता है, तब अननुपालन समझौते को अवैध बना देता है। उक्त की दृष्टि में, तात्पर्यित समझौता अवैध है और बाध्यकारी नहीं है।

8. प्रतिवाद करते हुए, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि संविदा श्रम (विनियम एवं समाप्ति) अधिनियम, 1970 की धारा 10 के अधीन केंद्र सरकार द्वारा प्रत्यर्थी के स्थापन में ठेका मजदूरों के नियोजन को प्रतिषिद्ध करते हुए कोई अधिसूचना जारी की गयी थी और, इसलिए, अधिकरण केवल उपधारणा के अधीन अग्रसर हुआ। यह निवेदन भी किया गया है कि जब किसी ठेकेदार को काम दिया जाता है जिसने रजिस्ट्रेशन का प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया

है जैसा अधिनियम 1970 की धारा 7 के अधीन आवश्यक है, तब अधिनियम 1970 की धारा 9 में प्रभाव दिया गया है और अधिनियम, 1970 की धारा 9 के उल्लंघन का परिणाम दांडिक हो सकता है किंतु ठेकेदार के कर्मचारी को प्रिसिंपल का कर्मचारी नहीं समझा जा सकता है। उक्त अभिवचन के समर्थन में, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **दीनानाथ एवं अन्य बनाम राष्ट्रीय खाद लि॰ एवं अन्य, (1992)1 SCC 695** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर और **स्टील ऑथोरिटी ऑफ इंडिया लि॰ एवं अन्य बनाम नेशनल यूनियन वाटरफ्रंट वर्कर्स एवं अन्य, (2001)7 SCC 1** के मामले में दिए गए संवैधानिक पीठ के निर्णय पर विश्वास किया। अत:, ठेकेदार के मजदूर को प्रिंसिपल अर्थात् प्रत्यर्थी का कर्मचारी नहीं समझा जा सकता है।

9. प्रत्यर्थी नियोक्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि यह स्वयं कर्मकारों का स्वीकृत मामला है कि उन्होंने संविदा के अधीन काम किया है और वह भी मार्च, 1976 से जुलाई, 1977 तक और अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों की दृष्टि में, जिनका अस्तित्व विवादित नहीं है, अर्थात् दिनांक 13 अक्टूबर, 1978 का यूनियन के प्रतिनिधि के साथ परिचर्चा की टिप्पणी एवं दिनांक 10 अप्रैल, 1980 का समझौता, जिसकी प्रतियाँ दोनों पक्षों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत की गयी है, यह स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि दावेदार कर्मकारों ने स्वयं इस अभिवचन पर अपने आमेलन का दावा किया कि उन्हें ठेकेदार द्वारा काम पर लगाया गया था और यह तथ्य समझौते में स्पष्टत: उल्लिखित है। केवल यही नहीं, यह तथ्य कि कर्मचारियों ने 240 दिनों के लिए काम नहीं किया था, इन दो दस्तावेजों से सिद्ध होता है जिसमें यह स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि उन व्यक्तियों जिन्होंने 190 दिनों से अधिक की उपस्थिति दी है, को नियोजन का लाभ दिया जाएगा। केवल यही नहीं, उन व्यक्तियों को भी, जिनका प्रासंगिक अभिलेख उपलब्ध नहीं था और जिन्होंने 190 दिनों से भी कम के लिए काम किया था, कुछ लाभ दिए गए थे। दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के समझौते में 16 कर्मकारों के प्रति निर्देश है जो आमेलन इप्सित कर रहे थे और जो ठेकेदार के माध्यम से संप की सफाई का काम कर रहे थे। अत:, अधिकरण ने इन दावेदारों के निरंतर काम करने के प्रश्न पर विचार करते हुए दावेदारों की दावा याचिका सहित साक्ष्य के तात्विक टुकड़े को अनदेखा करने और इसके अतिरिक्त अधिनिर्णय में निर्दिष्ट प्रदर्श W6 को अनदेखा करने में विधि की गंभीर गलती की। निवेदन किया गया है कि जब एक बार अधिकरण ने कर्मचारियों में से प्रत्येक के काम करने के संबंध में निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है, अधिकरण को वह अधिनिर्णय पारित करने की अधिकारिता नहीं है जैसा पारित किया गया है। निवेदन किया गया है कि यह दावेदारों का दावा था कि वे नियोजन के हकदार थे, तब इस अधिकार का स्रोत दर्शाना उनका कर्तव्य था और औद्योगिक विधि के मुताबिक किसी को यह अधिकार एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिनों तक लगातार काम करने पर ही हो सकता था। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह सिद्ध करने का भार कि कर्मकारों ने 240 दिनों तक काम किया था, स्वयं कर्मकारों पर ही है जिस दृष्टिकोण को **रेंज वन अधिकारी बनाम एस॰ टी॰ हदीमनी, (2002)3 SCC 25** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित किया गया है। यह भी निवेदन किया गया है कि स्वयं निर्देश अस्पष्ट था और निर्देश सं॰ 32/1989 में दावेदारों का नाम भी नहीं दिया गया था और निर्देश न्यायालय को निर्देश प्रश्न में दावेदारों के नामों को परिवर्तित करने अथवा सम्मिलित करने की अधिकारिता नहीं थी। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि कर्मकारों को निर्देश न्यायालय के समक्ष जाने का अधिकार तक नहीं था जब उन्हें पहले ही नियोजन प्रस्तावित किया गया था जिनके नाम समझौते में हैं और व्यक्ति जिनके नाम समझौते में नहीं हैं, उन्होंने

190 दिनों तक भी, 240 दिनों की तो बात ही दूर, काम नहीं किया था। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **महेन्द्र एल॰ जैन एवं अन्य बनाम इंदौर विकास प्राधिकरण एवं अन्य, (2005)1 SCC 639** के प्रकाशित मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अपने इस अभिवचन के समर्थन में विश्वास किया कि निर्देश न्यायालय निर्दिष्ट प्रश्न के परे नहीं जा सकता है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि यह सत्य है कि दिनांक 16.1.2006 के अपने रिमांड आदेश में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ प्रश्नों को उपदर्शित किया गया है किंतु उन प्रश्नों को एल॰ पी॰ ए॰ में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को अपास्त करने का कारण देने के लिए और मामले पर पुनर्विचार करने के लिए उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश को निर्देश के साथ रिट अधिकारिता में निर्दिष्ट किया गया है। अत: उक्त विवाद्यकों के अतिरिक्त मूल प्रश्न जिसे निर्देश में अंतर्निहित रूप से अंतर्ग्रस्त दावेदारों को अनुतोष के लिए संबोधित किए जाने की आवश्यकता है, को अनदेखा नहीं किया जा सकता है और वह प्रश्न नौकरी में निरंतरता इप्सित कर रहे दावेदारों का अधिकार है क्योंकि दो निर्देशों में श्रम न्यायालय को निर्देश निम्नलिखित थे:–

funi'k lO 32 o"k 1989

^^D;k fnukd 9.7.1977 d çHkko l Jh djek jkmr vkj 21 vU; dk fu;ktu l budkj dju e ell chO lhO lhO ,yO dh lnkeMhg dkfy;jh d çcèku dh dkjokb U;k;kfpr g\ ;fn ugh] lcfèkr dedkj fdl vurk"k d gdnkj g

funi'k lO 35 o"k 1989

D;k Jh Hkkxor flg vkj rhu vU; vFkkr Jh liu] dju lkgh vkj 'kkfr Bkdj ftUg li lQkb etnj d :i e dke ij yxk;k x;k Fkk] dk fu;ktu l budkj dju e ell chO lhO lhO ,yO dh lnkeMhg {k= d çcèku dh dkjokb U;k;kfpr g\ ;fn ugh] dedkj fdl vurk"k d gdnkj g

10. अनुतोष केवल तब प्रदान किया जा सकता था यदि अधिकरण इस निष्कर्ष पर आया होता कि विधि के किसी प्रावधान के फलस्वरुप कर्मकारों के पक्ष में अधिकार सृजित किया गया है और इस मामले के तथ्यों में, केवल औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन जहाँ धारा 25F के उल्लंघन में छँटनी अवैध है और पुनर्बहाली का आदेश पारित किया जा सकता था।

11. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों को सुना है और संपूर्ण अभिलेख एवं प्रासंगिक दस्तावेजों, विशेषत: जिन्हें पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, का परिशीलन किया है।

12. हमारा सुविचारित मत है कि भले ही निर्देश केस सं॰ 32/1989 में कर्मकारों के नामों को उल्लिखित नहीं किया गया है किंतु अधिकरण दस्तावेज (प्रदर्श W6) की मदद लेने में पूर्णत: न्यायोचित था जो वह दस्तावेज है जिसे समुचित सरकार से निर्देश न्यायालय द्वारा निर्देश प्राप्त करने के बाद सृजित नहीं किया गया था और वस्तुत: प्रदर्श W6 वह दस्तावेज है जिसके द्वारा विवाद उठाया गया था और उसमें 22 कर्मकारों का नाम प्रकट किया गया है। यदि उन नामों को निर्देश केस सं॰ 32/1989 में विनिर्दिष्टत: उल्लिखित नहीं किया गया था, तब भी निर्देश की कार्यवाही के आरंभ होने के अभिलेख से अधिकरण द्वारा सही प्रकार से उन नामों का पता लगा लिया गया था।

13. जहाँ तक विलंब के प्रश्न का संबंध है। हमारा सुविचारित मत है कि कर्मकारों को अभिकथित रूप से दिनांक 9 जुलाई, 1977 से काम करने से रोक दिया गया था और तब कुछ बातचीत हुई और उसमें प्रत्यर्थी के अनुसार दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के समझौते के रूप में अंतिम निर्णय लिया गया था।

हमें इस दस्तावेज पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है जिसमें उल्लिखित किया गया है कि लंबी चर्चा के बाद प्रबंधन और यूनियन के बीच करार हुआ था कि व्यक्ति जिन्होंने 190 दिनों की उपस्थिति दी है को सुदामडीह प्रोजेक्ट के बदली माइनर्स/लोडर्स के रूप में लिया जाएगा। ये कर्मकार दावा कर रहे हैं कि वे सुदामडीह प्रोजेक्ट में काम कर रहे थे। न केवल यह, कर्मकारों में से कुछ का नाम दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के अभिकथित समझौते में दी गयी सूची के अंतर्गत भी है। यहाँ यह उल्लिखित करना उपयोगी होगा कि कर्मकारों के विद्वान अधिवक्ता ने भी निवेदन किया कि कर्मकारों/दावेदारों में से कुछ के नाम दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के समझौते में हैं। कर्मकारों द्वारा किया गया अभिवचन कि भले ही उन्होंने 240 दिनों का काम पूरा नहीं किया है, स्वयं प्रबंधन ने उन कर्मकारों जिन्होंने 190 दिनों तक काम किया था को पुनर्नियोजित करने का निर्णय लिया है, स्पष्टत: ऐसा दृष्टिकोण उपदर्शित करता है जो कभी नरम है तो कभी गरम क्योंकि दावेदार स्वयं नियमावली 1957 के नियम 58 (4) का उल्लंघन करने के लिए दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के समझौते को त्यागना चाहते हैं और उसी समझौते के अधीन लाभ लेना चाहते हैं जब कार्य दिनों की संख्या का प्रश्न आता है। यह सत्य है कि दिनांक 10 अप्रिल, 1980 का समझौता समुचित प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जैसा नियमावली 1957 के नियम 58 (4) के अधीन आवश्यक है और **मेसर्स दिल्ली क्लॉथ एण्ड जेनरल मिल्स के कर्मकार बनाम मेसर्स दिल्ली क्लॉथ एण्ड जेनरल मिल्स का प्रबंधन (ऊपर)** के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में इस समझौते को मान्यता नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह अवैध बन जाता है। यदि ऐसा है, तब कर्मकारों के लिए यह और भी बुरा है क्योंकि कर्मकार 190 दिनों तक अपने काम करने पर दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के समझौते के अधीन लाभ का दावा कर सकते थे किंतु नियमावली के नियम 58(4) के अननुपालन के तथ्य के कारण वे ऐसे समझौते के अधीन कोई लाभ नहीं पा सकते हैं। तर्क के तौर पर उपधारित करते हुए कि कोई करार जिसमें नियम 58 (4) का अनुपालन नहीं किया गया है, तब ऐसा समझौता कर्मकार के हित के प्रति हानिकर होने की सीमा तक शून्य होगा, तब भी यह दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के समझौते को प्रवर्तित करने के लिए निर्देश नहीं है। ताकि इस समझौते के अधीन पुनर्नियोजन अथवा सेवा की निरंतरता का दावा किया जा सके। अत: किसी भी स्थिति में, ऐसे मामले में भी जहाँ नियोक्ता और कर्मचारी के बीच ठेकेदार का सृजन छद्मावरण है, दावेदार नियोक्ता के साथ अपने अपेक्षित काम की कमी के कारण औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों के अधीन किसी अनुतोष के हकदार नहीं हैं। वास्तविक संबंध पता करने के लिए केवल छद्मावरण हटाने की आवश्यकता है और, इसलिए, यदि हम छद्मावरण हटाते हैं, तब प्रत्यर्थी और कर्मकारों के बीच नियोक्ता और कर्मकार के बीच का वास्तविक संबंध हो सकता है किंतु यह स्वयं में उनके पक्ष में अधिनिर्णय पारित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है जब वे यह स्थापित करने में विफल रहे कि उन्होंने 240 दिन काम किया है ताकि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 25F के अधीन लाभ का दावा कर सकें। इस मोड़ पर, यहाँ यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि दिनांक 10 अप्रिल, 1980 का समझौता यदि अवैध पाया जाता है तब इसे मुख्य प्रयोजन से अवैध पाया जा सकता है और इसे प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है किंतु इस दस्तावेज का उपयोग कतिपय तथ्यों जैसे कर्मकारों के नाम और उनके कार्यदिन, आदि को सिद्ध करने के सांपार्श्विक प्रयोजन से किया जा सकता है और इसलिए दिनांक 10 अप्रिल, 1980 का दस्तावेज, जो प्रबंधन और यूनियन के बीच चर्चा के नोट का रिकॉर्ड अथवा समझौता है, का सीमित प्रयोजन से साक्ष्यीय मूल्य है।

14. यहाँ यह उल्लिखित करना उपयोगी होगा कि दावेदारों-कर्मकारों ने भी दिनांक 27 अक्टूबर, 1979 के श्री ए॰ डी॰ शुक्ला के रिपोर्ट पर विश्वास किया जिसमें भी, कुछ निष्कर्षों का निर्देश है जो,

दावेदारों के अनुसार दावेदारों की मदद करते हैं और श्री ए० डी० शुक्ला के इसी रिपोर्ट का निर्देश दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के उक्त दस्तावेज में भी है और, इसलिए भी दिनांक 10 अप्रिल, 1980 के दस्तावेज में कथित तथ्य विश्वसनीय तथ्य है और इन पर विश्वास किया जा सकता है।

15. उक्त कारणों की दृष्टि में, भले ही यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रत्यर्थी द्वारा स्थापित समझौता अवैध है और विलंब घातक नहीं है और इस मामले के विचित्र तथ्यों और परिस्थितियों में, ठेकेदार के माध्यम से नियोजन छद्मावरण हो सकता है, तब भी मूल निष्कर्ष, जो दावेदारों को अनुतोष के लिए एकमात्र आधार हो सकते थे, विद्वान अधिकरण द्वारा दर्ज नहीं किया गया है और विद्वान एकल न्यायाधीश साक्ष्य के अधिमूल्यन के बाद सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आए कि कर्मकारों ने एक कैलेण्डर वर्ष में 240 दिनों तक काम नहीं किया था। अतः, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए आधारों के अतिरिक्त उक्त उल्लिखित आधार पर अधिनिर्णय अपास्त किए जाने योग्य है।

उक्त कारणों की दृष्टि में, दोनों एल० पी० ए० खारिज किए जाते हैं। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

धर्मेंद्र प्रसाद साह

cuke

भारतीय जीवन बीमा निगम एवं अन्य

Writ Petition (S) No. 4979 of 2008. Decided on 22nd July, 2011.

भारतीय जीवन बीमा निगम (कर्मचारी) विनियमन, 1960—विनियम 18—त्यागपत्र की अस्वीकृति और सेवानिवृत्ति बकायों का समपहरण—याची ने नोटिस की अवधि का अधित्यजन करते हुए तात्कालिक प्रभाव से अपने त्यागपत्र को स्वीकार करने के अनुरोध के साथ सेवा छोड़ने का अपना आशय व्यक्त किया—नौ माह के अवसान के बाद याची के त्यागपत्र की अस्वीकृति अर्थहीन है—भले ही याची ने विनियम 18 के निबंधनों को भंग किया हो, पर प्रत्यर्थीगण को केवल दंड अधिरोपित करने के प्रावधान का अवलंब लेने की शक्ति है—याची अपनी सेवानिवृति बकाया को पाने का हकदार है। (पैराएँ 13 से 17)

निर्णयज विधि.—1981 BLJR 65; AIR 1989 SC 1083—Distinguished.

अधिवक्तागण.—M/s Prabhash Kumar, Tapash Kabiraj, For the Petitioner; Mr. Sachin Kumar, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने प्रबंधक (पी० एवं आई० आर०), भारतीय जीवन बीमा निगम (संक्षेप में, एल० आई० सी०) द्वारा जारी दिनांक 19.4.2007 के पत्र को अभिखंडित करने की प्रार्थना की है जिसके द्वारा याची को सूचित किया गया था कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसका त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया गया था और याची को तुरन्त कार्यालय/पद ग्रहण करने का निर्देश दिया गया था। याची ने दिनांक 29.7.2006 के पत्र द्वारा दिए गए याची के त्यागपत्र को स्वीकार करने के लिए और पी० एफ० उपदान, सामूहिक बीमा और ब्याज के साथ वेतन बकाया जैसे समस्त सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश भी इप्सित किया।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची ने दिनांक 18.9.1989 को कोलकाता में सहायक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में एल० आई० सी० की सेवा को ग्रहण किया था। प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उसे मछलीपटनम, विजयवाड़ा, विशाखापत्तनम में पदस्थापित किया गया था और अनेक स्थानों पर स्थानांतरित किया गया था। जुलाई, 2006 में याची को हजारीबाग स्थानांतरित किया गया था। उसने दिनांक 27.7.2006 को प्रबंधक (ओ० एस०), एल० आई० सी०, हजारीबाग के रूप में प्रभार लिया। प्रभार लेने के बाद याची ने सेवा से त्यागपत्र देना चुना। भारतीय जीवन बीमा निगम (स्टॉफ) विनियम, 1960 (इसमें इसके बाद, 'एल० आई० सी० विनियम' के रूप में निर्दिष्ट) के विनियम 18 में सेवा के विनिश्चयकरण का प्रावधान था। अन्य बातों के साथ साथ प्रावधानित किया गया है कि कर्मचारी सक्षम प्राधिकारी को छोड़ने अथवा त्यागने के अपने आशय का नोटिस देकर निगम की सेवा छोड़ अथवा त्याग सकता है। याची के वर्ग से आने वाले कर्मचारी के मामले में अपेक्षित नोटिस तीन माह की होगी। सक्षम प्राधिकारी द्वारा नोटिस की अवधि के अधित्यजन के लिए भी प्रावधान है। तद्नुसार, याची ने समुचित चैनल के माध्यम से दिनांक 29.7.2006 का नोटिस देकर अपना त्यागपत्र दिया। उसने नियोक्ता द्वारा नोटिस के अधित्यजन के लिए भी अनुरोध किया। उक्त नोटिस निगम के प्रबंध निदेशक को संबोधित की गयी थी। तीन माह की अवधि का अवसान हो गया, किंतु प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई संसूचना नहीं दी गयी थी। अंततः, प्रबंधक (पी० एंड आइ० आर०) द्वारा जारी दिनांक 19.4.2007 के पत्र द्वारा उसे सूचित किया गया था कि याची का त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया गया था। याची को तुरन्त पद ग्रहण करने का निर्देश दिया गया था। एक्जिट साक्षात्कार किया गया था और याची ने समस्त बकायों का भुगतान करने के एकमात्र प्रयोजन से उपस्थित हुआ किंतु प्रत्यर्थीगण ने त्यागपत्र स्वीकार किए जाने के संबंध में कोई पत्र जारी नहीं किया है और न ही याची को सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान किया है। याची ने सक्षम प्राधिकारी से उसका त्यागपत्र स्वीकार करने का अनुरोध किया, किंतु आज की तिथि तक कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

3. प्रत्यर्थीगण ने इस रिट याचिका का प्रतिवाद किया है। उनके प्रति शपथपत्र में अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया है कि याची का त्यागपत्र इस कारण से स्वीकार्य नहीं था कि उसने अपने काम और नियोक्ता के प्रति पूरा असम्मान दर्शाया था। याची त्यागपत्र का नोटिस देने के बाद प्रत्यर्थीगण द्वारा उसको अपना कर्त्तव्य ग्रहण करने के लिए बार बार अनुदेश दिए जाने के बावजूद अपने कर्तव्य पर उपस्थित नहीं हुआ था। याची अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित बना रहा। जब तक उसका त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया जाता है, याची निगम का कर्मचारी था और वह निगम के नियमों और विनियमों का और अपने वरीय अधिकारियों के अनुदेशों का अनुसरण करने के लिए बाध्य है। चूँकि याची अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित था, कर्तव्य से उसकी अप्राधिकृत अनुपस्थिति के लिए उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू की गयी है। विभागीय कार्यवाही के लंबित रहने की दृष्टि में, याची के त्यागपत्र को स्वीकार करने का प्रश्न नहीं है।

4. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और तथ्यों और निवेदनों पर विचार किया है।

5. उक्त एल० आई० सी० विनियम का विनियम 18 सेवा के अवधारण के लिए प्रावधान बनाता है, जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *^^lok dk voèkkj.k*
>
> *18 (1) dkb depkjh] ifjoh{kk ij vFkok vLFkk;h vkèkkj ij fu;Dr depkjh lok NkMu vFkok jkdu d viu vk'k; dk l{ke çkfèkdkjh dk fyf[kr e ukfVl fn, fcuk fuxe e viuh lok dk ugh NkMxk vFkok jkdxkA vif{kr ukfVl dh vofèk&*

(a) ox ı l vku oky depkjh d ekey e rhu ekg]

(b) vU; depkjhx.k d ekey e ,d ekg gkxhA

ijUr ;g fd l{ke çkfèkdkjh }kjk viu Lofood ij mDr ukfVl i.kr% vFkok v'kr% vfèkR;ftr dh tk ldrh gA

mifofu;e d çkoèkkuk dk depkjh }kjk mYy?ku fd, tku dh fLFkfr e] og ukfVl dh vif{kr vofèk d fy, viu oru d cjkcj dh jkf'k d evkotk dk Hkxrku fuxe dk dju dk nk;h gkxk ftl mld cdk;k fd jkf'k l dVkrh dh tk ldrh gA

(2) vè;{k] [dk; ikfydk dfefV] vFkok fuxe fdlh le; ij mldk

(a) rhu ekg dk ukfVl ;k mld cny e oru ;fn og ox ı dk depkjh g] vkj

(b) ,d ekg dk ukfVl vFkok mld cny oru ;fn og fdlh vU; ox dk depkjh g ndj fdlh [LFkk;h] depkjh dh lok fofuf'pr dj ldrk gA

ijUr ;g fd ukfVl dh vofèk mu depkfj;k] ftUgku 10 o"kZ vFkok vfèkd d fy, lok fn;k g] d ekey e dkV yh tk,xhA

ijUr vkx ;g fd fu;fDr çkfèkdkjh d vèkhuLFk çkfèkdkjh }kjk bl fofu;e d vèkhu dkb vkn'k ikfjr ugh fd;k tk,xkA

(3) bl fofu;e e vrfo"V dN Hkh fofu;e 39 d çkoèkkuk d vu#i fdlh depkjh [vFkok vulph III e vrfo"V çkoèkkuk d vu#i ox II l vku oky fdlh depkjh dh lokvk dh lekfIr d fy,] dk ukfVl vFkok mld cny oru fn, fcuk lokfuoÙk] mUekfpr] gVku vFkok c[kkLr dju dh fu;fDr çkfèkdkjh d vfèkdkj dk çHkkfor ugh djxkA

Li"Vhdj.k-*&(1) bl fofu;e e ç;Dr vfHk0;fDr ^^ekg** bxfy'k dyMj d vulkj fxuh tk,xh vkj ml fnu l vkjHk gkxh ftl ij fuxe vFkok depkjh] tl Hkh ekeyk gk] }kjk ukfVl ikIr dh x;h gA*

*(2) mDr mifofu;e (1) d vèkhu depkjh }kjk nh x;h ukfVl dk lefpr doy rc le>k tk,xk ;fn og ukfVl dh vofèk d nkjku dr0; ij cuk jgrk g vkj depkjh ,l h ukfVl d fo#) fdlh vftr vodk'k dk etjk djku dk gdnkj ugh gkxkA***

6. उक्त प्रावधान के सूक्ष्म संवीक्षण पर स्पष्ट है कि तीन माह की नोटिस देकर ही किसी नियोक्ता अथवा कर्मचारी द्वारा सेवा विनिश्चित की जा सकती है। विनियम 18 से संलग्न परन्तुक भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपने स्वविवेक पर पूर्णत: अथवा अंशत: नोटिस का ऐसा अधित्यजन प्रावधानित करता है।

7. याची ने दिनांक 29.7.2006 के अपने पत्र द्वारा 'अत्यावश्यक निजी कारणों' से सेवा से अपना त्यागपत्र विनिर्दिष्ट निबंधन? में दिया था और उसने नोटिस अवधि का अधित्यजन करके उसका त्यागपत्र तुरन्त स्वीकार करने के लिए भी अनुरोध किया था।

8. याची के अनुसार, नोटिस की शर्त अधित्यजित करने के अनुरोध के साथ अपने त्यागपत्र के प्रस्तुतीकरण के बाद याची को कोई उत्तर अथवा बातचीत संसूचित नहीं किया गया था किंतु, नोटिस अवधि

के अवसान के बाद जब याची ने अपने सेवानिवृत्ति देयों का दावा किया, उसे दिनांक 19.4.2007 के पत्र द्वारा सूचित किया गया था कि उसका दिनांक 29.7.2006 का त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया गया था।

9. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि त्यागपत्र स्वीकार नहीं करने के लिए विनियम में कोई प्रावधान नहीं था। नोटिस की शर्त को अधित्यजित करने के अनुरोध के साथ याची का त्यागपत्र नोटिस की अवधि से तीन माह के अवसान तक अस्वीकार नहीं किया गया था। याची ने सारे समय यही समझा कि उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया था। जब एक बार याची ने अपना त्यागपत्र दे दिया, नियोक्ता और कर्मचारी के बीच का संबंध विनिश्चित हो गया था और समाप्त हो गया था। तत्पश्चात्, प्रत्यर्थीगण को उसे अपना कर्मचारी मानते हुए याची के विरुद्ध किसी कार्यवाही को आरंभ करने का प्राधिकार नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि यदि त्यागपत्र देने के उसके अभिव्यक्त आशय की तिथि से तीन माह के अवसान के बाद याची का त्यागपत्र स्वीकार किया जाना था और यदि उक्त अवधि के दौरान याची को कर्मचारी के रूप में माना भी जाता है और उसने अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रह कर सेवा की शर्त को भंग किया, एल॰ आई॰ सी॰ विनियम के विनियम 18 के परन्तुक में दिए गए स्पष्ट प्रावधान की दृष्टि में याची के विरुद्ध किसी विभागीय कार्यवाही को आरंभ करने का प्राधिकार करने का प्राधिकार अथवा अधिकारिता प्रत्यर्थीगण को नहीं है। उक्त परन्तुक में स्पष्ट किया गया है कि किसी कर्मचारी द्वारा उपविनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने की स्थिति में उससे अपेक्षित नोटिस की अवधि के लिए उसके वेतन के बराबर की राशि का भुगतान मुआवजा के रूप में करने के लिए वह दायी होगा जिस राशि को उसे देय किसी धन से काटा जा सकता है। किसी भी सूरत में, विनियम का उल्लंघन करने के ऐसे अभिकथन पर भी, प्रत्यर्थी–निगम को केवल याची को भुगतान योग्य धन से नोटिस की अवधि के लिए याची के तीन माह के वेतन के बराबर की राशि की कटौती करने का अधिकार है। प्रत्यर्थीगण ने उक्त विधिक प्रावधान के विपरीत, किसी औचित्य के बिना संपूर्ण सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान मनमाने रूप से रोक दिया है। प्रत्यर्थीगण को याची का त्यागपत्र अस्वीकार करने और उसके संपूर्ण सेवानिवृत्ति देयों को रोकने का प्राधिकार नहीं है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि त्यागपत्र का नोटिस केवल एक प्रस्ताव है और त्यागपत्र का नोटिस स्वीकार किए जाने तक नियोक्ता द्वारा याची का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया है। याची को निगम का कर्मचारी समझा जाएगा और वह एल॰ आई॰ सी॰ (स्टॉफ) विनियम और उच्चतर अधिकारियों के अनुदेश द्वारा बाध्य है। याची ऐसा नहीं करने और अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित बने रहने के कारण अवचार का दोषी है और उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ करने का प्रत्यर्थीगण को पूरा प्राधिकार है। तद्नुसार, आरोप विरचित किया गया है और याची के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ की गयी है। चूँकि उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही लंबित है, इसके समापन तक उसका त्यागपत्र स्वीकार करने और सेवानिवृत्ति देयों के भुगतान का प्रश्न ही नहीं है।

11. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अपने इस प्रतिवाद को सुदृढ़ बनाने के लिए **'सहायक शाखा प्रबंधक' अब शाखा प्रबंधक, एल॰ आई॰ सी॰ ऑफ इंडिया, गिरिडीह एवं अन्य बनाम शांति स्वरुप शर्मा, 1981 BLJR 65,** में पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को निर्दिष्ट किया और विश्वास किया कि कर्मचारी द्वारा दिया गया त्यागपत्र का नोटिस केवल एक प्रस्ताव है और प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार करना होगा। यदि इसे स्वीकार नहीं किया गया है, यह समझा जाएगा कि इसे स्वीकार नहीं किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे अपने इस प्रतिवाद कि त्यागपत्र केवल इसको

स्वीकार किए जाने के बाद ही प्रभावकारी होगा, के समर्थन में **'पंजाब नेशनल बैंक बनाम पी॰ के॰ मित्तल, AIR 1989 SC 1083,** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट और इसे स्वीकार किया है।

12. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट निर्णयों के सूक्ष्म संवीक्षण पर, मैं पाता हूँ कि इस मामले में और उक्त निर्णयों में अंतर्ग्रस्त तथ्य समरुप नहीं हैं और न ही वे निर्णय वर्तमान मामले के समरुप स्थिति पर विचार करते हैं।

13. वर्तमान मामले में, याची ने नोटिस की अवधि का अधित्यजन करके तात्कालिक प्रभाव से उसका त्यागपत्र स्वीकार करने के अनुरोध के साथ दिनांक 29.7.2006 के अपने पत्र द्वारा सेवा छोड़ने के अपने आशय को अभिव्यक्त किया था। नोटिस की अवधि के अवसान तक उसके उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उत्तर नहीं दिया गया था। अत: याची के पास यह विश्वास करने का सद्भावपूर्व कारण था कि उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया है। लगभग नौ माह के अवसान के बाद याची के त्यागपत्र को अस्वीकार किया जाना अर्थहीन है और परिणामविहीन है। यदि प्रत्यर्थीगण के इस प्रतिवाद को स्वीकार किया भी जाता है कि याची ने एल॰ आई॰ सी॰ विनियमन के विनियम 18 के निबंधनों को भी भंग किया है, उन्हें केवल एल॰ आई॰ सी॰ के विनियम 18 के परन्तुक के मुताबिक दाण्डिक प्रावधान का अवलंब लेने की शक्ति है। उक्त प्रावधान के मुताबिक, याची को नोटिस की अवधि के लिए उसके वेतन के बराबर राशि का मुआवजा के रूप में भुगतान करने का दायी अभिनिर्धारित किया जा सकता है और उसको देय धन से उक्त राशि काटी जा सकती है।

14. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं याची के दावे में सार पाता हूँ।

15. चूँकि नोटिस की अवधि का अवसान पहले ही हो चुका है और अपना त्यागपत्र देने की तिथि से तीन माह के अवसान के बाद याची के त्यागपत्र को प्रभावकारी बन गया समझा जाता है, अत: वह सेवा के निबंधनों के अनुरुप अपने सेवानिवृत्ति देयों को पाने का हकदार है।

16. यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। प्रत्यर्थीगण को इस आदेश की प्रति की प्रस्तुति/प्राप्ति की तिथि से संपूर्ण सेवानिवृत्ति देयों की संगणना करने और सांविधिक ब्याज के साथ भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

17. चूँकि सूचित किया गया है कि यह विनिश्चित करने के लिए कि क्या याची नोटिस की अवधि के लिए अपने वेतन के बराबर की राशि का भुगतान मुआवजा के रूप में करने के लिए दायी है, प्रबंध निदेशक सक्षम प्राधिकारी है, अत: इसके विनिश्चित करने की छूट प्रबंध निदेशक होगी। यदि याची को ऐसे मुआवजा का भुगतान करने का दायी अभिनिर्धारित किया जाता है, प्रत्यर्थीगण याची को भुगतान योग्य सेवानिवृत्ति देयों की राशि से उक्त राशि की कटौती करने के लिए स्वतंत्र होंगे।

18. व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

---

ekuuh; vkjî dh ejkfB;k ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

कादो उर्फ कादे माझी एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 23 of 2002. Decided on 5th December, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 379 वर्ष 1999 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 11.12.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पूर्णतः संपुष्ट–केवल सूचक के घटना के विवरण में कुछ अतिशयोक्ति के आधार पर अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य को ठुकराया नहीं जा सकता है–परिस्थितियों की श्रृंखला स्वयं में संपूर्ण है जो अपराध में अपीलार्थीगण की अंतर्ग्रस्तता को स्पष्टतः उपदर्शित करती है–अपील खारिज। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Ananda Sen, For the Appellants; Mr. S.P. Jha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 379 वर्ष 1999 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 11 दिसंबर, 2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक लखीराम मांझी (अ॰ सा॰ 9) ने दिनांक 20.5.1999 को दोपहर 1.30 बजे पुलिस के समक्ष इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज किया कि उसकी 20 वर्षीय पुत्री होपिना मझाइन (मृतक) उसकी छोटी पुत्री और अ॰ सा॰ 3 और 4 के साथ नए तालाब के निर्माण में मजदूर के रूप में काम करती थी। दिनांक 19.5.1999 को जब होपिना मझाइन अ॰ सा॰ 3 और 4 के साथ खुदीबेरा जंगल के रास्ते लौट रही थी, अपीलार्थीगण ने होपिना को रोका और नाला की ओर खींचकर ले गए और उसका बलात्कार करना चाहा, जिसके लिए होपिना तैयार नहीं थी। तब अपीलार्थी ने मुक्के, थप्पड़ और डंडा से उसपर प्रहार किया और तब गला घोंटकर उसकी हत्या कर दी। तत्पश्चात्, दोनों अपीलार्थीगण ने मृतक के गुप्तांगों में डंडा से उपहतियों को कारित किया। घटना देखने पर, मृतक के साथ आए व्यक्ति भाग गए। जब होपिना रात में घर नहीं लौटी, सूचक सवेरे उसकी तलाश में निकला और उसके मृत शरीर को पाया। लड़के–लड़कियों जो काम से लौटे, ने उसको घटना के बारे में बताया। उसने मृतका की गर्दन पर लिगेचर निशान पाया और मृतक के गुप्तांगों के निकट खून पाया गया था।

3. अभियोजन ने ग्यारह गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 और 2 मृत्यु समीक्षा गवाह है। अ॰ सा॰ 3 और 4 चश्मदीद गवाह हैं। अ॰ सा॰ 5 औपचारिक गवाह है। अ॰ सा॰ 6 को पक्षद्रोही घोषित किया गया था। अ॰ सा॰ 7 और 8 को प्रति परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया गया था। अ॰ सा॰ 9 सूचक है। अ॰ सा॰ 10 डॉक्टर है जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया था। अ॰ सा॰ 11 अन्वेषण अधिकारी है।

4. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सेन ने आक्षेपित निर्णय का इस आधार पर विरोध किया कि प्राथमिकी पूरी तरह से चश्मदीद गवाहों (अ॰ सा॰ 3 और 4) द्वारा दिए गए बयानों का विरोधाभासी है क्योंकि प्राथमिकी में घटना इस तरीके से कथित की गयी है कि अ॰ सा॰ 3 और 4 ने घटना को देखा था जबकि उन्होंने केवल इतना कहा कि अपीलार्थीगण मृतका को जंगल में ले गए और उनको जाने के लिए कहा और इसलिए, यह अधिकाधिक अंतिम बार देखे जाने का मामला है और केवल उस आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. अ॰ सा॰ 3 और 5, जो काम से मृतक के साथ लौटते हुए स्वतंत्र गवाह थे, ने स्पष्टतः कहा कि जब वे खुदीबेरा जंगल के रास्ते से लौट रहे थे, रास्ते में अपीलार्थीगण ने मृतका को बुलाया और अ॰ सा॰ 3 और 4 को जाने को कहा। तब अ॰ सा॰ 3 और 4 लौट गयी और होपिना के पिता (अ॰ सा॰ 9) को उक्त घटना के बारे में बताया। उन्होंने आगे कहा कि बाद में उन्हें पता चला कि होपिना की हत्या

कर दी गयी है। अ॰ सा॰ 3 ने अपीलार्थीगण को कठघरे में पहचाना। अ॰ सा॰ 4 ने अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य को पूर्णत: संपुष्ट किया है। अ॰ सा॰ 3 और 4 के साक्ष्य पर विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं है। सूचक (अ॰ सा॰ 9) अनुश्रुत गवाह है। सूचक द्वारा घटना बताने में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है किंतु केवल उस आधार पर अ॰ सा॰ 3 और 4 के साक्ष्य को ठुकराया नहीं जा सकता है। डॉक्टर जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया, ने मृतक की गर्दन पर लिगेचर निशान पाया और इसे ही मृत्यु का कारण बताया जाता है। डॉक्टर ने आगे कड़े और भोथरे पदार्थ घुसाए जाने से कारित विदीर्ण जख्म को भी गुप्तांग पर पाया। डॉक्टर के मुताबिक समस्त उपहतियाँ कड़े एवं भोथरे पदार्थ द्वारा कारित की गयी थी। डॉक्टर के मतानुसार, मृत्यु का समय भी अभिकथित घटना के समय को पूर्णत: संपुष्ट करता है। यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थीगण को इस मामले में झूठा क्यों आलिप्त किया जाएगा।

7. विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से यह अभिनिर्धारित करते हुए कि इस मामले में परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है जो अभिकथित अपराध में इन अपीलार्थीगण की अंतर्ग्रस्तता को स्पष्टत: उपदर्शित करती है, अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया।

8. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद हम दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

सैयद इश्तियाक अली

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 6 of 2009. Decided on 2nd December, 2011.

C/1 केस सं॰ 174 वर्ष 1997 में न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 10.4.2000 के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–परिवादी ने अभियुक्त को मित्रवत् कर्ज दिया था–यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि पक्षों के बीच कोई व्यवसायिक संव्यवहार था जिसमें परिवादी द्वारा अभियुक्त को कभी कोई धन दिया गया–बैंक में चेकों का प्रस्तुतीकरण भी संदेहास्पद है–परिवादी के नाम से चेकों को जारी नहीं किया गया था–धारा 138 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है–अपील खारिज। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Sanjeet Kumar Sahay, For the Appellant; A.P.P., For the State; Mr. Shankar Lal Agrawal, For the Respondent No. 2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह अपील सी॰/1 केस सं॰ 174 वर्ष 1997 में श्री नारद पांडे, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 10 अप्रिल, 2000 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 2, जिसका परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए विचारण किया गया था, को अभियोग से दोषमुक्त कर दिया गया है।

3. परिवादी के मामले के अनुसार, जैसा अवर न्यायालय में दाखिल परिवाद याचिका में प्रकट किया गया है, अभियुक्त एस॰ के॰ हशमत ने परिवादी से जनवरी, 1996 से मई, 1996 के बीच विभिन्न तिथियों पर 6,25,000/- रुपयों का मित्रवत कर्ज लिया और एक वर्ष के भीतर इसे लौटाने का वादा किया। उक्त राशि में से 1,00,000/- रुपयों का भुगतान अभियुक्त द्वारा कर दिया गया था और 5,25,000/- रुपयों की शेष राशि के लिए अभियुक्त ने स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, मानगो शाखा, जमशेदपुर का 50,000/- रुपयों का चेक सं॰ 253784 दिनांक 15.9.1996 परिवादी को दिया। उक्त चेक परिवादी द्वारा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, मानगो शाखा, जमशेदपुर में प्रस्तुत किया गया था, किंतु दिनांक 18.9.1996 के मेमो के तहत इसका अनादर कर दिया गया था क्योंकि अभियुक्त के खाता में पर्याप्त निधि नहीं थी। किंतु जब परिवादी ने अभियुक्त को चेक के अनादर के बारे में सूचित किया, अभियुक्त ने परिवादी से क्षमा याचना की और उसने परिवादी को शेष बकाया के विरुद्ध 50,000/- रुपयों के लिए दिनांक 10.10.1996 का एक और चेक सं॰ 253785 जारी किया और यह आश्वासन देते हुए कि दोनों चेकों को भुनाया जाएगा दिनांक 10.10.1996 को परिवादी से दोनों चेकों को बैंक में प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। बैंक में चेकों को प्रस्तुत किए जाने के पहले चेकों को अभियुक्त ने पुनः परिवादी से, बैंक में दिनांक 20.2.1997 को प्रस्तुत करने का पुनः अनुरोध किया। तद्नुसार, परिवादी द्वारा दोनों चेकों को दिनांक 24.2.1997 को बैंक में प्रस्तुत किया गया था, किंतु अपर्याप्त निधि के कारण दोनों चेकों का दिनांक 24.2.1997 के मेमो के तहत पुनः अनदार कर दिया गया था। तद्नुसार, परिवादी द्वारा अभियुक्त को दिनांक 10.3.1997 को कानूनी नोटिस भेजकर राशि की मांग की गयी थी, पर अभियुक्त द्वारा विफल रहने पर अवर न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी, जिसे C 1 केस सं॰ 174 वर्ष 1997 के रूप में संख्यांकित किया गया था।

4. अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परिवादी के परीक्षण पर मामला प्रथम दृष्टया अभियुक्त के विरुद्ध पाया गया था और अभियुक्त को समन जारी किया गया था। आगे प्रतीत होता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन और परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए भी आरोप विरचित किया गया था और अभियुक्त द्वारा निर्दोषिता का अभिवचन करने और विचारण किए जाने का दावा करने पर उसका विचारण किया गया था। अवर न्यायालय में दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिए गए थे और अंततः दिनांक 10 अप्रिल, 2000 को अभियुक्त को आरोप से दोषमुक्त करते हुए अवर न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति का निर्णय पारित किया गया था।

5. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी ने अवर न्यायालय में उसको जारी किए गए चेकों जिन्हें प्रदर्शों 1 और 1/1 के रूप में चिन्हित किया गया था, बैंक के रिटर्न मेमो जिन्हें प्रदर्शों 2, 2/1 और 2/2 के रूप में चिन्हित किया गया था, कानूनी नोटिस जिसे प्रदर्श 3 के रूप में और उसकी अभिस्वीकृति को प्रदर्श 3/1 के रूप में चिन्हित किया गया था को सिद्ध किया था और ये दस्तावेज स्पष्टतः दर्शाते हैं कि अपीलार्थी ने समय के भीतर परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध निर्मित होने के समस्त आवश्यक अपेक्षाओं का अनुपालन किया था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का आक्षेपित निर्णय पूर्णतः गैर-कानूनी और अभिलेख के विरुद्ध है और अपास्त किए जाने योग्य है।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी को अवर न्यायालय द्वारा सही प्रकार से दोषमुक्त किया गया है। निवेदन किया गया है कि स्वयं परिवाद याचिका के अनुसार, विभिन्न तिथियों पर परिवादी द्वारा अभियुक्त को कर्ज दिया गया था, किंतु परिवादी के पास

मनी लेंडर्स अधिनियम के अधीन कोई लाइसेंस नहीं है और इस प्रकार कर्ज, यदि था, अवैध और अप्रवर्तनीय था। इस प्रकार विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।

7. मैंने अभिलेख का परिशीलन किया है। अभिलेख के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि परिवादी के मामले के अनुसार, जैसा परिवाद याचिका में अधिकथित किया गया है, परिवादी ने अभियुक्त को 6,25,000/- रुपयों का मित्रवत् कर्ज दिया था। परिवाद याचिका में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि दोनों पक्षों के बीच व्यावसायिक संव्यवहार था, जिसमें परिवादी द्वारा अभियुक्त को कभी कोई धन अग्रिम बतौर दिया गया था। इसके अतिरिक्त, परिवादी ने अपनी परिवाद याचिका में कथन नहीं किया है कि वह किसी निशा रोडवेज का स्वामी है। किंतु, सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में अपने अभिसाक्ष्य में, परिवादी ने कथन किया है कि वह निशा रोडवेज का स्वामी है और अभियुक्त एस॰ के॰ हशमत के साथ उसके व्यावसायिक संबंध हैं। अपने अभिसाक्ष्य में, परिवादी ने पुनः कथन किया है कि उसने अभियुक्त एस॰ के॰ हशमत को मित्रवत कर्ज दिया था। किंतु चेकों, जिन्हें अभिलेख पर लाया गया है और प्रदर्शों 1 और 1/1 के रूप में सिद्ध किया गया है, स्पष्टतः दर्शाते हैं कि वे परिवादी सैयद इश्तियाक अली के नाम से जारी नहीं किए गए थे, बल्कि उक्त चेकों को निशा रोडवेज के नाम से जारी किया गया था। निशा रोडवेज के नाम से चेकों का जारी किया जाना स्पष्टतः परिवादी के मामले को भंजित करता है कि चेकों को उसके पक्ष में जारी किया गया था। यदि परिवादी का मामला सत्य माना भी जाए, यह एक मित्रवत कर्ज था जो पक्षों के बीच किसी व्यावसायिक संव्यवहार से संबंधित नहीं था जिसका भुगतान परिवादी के नाम पर किया जाना था और न कि किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान के नाम पर। बैंक में चेकों का प्रस्तुतिकरण भी अत्यन्त संदेहास्पद है क्योंकि बैंक के किसी कर्मचारी द्वारा चेकों पर पृष्ठांकन नहीं है और यह तथ्य सी॰ डब्ल्यू॰ 2, जो स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, मानगो शाखा, जमशेदपुर का सहायक प्रबंधक है के रूप में प्रति परीक्षण किए जाने से स्थापित होता है। उसने अपने प्रतिपरीक्षण में स्वीकार किया है कि दोनों चेकों में बैंक का कोई पृष्ठांकन नहीं है और न ही बैंक के किसी कर्मचारी का हस्ताक्षर है, वह यह नहीं कह सकता था कि किसके समक्ष चेकों को प्रस्तुत किया गया था।

8. चेकों में पूर्वोल्लिखित दुर्बलताओं अर्थात् चेकों को परिवादी के नाम पर जारी नहीं किया गया था, की दृष्टि में और यह भी देखते हुए कि बैंक में चेकों की प्रस्तुति अत्यन्त संदेहास्पद है, मेरे सुविचारित मत में, परिवादी प्रत्यर्थी अभियुक्त के विरुद्ध परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध निर्मित करने का अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है और अवर न्यायालय अभियुक्त को दोषमुक्त करने में बिल्कुल सही था।

9. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। तद्नुसार, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है और एतद्द्वारा इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

जगदीप सिंह एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) No. 446 of 2009. Decided on 12th December, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 420—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—छल–संज्ञान–अभियुक्त ने इस आधार पर कि आपूर्ति की गयी सामग्री कम थी, आपूर्ति की गयी सामग्री का पूरा भुगतान करने से इनकार किया–याची की आपराधिक मनः स्थिति सिद्ध करने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसका भुगतान किए बिना मालों को लेने का आशय था–विधि के सुनिश्चित सिद्धांत और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 की आवश्यकतायें अपराध पूरा करने की अपेक्षाओं को संतुष्ट नहीं करती है–यह संविदात्मक मामला है और आंशिक भुगतान का भंग हुआ है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 7 से 10)

निर्णयज विधि.–1986 (3) Crimes (HC) 411; 1994 Cri. LJ 370—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Ananda Sen, For the Petitioners; Mr. R.N. Roy, For the Respondent No.1; Mr. Manish Kumar, For the Respondent No. 2.

आदेश

याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद सेन, झारखंड राज्य–प्रत्यर्थी सं॰ 1 के लिए उपस्थित विद्वान सरकारी अधिवक्ता सं॰ III श्री आर॰ एन॰ रॉय को और प्रत्यर्थी सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष कुमार को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका में सी॰/1 केस सं॰ 2245 वर्ष 2008 में श्री अरविन्द कुमार सं॰ II, न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 13 मई, 2009 के आदेश सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की गयी है। भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है। परिवाद को परिशिष्ट–1 के रूप में संलग्न किया गया है और संज्ञान लेने तथा अभियुक्त को समन करने वाला दिनांक 13 मई, 2009 का आदेश रिट याचिका का परिशिष्ट–2 है।

3. विद्वान अधिवक्ता ने संपूर्ण परिवाद को प्रस्तुत किया है। उधार पर एम॰ एस॰ फाउंडेशन बोल्ट की आपूर्ति के लिए याची और प्रथम सूचक–प्रत्यर्थी सं॰ 2 के बीच करार था। अभिकथन है कि अभियुक्त सं॰ 1 मेसर्स यूनाइटेड इंजीनियरिंग कंपनी, एक स्वत्वधारी फर्म के मैनेजर ने कीमत की भुगतान पर सामग्री की आपूर्ति के लिए करार किया। परिवाद का पैराग्राफ 4 विनिर्दिष्टतः उल्लिखित करता है कि दिनांक 6 अगस्त, 2008 को चेक द्वारा 1,00,000/- रुपयों का भुगतान किया गया था और एम॰ एस॰ फाउंडेशन बोल्ट की आपूर्ति के बाद अभियुक्तगण ने दिनांक 10.10.2008 को 89,999.91/- रुपयों का एक अन्य चेक भेजा। भुगतान की दूसरी किश्त 2,53,658.38/- रुपयों के कुल बकायों का आंशिक भुगतान था। अभियुक्त ने इस आधार पर पूरा भुगतान करने से इनकार किया कि आपूर्ति की गयी सामग्री कम थी और तद्नुसार, उन्हें भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है, अतः परिवाद दाखिल किया गया था।

4. याची की ओर से निवेदन किया गया है कि निःसंदेह परिवाद के पैराग्राफ 17 में अभिकथन किया गया है कि अभियुक्त का आशय डील के आरंभ से ही परिवादी के साथ छल करना था किंतु परिवाद का पूर्ववर्ती पैराग्राफ असंदिग्ध रूप से किश्तों के भुगतान को स्वीकार करता है। जोरदार तर्क किया गया है कि यदि भुगतान नहीं करने अथवा परिवादी के साथ छल करने का कोई आशय याची का होता तो कुछ भी भुगतान नहीं किया जाता किंतु चूँकि आपूर्ति में कमी के लिए विवाद था, अतः, भुगतान रोक दिया गया था। जोरदार निवेदन किया गया है कि आपूर्ति के लिए संपूर्ण राशि का भुगतान कर दिया गया था। परिवादी इस तथ्य के बावजूद अधिक राशि की मांग कर रहा था कि पूरे ऑर्डर को परिपूर्ण नहीं किया गया था और आपूर्ति ऑर्डर से कम मात्रा की थी।

5. दूसरी ओर, परिवादी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि संविदा के आरंभ से ही पूर्ण राशि का भुगतान नहीं करने का याची का असद्भावपूर्ण आशय था और इन्हीं कारणो से दो किश्तों में भुगतान किया गया था और लगभग आधी राशि रोक ली गयी थी। याचीगण ने भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध किया है जिसे विचारण के दौरान साक्ष्य देकर ही सिद्ध किया जा सकता है और, इसलिए, रिट याचिका खारिज किए जाने की दायी है।

6. मैंने अधिवक्ताओं को विस्तारपूर्वक सुना है, अभिलेख और परिवाद तथा प्रतिशपथ पत्र का परिशीलन किया है।

7. परिवाद का सूक्ष्म संवीक्षण प्रकट रूप से बताता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अवयव पूरी तरह गायब हैं। याची की आपराधिक मन:स्थिति सिद्ध करने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसका भुगतान किए बिना मालों को लेने का कोई आशय था और परिणामस्वरुप परिवादी के साथ छल करना था। अधिकाधिक, परिवाद के कोरे परिशीलन पर निष्कर्षित किया जा सकता है कि एक या दूसरे विवाद के कारण याची ने शेष राशि के भुगतान से बच निकलने का प्रयास इस बहाना पर किया कि बाद के चरणों पर आपूर्ति अपूर्ण थी। विधि के सुनिश्चित सिद्धांत और भारतीय दंड संहिता की धारा 420 की आवश्यकता प्रकटत: अपराध पूरा किए जाने की अपेक्षा को संतुष्ट नहीं करती है। वस्तुत:, दांडिक कार्यवाही दूसरे पक्ष को सुने बिना मांगी गयी राशि के भुगतान के लिए अभियुक्त पर दबाव बनाने के लिए आरंभ की गयी है। वस्तुत:, अभिकथन स्थापित करते हैं कि यह संविदात्मक मामला है और आंशिक भुगतान का भंग किया गया प्रतीत होता है। यह विवाद सिविल परिणामों को अंतर्ग्रस्त करता है और, इसलिए, दांडिक कार्यवाही का संस्थापन अभिखंडित किए जाने का दायी है। मेरे सुविचारित मत में, प्रत्यर्थी सं० 2 के कहने पर आरंभ किया गया अभियोजन दबाव डालने की युक्ति मात्र है। याची एक व्यापारी है और ऐसे संव्यवहार अपरिहार्य हैं। भुगतान अथवा अन्य व्यावसायिक संव्यवहारों से संबंधित विवाद किसी निष्कर्ष की ओर नहीं ले जा सकते हैं और दांडिक आपराधिक मन:स्थिति गठित नहीं कर सकते हैं।

8. विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध गठित करने के अवयवों का अस्तित्व आपराधिक मन: स्थिति है अर्थात् अपराध किए जाने के आरंभिक चरण पर ही कपटपूर्ण आशय अथवा छल का आशय है। छल के अपराध को भारतीय दंड संहिता की धारा 415 में परिभाषित किया गया है।

> *To constitute cheating under this section, there must be—*
>
> *(1) deception of any person and thereby,*
>
> *(2)(a) fraudulently or or dishonestly inducing that person—*
>
> *(i) to deliver any property to any person, or*
>
> *(b) intentionally inducing that person to do or omit to do anything which he would not do or omit if he were not so deceived and which act or omission causes or is likely to cause harm to that person in body, mind, reputation or property.*

9. छल और संविदा के भंग के बीच भिन्नता है। निर्णयों की श्रृंखला में इस सुभिन्नता को स्पष्ट किया गया है। नि:संदेह एक सूक्ष्म रेखा है जो सुभिन्नता उत्पन्न करती है किंतु उत्प्रेरण के समय अभियुक्त के आशय से निष्कर्ष निकाला जा सकता है जिसके लिए पश्चातवर्ती आचरण आवश्यक हो सकता है इसका निर्णय करने के लिए किंतु इसे एकमात्र मापदंड नहीं बनाया जा सकता है। मात्र संविदा का भंग दांडिक

अभियोजन को उद्भूत नहीं कर सकता है। **उन्नी मेनन बनाम केरल फिल्म आर्टिस्ट एंड क्रिटिक सोसाइटी एवं अन्य, [(1986)3 Crimes (HC)411]** के मामले में अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे अभिकथन कि अभियुक्त ने किसी कृत्य को करने के लिए परिवादी को गैरईमानदार रूप से अथवा कपटपूर्वक उत्प्रेरित किया था, के प्राथमिक अवयवों की अनुपस्थिति में छल का अपराध गठित नहीं किया जा सकता है। **बनवारी लाल अग्रवाल एवं अन्य बनाम सूर्यनारायण और राज्य, 1994 Cri LJ 370,** में भी समरुप दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया गया था।

10. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, दांडिक परिवाद और संपूर्ण कार्यवाही विधि की आवश्यकता को परिपूर्ण नहीं करता है और, परिणामस्वरुप, अभिखंडित किए जाने का दायी है।

11. तद्नुसार, रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है। कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

मेसर्स आर॰ के॰ माइनिंग प्रा॰ लि॰

cuke

भारत कोकिंग कोल लि॰ एवं अन्य

L.P.A. No. 350 of 2011. Decided on 7th December, 2011.

सरकारी संविदा–निविदा–रद्दकरण–नयी निविदा जारी–प्रत्यर्थी को संकर्म आदेश दे दिए जाने के बाद भी प्रत्यर्थी-कंपनी द्वारा निविदा रद्द कर दी गयी क्योंकि प्रत्यर्थी ने प्रतिभूति/गारंटी प्रस्तुत करने में व्यतिक्रम किया–अपीलार्थी को कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता है–क्षतियों के उपचार का लाभ लेने की अपीलार्थी को अनुमति दी गयी। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Das, For the Appellant; Mr. A.K. Mehta, For the Respondent.

आदेश

अपीलार्थी और प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची-अपीलार्थी को प्रश्नगत संविदा देने से इनकार किया गया था, जिसके लिए अपीलार्थी को वित्तीय बोली खोलने के बाद एल॰ 1 निविदाकार पाया गया था किंतु इसके बाद, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, निजी प्रत्यर्थी सं॰ 3 जो टेक्नीकल बोली में अर्हित नहीं हो सका था, का प्रस्ताव ग्रहण किया गया था।

3. प्रत्यर्थी कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि न केवल प्रश्नगत निविदा को रद्द कर दिया गया है बल्कि प्रस्ताव आमंत्रित करते हुए नए निविदा को भी जारी किया गया है।

4. चाहे जो भी हो, इस तथ्य की दृष्टि में विस्तृत तथ्य आवश्यक नहीं है कि प्रश्नगत निविदा को प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 3 को संकर्म आदेश दिए जाने के बाद भी रद्द कर दिया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी सं॰ 3 ने प्रतिभूति/गारंटी प्रस्तुत करने में व्यतिक्रम किया था।

5. उक्त कारण की दृष्टि में याची-अपीलार्थी को कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता है।

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी को निविदा के गलत रूप से

रद्दकरण के लिए क्षति इप्सित करने के लिए और अपीलार्थी को हानि और परेशानी कारित करने के लिए प्रत्यर्थी कंपनी के अवैध कृत्यों के लिए अन्य उपचार का लाभ लेने की अनुमति दी जा सकती है।

7. यदि विधि अनुमति देती है, अपीलार्थी उपचार का लाभ लेने के लिए स्वतंत्र है किंतु निविदा जिसे पहले ही रद्द किया जा चुका है, के अनुसरण में याची-अपीलार्थी को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह एल॰ पी॰ ए॰ निष्फल हो गयी है। अत: निष्फल होने के कारण, इस एल॰ पी॰ ए॰ को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

हरि राम सारीवाला उर्फ हरि राम

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 27 of 2008. Decided on 2nd December, 2011.

सी॰/1 केस सं॰ 379 वर्ष 2000 (विचारण सं॰ 1328 वर्ष 2007) में न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 14.12.2007 के निर्णय के विरुद्ध।

(क) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—चेक का अनादर-दोषमुक्ति-दवाओं की कीमत के भुगतान के लिए जारी चेक का अनादर-ब्लैंक चेक दिया गया था और स्वयं परिवादी ने इसे भरा था यद्यपि चेक कंपनी को दिया गया था और न कि परिवादी को-अपीलार्थी-परिवादी अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा कि चेक उसके विधिक अधिकारों को निपटाने में अभियुक्त द्वारा उसे कभी चेक दिया गया था-दोषमुक्ति का आदेश अभिपुष्ट किया गया। (पैराएँ 8 से 14)

(ख) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—चेक का अनादर-जब एक बार बचाव पक्ष एन॰ आई॰ अधिनियम के अधीन उपधारणा का खंडन करने में सक्षम होता है, परिवादी को समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे मामला सिद्ध करना है-जब एक बार बचाव पक्ष द्वारा अभियोजन मामले के प्रति युक्तियुक्त संदेह सृजित किया जाता है, तो अभियुक्त संदेह का लाभ पाने और दोषमुक्त किए जाने का हकदार बन जाता है। (पैरा 11)

निर्णयज विधि.-(1993)3 SCC 35; (2008)4 SCC 54; 2010 (3) JCR 16 (SC);—Relied on; 2004 (1) Crimes 567; 2010 Cri. LJ (Noc) 455 (Guj)—Referred.

अधिवक्तागण.-Mr. S.L. Agrawal, For the Appellant; Mr. Amresh Kumar, For the State; Mr. P.P.N. Roy, P.A.N. Roy, For the Respondent No.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.-दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. यह दोषमुक्ति अपील सी॰/1 केस सं॰ 379 वर्ष 2000/ विचारण सं॰ 1328 वर्ष 2007 में श्री उत्तम आनन्द, न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 14 दिसंबर, 2007 के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा मामले के न्याय निर्णयन पर अवर न्यायालय ने पाया है कि परिवादी मामला सिद्ध करने में और अभियुक्त के विरुद्ध परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अभियोग समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है।

3. परिवादी के मामले के अनुसार, जैसा उसके द्वारा दाखिल परिवाद याचिका में बनाया गया है, यह प्रतीत होता है कि परिवादी एक व्यापारी है जिसका दवाओं का स्वत्वधारी व्यवसाय है। परिवादी ने बिल सं॰ 24 दिनांक 17.3.1999 के तहत 18,398.86/- रुपयों और बिल सं॰ 001 दिनांक 10.5.1999 के तहत 55,197.66/- रुपयों अर्थात् कुल 73,596.52/- रुपयों की दवा को अभियुक्त को उधार पर बेचा और उक्त दवायें अभियुक्त को दी गयी थी जिसने एक माह बाद उधार राशि का भुगतान करने का वादा किया। अनेक बार याद दिलाने के बाद, अभियुक्त ने विजया बैंक, धनबाद शाखा पर आधारित 73,596.52/- रुपयों का चेक जारी किया जिसे चेक सं॰ 0104386 दिनांक 1.2.2000 द्वारा परिवादी के पक्ष में रितिका इंटरप्राइजेज, धनबाद के स्वत्वधारी के रूप में अभियुक्त ने जारी किया था। परिवादी ने उक्त चेक यूको बैंक, बिष्टुपुर मुख्य शाखा, जमशेदपुर में अपने खाते में जमा किया किंतु ''अपर्याप्त निधि'' का कारण दर्शाते हुए इसका अनादर किया गया था जिसे बैंक द्वारा परिवादी को दिनांक 19.3.2000 को सूचित किया गया था। तत्पश्चात् परिवादी ने 15 दिनों के भीतर राशि का भुगतान करने का अनुरोध करते हुए अपने अधिवक्ता के माध्यम से रजिस्टर्ड पोस्ट और अंडर सर्टिफिकेट ऑफ पोस्टिंग के अधीन कानूनी नोटिस भेजा, किंतु उसके बावजूद राशि का भुगतान नहीं किया गया था और इसलिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर के न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल किया गया था जिसे सी॰/1 केस सं॰ 379 वर्ष 2000 के रूप में दर्ज किया गया था।

4. यह प्रतीत होता है कि सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परिवादी का बयान दर्ज किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया था कि अभियुक्त ने उसे मार्च, 1999 में बिना तारीख का चेक दिया था जिस पर परिवादी ने अभियुक्त की सहमति से तिथि लिखा था। किंतु, यह इंगित किया जा सकता है कि परिवाद याचिका में इस तथ्य को कथित नहीं किया गया था। यह प्रतीत होता है कि सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परिवादी का बयान दर्ज किए जाने पर और अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला सत्य पाए जाने पर अभियुक्त को समन जारी किया गया था। विचारण के क्रम में, दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था और अंततः न्यायनिर्णयन पर अवर न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति का आदेश पारित किया गया था जिसे वर्तमान अपील में आक्षेपित किया गया है।

5. अभिलेख के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त का बचाव यह है कि परिवादी कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड का स्टॉकिस्ट था और दिनांक 5.2.1997 के पत्र के तहत अभियुक्त के फर्म रितिका इंटरप्राइजेज को संस्थागत आपूर्तिकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया था जिसमें, निबंधनों में से एक यह था कि अभियुक्त को कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड को अपने पहले आर्डर के साथ एक ब्लैंक चेक देना था। अभियुक्त का बचाव यह है कि उक्त ब्लैंक चेक, जिसे अभियुक्त द्वारा कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड को दिया गया था, किसी प्रकार से परिवादी के हाथ आ गया और परिवादी द्वारा इसको स्वयं अपने कलम से भरकर और बैंक में प्रस्तुत करके इसका उपयोग किया था।

6. परिवादी, जिसने सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण किया है, के साक्ष्य से प्रश्न है कि परिवादी ने स्वयं अपने मुख्य परीक्षण में कथन किया है कि परिवादी ने स्वयं अपने हस्तलेखन में चेक भरा था। उसने चेक सिद्ध किया है, जिसे प्रदर्श 3 के रूप में चिन्हित किया गया है। परिवादी ने यह कथन भी किया है कि वह कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड, हैदराबाद का सुपर स्टॉकिस्ट है। अपने प्रति परीक्षण में इस गवाह ने आगे स्वीकार किया है कि उसने फरवरी, 2000 में चेक जमा किया था, चेक पर तारीख नहीं थी और चेक स्वयं मार्च, 1999 में उसको दिया गया था।

7. अभियुक्त ने बचाव में एक गवाह प्रस्तुत किया है जो ब॰ सा॰ 1 अजय कुमार भगत है जिसने अन्य बातों के साथ साथ पत्र सिद्ध किया है, जिसके द्वारा अभियुक्त को धनबाद में संस्थागत आपूर्तिकर्ता के रूप में इस शर्त के साथ नियुक्त किया गया था कि पहले आर्डर के साथ ब्लैंक चेक देना होगा जिसे परिशुद्धि के बाद प्रदर्श F के रूप में चिन्हित किया गया है। उक्त गवाह ने दिनांक 6.6.1997 का पत्र भी सिद्ध किया है जो दर्शाता है कि ब्लैंक चेक प्रस्तुत करने की शर्त परिपूर्ण करने के लिए, जैसा पत्र प्रदर्श F में उल्लिखित किया गया है, रितिका इंटरप्राइजेज, जो अभियुक्त का है, द्वारा कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड को दिया गया था और उसमें स्पष्टत: उल्लिखित किया गया था कि विजया बैंक का ब्लैंक चेक सं॰ 0104386 तिथि के बिना भेजा जा रहा था। उक्त चेक की अभिस्वीकृति स्वयं इस पत्र पर है जिसमें स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि विजया बैंक का चेक सं॰ 0104386 कॉम्बैट ड्रग्स लि॰ द्वारा दिनांक 6.6.1997 को प्राप्त किया गया था।

8. प्रश्नगतगत उक्त चेक, जिसे अभिकथित रूप से अभियुक्त द्वारा परिवादी को दिया गया था, को परिवादी द्वारा प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया गया है। उक्त चेक का नंबर वही अर्थात् 0104386 है जिसे दिनांक 6.6.1997 के पत्र में उल्लिखित किया गया है जिसके द्वारा उक्त तिथिहीन चेक कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड को दिया गया था। परिवादी ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि उक्त चेक ब्लैंक था और स्वयं परिवादी ने तिथि सहित चेक भरा था। प्रदर्श 3 चेक स्पष्ट दर्शाता है कि परिवादी की कंपनी का नाम, राशि और तिथि एक ही कलम से भरी गयी थी, जिसे परिवादी ने अपनी लिखावट में होना स्वीकार किया। किंतु, परिवाद याचिका में परिवादी का मामला यह नहीं है, बल्कि, उसका मामला यह है कि चेक सं॰ 0104386 दिनांक 1.2.2000 द्वारा 73,596.52/- रुपयों का चेक उसे अभियुक्त द्वारा दिया गया था। कहीं पर भी यह कथन नहीं किया गया है कि उक्त चेक ब्लैंक था और इसे इस परिवादी द्वारा भरा गया था।

9. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने **हितेनभाई पारेख बनाम गुजरात राज्य एवं एक अन्य, 2010 Cri.L.J. (NOC)455 (Guj.)** में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय के नोट्स ऑफ केसेज पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि जब केवल लेखीवाल के हस्ताक्षर वाला चेक दिया जाता है और किसी कर्ज अथवा दायित्व के पूर्णत: अथवा अंशत: उन्मोचन के लिए भुगतान प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त किया जाता है, ऐसे चेक को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को खाली जगहों को भरकर उसको पूरा करने का विवक्षित प्राधिकार है और ऐसे विवक्षित प्राधिकार के अधीन भरी गयी राशि उसके द्वारा इसके अधीन भुगतान किए जाने के लिए उसके द्वारा आशयित राशि होगी। मेरे सुविचारित मत में यह एन॰ ओ॰ सी॰ इस मामले के तथ्यों में अपीलार्थी की मदद नहीं करता है क्योंकि अभियुक्त ने यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर साक्ष्य लाया है कि चेक परिवादी को कभी नहीं दिया गया था, बल्कि इसे प्रतिभूति के रूप में कॉम्बैट ड्रग्स लि॰ को दिया गया था।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **एवन ऑर्गेनिक्स लि॰ बनाम पायनियर प्रोड्क्टस लि॰ एवं अन्य, 2004 (1) Crimes 567,** में माननीय आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि चेक किसी विनिर्दिष्ट राशि के लिए नहीं दिया गया है, यह बिल ऑफ एक्सचेंज की परिभाषा के भीतर नहीं आता है और राशि वाला भाग और तिथि भरने का परिवादी का कृत्य तात्विक परिवर्तन था और इसे प्रवर्तित नहीं किया जा सकता था यद्यपि इसे विधिक दायित्व के लिए जारी किया गया था। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि चेक जारी करने वाले पक्ष की सहमति के बिना परिवर्तन चेक को अवैध बना देता है।

11. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी अभियुक्त ने यह दर्शाने के लिए कि उक्त ब्लैंक चेक उसके द्वारा कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड को और न कि परिवादी को दिया गया था, अभिलेख पर साक्ष्य लाकर अवर न्यायालय में विचारण के दौरान युक्तियुक्त बचाव करने में सक्षम हुआ है। यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि जब एक बार बचाव पक्ष परक्राम्य लिखत अधिनियम के अधीन उपधारणा का खंडन करने में सक्षम होता है, परिवादी को मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करना होता है। अभियोजन मामले में युक्तियुक्त संदेह सृजित करके बचाव की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है और बचाव को समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। जब एक बार अभियोजन मामले में युक्तियुक्त संदेह सृजित हो जाता है और अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहता है, अभियुक्त संदेह के लाभ और आरोप से मुक्त किए जाने का हकदार बन जाता है।

12. इस संदर्भ में, **भारत बैरल एण्ड ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चन्द प्यारेलाल, (1993)3 SCC 35,** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि अधिकथित की गयी है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *^^12. ;gk Åij xkj fd, x, vud fu.k;k ij fopkj dju ij fofèk dh tk fLFkfr lkeu vkrh g og ;g g fd tc ,d ckj çkfeljh ukV dk fu"iknu Lohdkj fd;k tkrk g] èkkjk 118(a) d vèkhu mièkkj.kk mnHkr gkxh fd ;g çfrQy }kjk lefFkr gA ,lh mièkkj.kk [kMu ;kX; gA çfroknh lHkk0; cpko mBkdj çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dj ldrk gA ;fn çfroknh u ;g n'kkr g, çek.k dh vkjfHkd ftEenkjh dk fuogu fd;k tkuk fl) djrk g fd çfrQy dk vfLrRo vufèklHkk0; vFkok lngkLin Fkk vFkok ;g voèk Fkk] rk ftEenkjh oknh dh gkxh tk bl rF; d ekey d :i e fl) dju d fy, ckè; gkxk vkj bl fl) dju e foQyrk ijØkE; fy[kr d vkèkkj ij vurk"k çnku dju d fy, mldk xj gdnkj cuk,xhA çfrQy dh vfLrRoghurk dk fl) dju d fy, çfroknh ij Hkkj ;k rk çR;{k gk ldrk g vFkok ifjfLFkfr;k] ftu ij og fo'okl djrk g dk fufn"V djd vfèklHkk0; rk dh cgyrk dk vfHky[k ij ykdj fd;k tk ldrk gA ,lh fLFkfr e] oknh fofèk d vèkhu oknh d lk{; lfgr ekey e fn, x, leLr lk{; ij fo'okl dju dk gdnkj gA ;fn çfroknh çfrQy dh vfLrRoghurk n'kkr g, çek.k dh vkjfHkd ftEenkjh dk fuogu dju e foQy jgrk g] oknh dk lno viu i{k e èkkjk 118(a) d vèkhu mnHkr gkrh mièkkj.kk d ykHk dk gdnkj ekuk tk,xkA çR;{k lk{; ndj çfrQy d vfLrRo dk vfl) dju d fy, U;k;ky; çfroknh ij tkj ugh Mky ldrk g D;kfd udkjkRed lk{; dk vfLrRo u rk lHko g vkj u gh vuè;kr fd;k x;k g vkj ;fn bl fn;k Hkh tkrk g] bl lng dh utj ln[kuk gkxkA çfrQy d lekIr gku l dkjk budkj çdVr% dkb cpko çrhr ugh gkrk gA oknh ij fl) dju dh ftEenkjh dk Hkkj Mkyu dk ykHk iku d fy, dN Hkh] tk vfèklHkk0; g] dk vfHky[k ij ykuk gh gkxkA bl mièkkj.kk dk vfl) dju d fy, çfroknh dk vfHky[k ij ,l rF;k vkj ifjfLFkfr;k dk ykuk gkxk ftu ij fopkj fd, tku ij U;k;ky; ;k rk fo'okl dj ldrk g fd çfrQy dk vfLrRo ugh Fkk vFkok bldh vfLrRoghurk bruh vfèklHkk0; Fkh fd dkb food'khy 0;fDr ekey dh ifjfLFkfr;k d vèkhu bl vfHkopu ij ÑR; djxk fd bldk vfLrRo ugh FkkA***

> ** * * * * *."* *(tkj fn;k x;k)*

13. कृष्ण जर्नादन भट्ट बनाम दतात्रेय जी॰ हेगड़े, 2008 (4) SCC 54, में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुन: पूर्वोक्त निर्णय पर विश्वास किया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> "34. *bld vfrfjDr] tcfd vfHk;ktu dk leLr ;fDr;Dr lng d ij vfHk;Dr dk nk"kfl) djuk gkxk] vfHk;Dr dh vkj l fdlh cpko dk fl) dju d fy, çek.k dk ekud ^vfèklHkkO;rkvk dh cgyrk* gA vfèklHkkO;rkvk dh cgyrk dk fu"d"k u doy i{kk }kjk vfHky[k ij yk, x, lkefx;k l cfYd ifjfLFkfr;k ftu ij og fo'okl djrk g dk fufn"V djd fudkyk tk ldrk gA***
>
> * * * * * *."

रंगप्पा बनाम श्री मोहन, 2010 (3) JCR 16 (SC), में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निर्णयों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है।

14. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी परिवादी अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा कि उसके विधिक कर्ज को निपटाने के लिए अभियुक्त द्वारा उसे कभी कोई चेक दिया गया था, बल्कि प्रत्यर्थी अभियुक्त मामला बनाने में सक्षम हुआ है कि उसके द्वारा कॉम्बैट ड्रग्स लिमिटेड को प्रतिभूति के रूप में ब्लैंक चेक दिया गया था, जो किसी प्रकार से परिवादी के हाथ में आ गया। तद्नुसार, अवर न्यायालय द्वारा सही प्रकार से अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया था। आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

15. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

राज कुमार ओराँव एवं एक अन्य (964 में)

बुधु ओराँव (996 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal Nos. 964 with 996 of 2010. Decided on 7th December, 2011.

सत्र विचरण सं॰ 87 वर्ष 2008 (दांडिक अपील सं॰ 964 वर्ष 2010) और सत्र विचारण सं॰ 13 वर्ष 2009 (दांडिक अपील सं॰ 996 वर्ष 2010) में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 8.9.2010 के दोषसिद्धि के निर्णय (दोनों मामलों में) एवं दंडादेश (दोनों मामलों में) के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास–अभियोजन द्वारा अभिकथित घटना के तरीके और मृतक के शरीर पर पायी गयी उपहतियों में महत्वपूर्ण विरोधाभास–अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया जिसने अपीलार्थीगण के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाला–प्राथमिकी दर्ज किए जाने के समय के संबंध में विसंगति–अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देते हुए आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया गया। (पैराएँ 8 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s S.K. Murari, Rajan Raj, Rohit, For the Appellant; M/s D.K. Chakraverty, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.—ये दोनों अपीलें एक ही प्राथमिकी से उद्भूत होती है। उन्हें साथ साथ सुना जा रहा है और एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. दांडिक अपील सं॰ 996 वर्ष 2010 सत्र विचारण सं॰ 13 वर्ष 2009 में भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए और कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 8 सितंबर, 2010 के निर्णय से उद्भूत होती है।

3. दांडिक अपील सं॰ 964 वर्ष 2010 सत्र विचारण सं॰ 87 वर्ष 2008 में अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 8.9.2010 के निर्णय से उद्भूत होती है।

4. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सूचक अ॰ सा॰ 6 ने दिनांक 12.8.2007 को सायं 4.30 बजे पुलिस के समक्ष इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज कराया कि दोपहर लगभग 1.30 बजे वह अपने ससुर बीरबेर भगत (मृतक), सास बुदो देवी (मृतक) और अ॰ सा॰ 5 महेन्द्र ओराँव (साढ़ू) के साथ एक अन्य गाँव की ओर जा रहा था। रास्ते में, जितेन्द्र ओरावँ (जिसका विचारण पृथक रूप से किया गया) और अपीलार्थी मछिन्दर ओराँव झाड़ियों में से अचानक प्रकट हुए और बीरबेर भगत को खींचकर झाड़ी में ले गए और उसकी गर्दन दबाया। अपीलार्थी मछिन्दर ओराँव उसका पैर दाबे हुए था। इस पर, बुदो देवी ने अपने पति को बचाने का प्रयास किया, जिस पर अपीलार्थी राजकुमार ओराँव और अपीलार्थी बुधु ओराँव उसे झाड़ियों में ले गए और उसका गला दबाकर उसकी हत्या कर दी और पत्थर से उपहतियों को कारित किया। अंत में, प्राथमिकी में अभिकथित किया गया है कि भूमि विवाद के कारण उक्त घटना हुई थी।

5. दोनों मामलों में अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मुरारी ने निवेदन किया कि प्राथमिकी में अभिकथित घटना के तरीके और चिकित्सीय साक्ष्य सहित साक्ष्यों में महत्वपूर्ण विरोधाभास है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि सूचक के मुताबिक उसने दिनांक 13.8.2007 को अपना फर्दबयान दिया था, जबकि प्राथमिकी दिनांक 12.8.2007 को दर्ज की गयी थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि मृत्यु के बाद बीता समय, जैसा डॉक्टर द्वारा उल्लिखित किया गया है, प्राथमिकी में उल्लिखित समय के साथ मेल नहीं खाता है। उन्होंने अंत में निवेदन किया कि इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है जिसने अपीलार्थीगण के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

7. प्राथमिकी में अभिकथित किया गया था कि अपीलार्थी मछिन्दर ओराँव और किसी जितेन्द्र ओराँव ने मृतक बीरबेर भगत को झाड़ियों में खींच लिया और उसका गला दबाया जबकि मछिन्दर ओराँव उसका पैर दाबे रहा। महेन्द्र ओराँव, सूचक का साढ़ू और चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित, ने अपने साक्ष्य में अभिसाक्ष्य दिया कि पहले जितेन्द्र ओराँव और तब मछिन्दर ओराँव झाड़ी से बाहर आए और तब जितेन्द्र ओराँव ने बीरबेर भगत की गर्दन पकड़ कर उसको झाड़ी में खींचा और उसका गला दबाया जबकि मछिन्दर ओराँव उसका पैर दाबे रहा। प्राथमिकी में मृतक बुदो देवी के संबंध में कहा गया था कि अपीलार्थी राजकुमार ओराँव और बुधु ओराँव उसे झाड़ी में ले गए और गला दबाकर उसकी हत्या कर दी और पत्थर से उपहतियाँ कारित की। किंतु महेन्द्र ओराँव ने अपने साक्ष्य में कथन किया कि मृतक बुदो देवी को राजकुमार ओराँव और बुधु ओराँव द्वारा झाड़ी में ले जाया गया था और तब पत्थरों का प्रहार करके उसकी हत्या कर दी गयी थी।

सूचक राजू ओराँव, जो दूसरा चश्मदीद गवाह है, ने कथन किया कि महेन्द्र और जितेन्द्र झाड़ी से बाहर आए। जितेन्द्र ने बीरबेर भगत को झाड़ी में खींच लिया और उसका गला दबाया, जबकि महेन्द्र उसका

पैर पकड़े हुए था। जब बुदो देवी उसे बचाने गयी, राजकुमार ओराँव और बुधु ओराँव झाड़ी से बाहर आए और उसे झाड़ी में ले जाकर पत्थरों से उस पर प्रहार करके और उसका गला दबाकर उसकी हत्या कर दी।

8. दूसरी ओर, डॉक्टर ने बायें कान के नीचे 2' x 2' की अस्थि तक गहरी चाकू से की गयी उपहति को और मृतक बीरबेर भगत के अग्रमस्तक के बायें हिस्से पर दबी हुई उपहति को पाया। चीर-फाड़ करने पर, खोपड़ी फ्रैक्चर पायी गयी थी। डॉक्टर के अनुसार, मृत्यु के समय से बीता समय 24-36 घंटे के भीतर था। उन्होंने आगे मत दिया कि मृत्यु आघात और हेमरेज के कारण हुई थी, जो तेजधार और कड़े वस्तु द्वारा कारित उक्त उपहतियों के परिणामस्वरुप थी।

मृतक बुदो देवी के मृत शरीर पर डॉक्टर ने पूरी गर्दन के इर्द गिर्द खरोंच और गर्दन से बहता खून पाया। खोपड़ी के चीर-फाड़ पर उन्होंने टेम्पोरल हड्डी के बायें हिस्से पर फ्रैक्चर, ब्रेन टिशु का लेशीरेशन आदि पाया। उनके अनुसार, मृत्यु से बीता समय 24-36 घंटे के भीतर था। उन्होंने मत दिया कि मृत्यु कड़े भोथरे वस्तु द्वारा कारित उक्त उपहतियों और गला दबाए जाने के परिणामस्वरुप हुए आघात और हेमरेज के कारण हुई थी और यह पत्थर से खोपड़ी चूर-चूर कर दिए जाने से हो सकता है।

9. इस प्रकार, अभियोजन द्वारा अभिकथित घटना के तरीके और मृतक बीरबेर भगत के शरीर पर पायी गयी उपहतियों में महत्वपूर्ण विरोधाभास है। इसके अतिरिक्त, अभिकथित किया गया था कि प्राथमिकी दिनांक 12.8.2007 को दर्ज की गयी थी, जबकि साक्ष्य में सूचक ने कथन किया कि यह दिनांक 13.8.2007 को दर्ज की गयी थी। अभिकथित मृत्यु का समय भी चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है जिसने अपीलार्थीगण के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। वह घटना के तरीके और समय में उक्त विरोधाभासों को स्पष्ट करने में सक्षम थे।

10. अत: हम अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देने के इच्छुक हैं। तद्नुसार, इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है और आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण अर्थात् राजकुमार ओराँव और मछिन्दर ओराँव (दांडिक अपील सं॰ 964 वर्ष 2010 में) और बुधु ओराँव (दांडिक अपील सं॰ 996 वर्ष 2010 में) को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है।

किंतु, यह निर्णय जितेन्द्र ओराँव के विचारण में पक्षों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

लक्ष्मण प्रसाद

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (S.J.) No. 133 of 2003. Decided on 25th November, 2011.

विशेष केस सं॰ 6 वर्ष 1999 में, विशेष न्यायाधीष, निगरानी-सह-प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 20.12.2002 के दंडादेश के विरुद्ध।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 7, 13(1)(d) एवं 13(2)—प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अधीन मंजूर कर्ज को पाने के लिए रिश्वत की मांग–परिवादी ने न्यायालय में अपीलार्थी को नहीं पहचाना–अभिग्रहण गवाहों ने अपीलार्थी के कब्जा से करेंसी की बरामदगी का समर्थन नहीं किया–अधिकारियों ने संगत बयान नहीं दिया है कि किस प्रकार ट्रैप संचालित किया गया था और वे अभियुक्त की पहचान करने में विफल रहे–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–M/s B.S. Lal, For the Appellant; A.P.P., For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील विशेष केस सं॰ 6 वर्ष 1999 (चास पी॰ एस॰ केस सं॰ 9 वर्ष 1999) में विशेष न्यायाधीश, निगरानी–सह–प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 20.12.2002 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा एकमात्र अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराओं 7 और 13 (1)(d) एवं 13(2) के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और दोषसिद्ध किया गया है और तद्नुसार दिनांक 17.1.1999 से अभिरक्षा में अपीलार्थी द्वारा भुगती गयी अवधि के लिए दंडादेशित किया गया है। उस पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7 और 13(1)(d) के अधीन प्रत्येक को 1,000/- रुपयों का जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में दो माह का अतिरिक्त कारावास अधिरोपित किया गया है।

2. तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰, चास, बासुदेव दास द्वारा दर्ज लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्त लक्ष्मण प्रसाद के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7 और 13 (1)(d) के अधीन चास पी॰ एस॰ केस सं॰ 9 वर्ष 1999 दर्ज किया गया था। लिखित रिपोर्ट में तथ्य प्रकट करता है कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अधीन कर्ज देने के लिए साक्षात्कार के क्रम में आवेदकों में से एक अर्थात् संजय कुमार सिंह ने परिवाद किया था कि कर्ज मंजूर करवाने के लिए और बोर्ड के समक्ष उम्मीदवार को प्रस्तुत करने के लिए भी धन मांग रहे हैं। संजय कुमार सिंह से लिखित परिवाद प्राप्त करने के बाद तत्कालीन डी॰ डी॰ सी॰ (अ॰ सा॰ 10) ने तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ (अ॰ सा॰ 11) को सूचित किया। तत्पश्चात्, उन नोटों जिन्हें अभियुक्त को दिए जाने की संभावना थी, पर एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा हस्ताक्षर किया गया था और इनको परिवादी संजय कुमार सिंह को इस निर्देश के साथ सौंपा गया था कि संबंधित व्यक्ति द्वारा मांगे जाने पर उसे इन नोटों को सौंप दिया जाए। तद्नुसार, छापा मारा गया था और लक्ष्मण प्रसाद (अपीलार्थी) जो तब डी॰ आई॰ सी॰, धनबाद में चपरासी के रूप में पदस्थापित था, को गिरफ्तार किया गया था।

3. एस॰ डी॰ ओ॰, चास द्वारा हस्ताक्षरित 3,500/- रुपयों के पूर्वोक्त नोटों को अपीलार्थी के कब्जा से बरामद किया गया था। उक्त नोटों के अतिरिक्त, 2,300/- रुपयों की राशि भी बरामद की गयी थी। अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी और एस॰ डी॰ ओ॰ ने लिखित रिपोर्ट दर्ज किया और अपीलार्थी को कारा अभिरक्षा में भेज दिया गया था। अन्वेषण तत्कालीन एस॰ डी॰ पी॰ ओ॰, चास नागेन्द्र प्रसाद सिंह (अ॰ सा॰ 13) को सौंपा गया था जिन्होंने अन्वेषण पूरा किया और अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल किया। तद्नुसार, अपीलार्थी का विचारण किया गया था और अभियोजन ने आरोप सिद्ध करने के लिए कुल 13 गवाहों का परीक्षण किया।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया और निवेदन किया कि आक्षेपित निर्णय अत्यन्त गलत और साक्ष्य के गलत अधिमूल्यन पर आधारित है और विधिक पहलू पर विचार किए बिना है। उन्होंने इंगित किया कि परिवादी संजय कुमार सिंह, जिसके परिवाद पर, छापामार दस्ता गठित किया गया था और अभिकथित रूप से अपीलार्थी को

ट्रैप किया गया था, ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और पक्षद्रोही हो गया है। अपने अभिसाक्ष्य में भी, उसने अपीलार्थी को नामित नहीं किया है और न ही उसके विरुद्ध कोई अभिकथन किया है। अखिलेश कुमार सिंह (अ॰ सा॰ 2), जो आर्थिक अन्वेषक, धनबाद के एक अनुश्रुत गवाह है और उसके बयान के अनुसार, उसने सुना था कि लक्ष्मण प्रसाद को उस धन के साथ गिरफ्तार किया गया था जो उसने अवैध परितोषण के रूप में प्राप्त किया था। ब्रजेश कुमार सिंह (अ॰ सा॰ 3) और संजय कुमार सिंह (अ॰ सा॰ 4) जो अभिग्रहण गवाह हैं, ने भी अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने कहा है कि उन्होंने सादे कागज पर हस्ताक्षर किया था और उनकी उपस्थिति में अपीलार्थी के कब्जा से कुछ भी बरामद नहीं किया गया था। बिनोद कुमार सिन्हा, उद्योग विस्तारण अधिकारी, चास ने भी अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और उसे भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है। उत्पल कुमार राय (अ॰ सा॰ 6), जो भी बोर्ड का सदस्य था और तब बैंक ऑफ इंडिया में उप-प्रबंधक (क्रेडिट) के रूप में पदस्थापित था, अनुश्रुत गवाह है, ने कहा है कि साक्षात्कार समाप्त होने के बाद उसे पता चल सका था कि रिश्वत ले रहे एक व्यक्ति को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था। अमरजीत प्रसाद (अ॰ सा॰ 7) साक्षात्कार बोर्ड का एक अन्य सदस्य था और उसने भी उन तथ्यों का समर्थन किया है जिन्हें अ॰ सा॰ 6 द्वारा प्रकट किया गया था। कामता प्रसाद सिंह (अ॰ सा॰ 9) तत्कालीन अध्यक्ष, डी॰ आई॰ सी॰, धनबाद के थे और उनके बयान के अनुसार साक्षात्कार दोपहर लगभग 3.30 बजे समाप्त हो गया था। जबकि वे दस्तावेजों को संग्रहित कर रहे थे, उन्होंने बाहर कुछ हल्ला सुना कि डी॰ आई॰ सी॰, धनबाद के चपरासी लक्ष्मण प्रसाद को तत्कालीन डी॰ डी॰ सी॰ और एस॰ डी॰ ओ॰, बोकारो द्वारा गिरफ्तार किया गया था और पुलिस उसे ले गयी थी। उन्हें मालूम हुआ कि लक्ष्मण प्रसाद की जेब से धन बरामद किया गया था। इस गवाह ने इस तथ्य को संपुष्ट किया कि लक्ष्मण प्रसाद (अपीलार्थी) डी॰ आई॰ सी॰, धनबाद के कार्यालय में पदस्थापित चपरासी था और वह उम्मीदवारों के नामों को बारी-बारी से बुलाने के लिए घटनास्थल पर उपस्थित था। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 3 में वह कहता है कि उसने नहीं देखा था कि किस प्रकार लक्ष्मण प्रसाद को गिरफ्तार किया गया था।

शशि भूषण वर्मा (अ॰ सा॰ 10) घटना की तिथि पर डी॰ डी॰ सी॰ के रूप में पदस्थापित थे और उन्हीं के समक्ष संजय कुमार सिंह ने लिखित परिवाद दाखिल किया था जिसे आवश्यक कार्रवाई के लिए एस॰ डी॰ ओ॰, चास के पास भेजा गया था। इस गवाह ने इस तथ्य का समर्थन किया था कि एक व्यक्ति गिरफ्तार किया गया था जिसके कब्जा से एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा हस्ताक्षरित 3,500/- रुपयों के करेंसी को बरामद किया गया था। किंतु न्यायालय ने अपना अभिसाक्ष्य दर्ज किए जाने के समय पर वह अभियुक्त की पहचान के बारे में अत्यंत निश्चित नहीं था। आगे इंगित किया गया है कि एस॰ डी॰ ओ॰, बासुदेव दास, जिन्होंने ट्रैप बिछाया था और अपीलार्थी को दिए जाने वाले नोटों पर हस्ताक्षर किया था, ने अपीलार्थी के विरुद्ध संगत बयान नहीं दिया है। उसने न्यायालय में अभियुक्त को नहीं पहचाना था और इसलिए अ॰ सा॰ 11 का साक्ष्य किसी काम का नहीं है।

भगवान किस्कू, पुलिस इंस्पेक्टर (अ॰ सा॰ 12) घटना की तिथि पर माराफरी पी॰ एस॰ के प्रभारी-अधिकारी के रूप में पदस्थापित था। एस॰ डी॰ ओ॰, चास से अनुदेश पाने के बाद, वह घटनास्थल पर आया था जहाँ प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अंतर्गत कर्ज देने के लिए साक्षात्कार चल रहा था। छापामार दस्ते का गठन किया गया था और एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा करेंसी पर हस्ताक्षर किया गया था जिसे परिवादी को इस निर्देश के साथ सौंपा गया था कि वह इन्हें उस व्यक्ति को देगा जिसने धन मांगा था। तत्पश्चात अभियुक्त लक्ष्मण प्रसाद को गिरफ्तार किया गया था जिसके कब्जा से एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा हस्ताक्षरित 3,500/- रुपयों की करेंसी को बरामद किया गया था। 3,500/- रुपयों की उक्त राशि के अतिरिक्त 2,300/- रुपयों की राशि भी लक्ष्मण प्रसाद (अपीलार्थी) के कब्जा से बरामद की गयी थी। ट्रैप

किए गए व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया था, अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी, प्राथमिकी लिखी गयी थी और इस मामले को दर्ज किया गया था। उसने अभियुक्त को न्यायालय में पहचानने का दावा भी किया।

नागेन्द्र प्रसाद सिंह, एस॰ डी॰ पी॰ ओ॰, चास ने अन्वेषण संचालित किया था और लक्ष्मण प्रसाद के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया था। यह इंगित किया गया था कि पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 17 (C) के अधीन अंतर्विष्ट आज्ञापक प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया था। इंस्पेक्टर (अ॰ सा॰ 12) को अपीलार्थी को गिरफ्तार करने का प्राधिकार नहीं था और डी॰ एस॰ पी॰, जिसने अन्वेषण संचालित किया था, अपीलार्थी की गिरफ्तारी के समय घटनास्थल पर उपस्थित नहीं था।

5. प्रत्यर्थी राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय का समर्थन किया और निवेदन किया कि यह ट्रैप का मामला है और अपीलार्थी को एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा हस्ताक्षरित करेंसी के साथ गिरफ्तार किया गया था जिसे परिवादी से अपीलार्थी द्वारा प्राप्त किया गया था।

6. मैंने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है। केवल अ॰ सा॰ 12 भगवान किस्कू द्वारा अपीलार्थी की पहचान को सिद्ध किया गया है। व्यक्ति, जिसने परिवाद किया था, ने अपीलार्थी को न्यायालय में नहीं पहचाना था, बल्कि, उसने उसके विरुद्ध अभिकथन भी नहीं किया था। अभिग्रहण गवाहों ने भी करेंसी की बरामदगी का समर्थन नहीं किया है जिसे अभिकथित रूप से अपीलार्थी के कब्जा से बरामद किया गया था। एस॰ डी॰ ओ॰ और डी॰ डी॰ सी॰, जिन्होंने ट्रैप बिछाया था, ने भी संगत बयान नहीं दिया है कि किस प्रकार ट्रैप को संचालित किया गया था और वे अभियुक्त को पहचानने में विफल रहे हैं। साक्षात्कार बोर्ड के सदस्यों ने स्पष्टत: कथन किया कि साक्षात्कार दोपहर 3.30 बजे समाप्त हो गया था और तत्पश्चात् उन्होंने किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के बारे में सुना जिसने अवैध पारितोषण प्राप्त किया था। उन्होंने इस तथ्य का समर्थन नहीं किया है कि साक्षात्कार के लिए उपस्थित उम्मीदवारों में से किसी ने उनके समक्ष कोई परिवाद नहीं किया था कि अपीलार्थी ने बारी के बिना ही उम्मीदवारों को बुलाने के लिए धन मांगा था। अभियोजन का यह स्वीकृत मामला है कि सूचक ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और उसने यह नहीं कहा था कि एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा हस्ताक्षरित करेंसी को अपीलार्थी को देने के लिए कभी भी सौंपा गया था। यह भी स्पष्ट है कि प्रभारी-अधिकारी भगवान किस्कू (अ॰ सा॰ 12) ने अन्वेषण का संचालन किया था और गिरफ्तारी और जब्ती के संबंध में सब कुछ किया था यद्यपि वह पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 17 (C) के अधीन प्राधिकृत नहीं था।

7. अत:, इन समस्त पहलूओं पर विचार करते हुए कि सूचक ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और पक्षद्रोही हो गया है, अभिग्रहण गवाहों ने अपीलार्थी को ट्रैप में फँसाने के लिए दिए गए करेंसी की बरामदगी का समर्थन नहीं किया है, तत्कालीन डी॰ डी॰ सी॰ जिनके पास परिवाद किया गया था और तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ जिन्होंने ट्रैप बिछाया था ने संगत बयान नहीं दिया है, साक्षात्कार बोर्ड के सदस्यों ने घटना का अनुश्रुत छवि प्रदान किया है और पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 17(C) के आज्ञापक प्रावधान की प्रयोज्यता की अनुपस्थिति दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को संपोषित करना नहीं सुझाते हैं और तद्नुसार, मैं इस अपील में गुणागुण पाता हूँ और इसे अनुज्ञात करता हूँ। विशेष केस सं॰ 6 वर्ष 1999 (चास पी॰ एस॰ केस सं॰ 9 वर्ष 1999) में विशेष न्यायाधीश, निगरानी-सह-प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 20.12.2002 के दंडादेश के आदेश को अपास्त किया जाता है और अपीलार्थी को निर्मुक्त किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

मेसस भारत कोकिंग कोल लि॰, धनबाद के सुदामडीह शाफ्ट माईन्स के प्रबंध के सम्बन्ध में नियोक्ता

cuke

उनके कर्मकार, यूनाईटेड कोल वर्कर्स यूनियन, धनबाद के प्रतिनिधित्व में

L.P.A. No. 457 of 2003. Decided on 8th December, 2011.

लेटर्स पेटेंट के खंड-10 के अधीन एक अपील के मामले में।

श्रम एवं औद्योगिक विधि–बकाया पारिश्रमिक–बर्खास्तगी–अधिकरण ने 50% बकाया पारिश्रमिक के साथ सेवा में पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया–प्रत्यर्थी को पहले ही चोरी के आरोप के लिए दांडिक न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जा चुका है–प्रत्यर्थी को संपूर्ण बकाया पारिश्रमिक के लिए स्वतः दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है–प्रत्यर्थी केवल 50% बकाया पारिश्रमिक पाने का हकदार–अपील अंशतः अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s. Anand Sen, Ranjan Kumar, K. Agrawal Kumar Mehta, For the Appellant; Mr. S.N. Das, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची-अपीलार्थी को दिनांक 11/12 अक्टूबर, 1987 के प्रभाव से सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। केंद्र सरकार औद्योगिक अधिकरण सं॰ 1, धनबाद ने निर्देश केस सं॰ 154 वर्ष 1989 में अभिनिर्धारित किया कि कर्मकार नारायण गोसाई को बर्खास्त करने की प्रबंधन की कार्रवाई न्यायोचित नहीं है और उक्त कर्मचारी को पूर्ण पिछली मजदूरी और सेवा में निरंतरता के साथ बर्खास्तगी के दिन से पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया। प्रबंधन ने रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1220 वर्ष 1993 (R) दाखिल किया जिसे दिनांक 2 जून, 2003 के आक्षेपित निर्णय के तहत खारिज कर दिया गया है। अतः यह लेटर्स पेटेन्ट अपील की गयी है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आरंभ में कथन किया कि न केवल औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 17B के अधीन प्रत्यर्थी-कर्मकार को नियमित रूप से मजदूरी का भुगतान किया जा रहा है अपितु प्रबंधन ने अधिनियम की धारा 17B के अधीन मजदूरी का भुगतान करने के बजाय काम भी लेने का निर्णय किया। अतः कर्मकार अब सेवा में है। किंतु, जहाँ तक पिछली मजदूरी का संबंध है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, रिट याचिका में, 50% पिछली मजदूरी का भुगतान करने का अंतरिम आदेश दिनांक 8.3.1994 को पारित किया गया था और शेष 50% पिछली मजदूरी का भुगतान रोका गया है। उक्त की दृष्टि में, 50% बकाया पारिश्रमिक का भुगतान प्रत्यर्थी कर्मकार को किया गया है।

5. तथ्यों को और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर पूरी तरह विचार करने के बाद, हमारा सुविचारित मत है कि वर्ष 1987 में 2,500/- रुपया मूल्य के तांबा के 35 किलोग्राम तार की चोरी के मामले में, जिसके लिए विभागीय जाँच भी संचालित की गयी थी, उसी आरोप के लिए प्रत्यर्थी कर्मकार को पहले ही दांडिक विचारण में न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है। स्वीकृत रूप से, दांडिक मामले में आरोप चोरी का था और विभागीय जाँच में भी अभिकथन चोरी के थे।

6. उस तथ्यपरक स्थिति में, यदि अधिकरण और विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी कर्मकार की बर्खास्तगी का पोषण नहीं किया जा सकता है, तब उन्होंने कोई गलती नहीं

की है। कुछ मामलों में भी, दांडिक मामले का परिणाम दोषमुक्ति में होने पर भी विभागीय कार्यवाही जारी रह सकती है, किंतु यह मामले में विरचित आरोप और विभागीय कार्यवाही में किए गए अभिकथन और साथ-साथ साक्ष्य की भिन्नता, जो हो सकती है, पर निर्भर करता है।

7. चाहे जो भी हो, हमारा सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी कर्मकार, जिसे वर्ष 1987 के प्रभाव से सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, को संपूर्ण पिछली मजदूरी के लिए स्वत: दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और इसलिए प्रत्यर्थी कर्मकार अब केवल पिछली मजदूरी के 50% का हकदार है जिसे वह रिट अधिकारिता में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अधीन पा सकता था (क्योंकि प्रासंगिक समय पर, रिट याचिकाओं को खंड पीठ द्वारा सुना गया था और बाद में इसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चित किया गया था।

8. उसकी दृष्टि में, उक्त परिवर्तन के साथ यह लेटर्स पेटेन्ट अपील ऊपर उल्लिखित सीमा तक अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

देवेन्द्र नाथ गिरी

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. Revision No. 83 of 2000(R). Decided on 15th December, 2011.

न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, चास, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 29.9.1997 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अभिपुष्ट करते हुए दांडिक अपील सं॰ 75 वर्ष 1997 में तत्कालीन द्वितीय सत्र न्यायाधीश, चास, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 21.12.1999 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 379/411—चोरी–चुरायी गयी वस्तुओं को पास रखना–दोषसिद्धि–अच्छे आचरण के लिए परिवीक्षा पर निर्मुक्ति-सूचक का परिसाक्ष्य अन्य गवाहों के साक्ष्य द्वारा संपुष्ट–चारदीवारी से बाहर तांबा प्लेट फेंकते हुए याची को गिरफ्तार किया गया था–आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं–पुनरीक्षण आवेदन खारिज।

(पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–None, For the Petitioner; Mrs. Niki Sinha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह पुनरीक्षण आवेदन दांडिक अपील सं॰ 75 वर्ष 1997 में तत्कालीन द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, चास, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 21.12.1999 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उस निर्णय जिसके अधीन न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 379/411 के अधीन याची को दोषसिद्ध किया गया था, को अभिपुष्ट किया गया था किंतु याची को दो वर्षों की अवधि के लिए शांति और अच्छा आचरण बनाए रखने और दो समान राशि की प्रतिभूतियों के साथ 5,000/- रुपयों का बंध निष्पादित करने का निर्देश याची को देते हुए दंडादेश उपांतरित कर दिया गया था, जबकि न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, चास, बोकारो ने याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379/411 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाने पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 411 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर करावास भुगतने का दंडादेश दिया किंतु भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379 के अधीन कोई पृथक दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया गया था।

2. अभियोजन का मामला यह है कि जब सी॰ आई॰ एस॰ एफ॰ कांस्टेबल नन्हू राम (अ॰ सा॰ 1) कांस्टेबलों कृष्ण पाल सिंह (अ॰ सा॰ 2) जगदीश राज और पी॰ स्वामीनाथन (अ॰ सा॰ 4) के साथ बोकारो इस्पात संयंत्र में रात की गश्ती लगा रहे थे, उन्होंने एक व्यक्ति को चारदीवारी के बाहर तांबा प्लेट फेंकते देखा। उक्त व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया था जिसने अपना नाम याची-देवेन्द्र नाथ गिरी बताया और तांबा प्लेट बरामद किए जाने पर अभिग्रहण सूची (प्रदर्श 1) के अधीन जब्त किया गया था। इस पर, बंशीधर पाण्डेय (अ॰ सा॰ 3) से संपत्ति प्रमाण पत्र लिया गया था और तत्पश्चात सूचक नन्हू राम ने जब्त सामग्रियों के साथ दोषी को मरफारी पुलिस थाना के समक्ष प्रस्तुत किया जहाँ भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379/411 के अधीन प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

3. विचारण के क्रम में, अभियोजन ने सूचक नन्हू राम का अ॰ सा॰ 1 के रूप में परीक्षण किया जिसने मामले, जैसा प्राथमिकी में बनाया गया है, का समर्थन यह परिसाक्ष्य देते हुए किया कि जब उसने अन्य कांस्टेबलों कृष्ण पाल सिंह (अ॰ सा॰ 2) जगदीश राज और पी॰ स्वामीनाथन (अ॰ सा॰ 4) ने याची को गिरफ्तार किया जब वह चारदीवारी के बाहर तांबा प्लेट फेंक रहा था। नन्हू राम का परिसाक्ष्य अन्य गवाहों अर्थात् कृष्ण पाल सिंह (अ॰ सा॰ 2) और पी॰ स्वामीनाथन (अ॰ सा॰ 4) से संपुष्टि पाता है। दोषी पाए जाने पर याची को दोषसिद्ध किया गया था और पूर्वोक्तानुसार दंडादेश दिया गया था।

4. किंतु, अपील दाखिल किए जाने पर दोषसिद्धि का निर्णय अभिपुष्ट किया गया था जबकि दंडादेश का आदेश ऊपर उपदर्शित सीमा तक उपांतरित किया गया था।

5. अभिलेखों का परिशीलन करने पर, मैं विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

6. अतः, मैं इस पुनरीक्षण आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çkr dekj] U;k;efr

मीना कुमारी (5659 में)

जुबैर अहमद (5730 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (S) Nos. 5659 with 5730 of 2011. Decided on 13th December, 2011.

बिहार उपभोक्ता संरक्षण नियमावली, 1987—नियम 3(5) (e)—उपभोक्ता फोरम के सदस्य के पद पर की गयी नियुक्ति का रद्दकरण–सदस्य की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा रद्द की जा सकती है यदि वह सदस्य के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करता है और पद पर उसका बने रहना लोकहित के प्रति प्रतिकूल है–किंतु, ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल राज्य सरकार द्वारा जाँच करने के बाद ही किया जा सकता है–वर्तमान में, राज्य सरकार द्वारा कोई जाँच संचालित नहीं की गयी थी–याचीगण की नियुक्ति का रद्दकरण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करता है–आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में नास्ति हैं–समस्त पारिणामिक लाभों के साथ याचीगण को पुनर्बहाल किया जाय। (पैराएँ 9 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, Mr. Rohit Roy, For the Petitioner (in 5659, 5730); Mr. Rajiv Ranjan, For the State (in both cases).

आदेश

आइ॰ ए॰ सं॰ 3653 वर्ष 2011 (डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5730 वर्ष 2011 में)

यह अंतर्वर्ती आवेदन दिनांक 2.12.2011 के आदेश को वापस लिए जाने के लिए दाखिल किया गया है। आई॰ ए॰ आवेदन में याची ने प्रतिशपथ पत्र दाखिल करने में हुए विलंब का स्पष्टीकरण दिया है। तद्नुसार, प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने प्रार्थना किया कि दिनांक 2.12.2011 के आदेश को वापस लिया जाय।

पूर्वोक्त अंतर्वर्ती आवेदन के प्रति कोई प्रत्युत्तर दाखिल नहीं किया गया।

2. अंतर्वर्ती आवेदन में दिए गए कारणों की दृष्टि में, दिनांक 2.12.2011 का आदेश एतद् द्वारा वापस लिया जाता है जहाँ तक यह व्यय के अधिनिर्णय से संबंधित है।

3. तद्नुसार आई॰ ए॰ सं॰ 3653 वर्ष 2011 (डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5730 वर्ष 2011) निपटायी जाती है।

W. P. (S) No. 5659 वर्ष 2011 तथा W.P. (S) No. 5730 वर्ष 2011

4. इन रिट आवेदनों में, याचीगण ने झारखंड राज्य द्वारा पारित आदेशों (डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5659 वर्ष 2011 में परिशिष्ट–1 और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5730 वर्ष 2011 में परिशिष्ट–6) को चुनौती दिया है, जिसके द्वारा उपभोक्ता संरक्षण फोरम, धनबाद के पुरुष सदस्य और स्त्री सदस्य के पद से याचीगण की नियुक्ति रद्द कर दी गयी थी।

5. यह निवेदन किया गया है कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 10(1) (A) में अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक चयन कमिटि की अनुशंसा पर राज्य सरकार द्वारा याचीगण को नियुक्त किया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि बिहार उपभोक्ता संरक्षण नियमावली, 1987, जिसे झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया था, के नियम 3 (5)(e) को विचार में लेते हुए याचीगण की नियुक्ति रद्द कर दी गयी थी। तब निवेदन किया गया है कि नियम 3(5) के परन्तुक के अनुसार, यदि राज्य सरकार नियम 3(5)(e) के अनुसार उपभोक्ता संरक्षण फोरम के सदस्य को हटाने का निर्णय करती है, राज्य सरकार को जाँच करना आज्ञापक है। निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में राज्य सरकार ने कोई जाँच नहीं किया जैसा पूर्वोक्त नियम में प्रावधानित है। अत: आक्षेपित आदेशों को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, राज्य सरकार के लिए उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री राजीव रंजन निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में याची जुबेर अहमद के विरुद्ध अभिकथनों को अध्यक्ष, राज्य उपभोक्ता आयोग द्वारा प्राप्त किया गया था जिन्होंने स्पष्टीकरण के लिए उसको नोटिस जारी किया। वह आगे निवेदन करते हैं कि उक्त नोटिस प्राप्त करने के बाद याची, जुबेर अहमद ने अपना उत्तर दाखिल किया और उक्त उत्तर पर विचार करने के बाद राज्य उपभोक्ता आयोग ने दोनों याचीगण की नियुक्ति के रद्दकरण की अनुशंसा की।

7. किंतु यह प्रतिशपथ पत्र में, यह कथन नहीं किया गया है कि याचीगण के विरुद्ध किए गए अभिकथनों की शुद्धता का निर्णय करने के लिए राज्य सरकार ने कोई जाँच संचालित किया था। अत:, यह प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने बिहार उपभोक्ता संरक्षण नियमावली, 1987 में विहित नियम का अनुसरण नहीं किया है।

8. विद्वान अपर महाधिवक्ता का प्रतिवाद कि राज्य सरकार ने राज्य उपभोक्ता आयोग के अध्यक्ष की अनुशंसा पर कार्रवाई किया है, भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि अध्यक्ष, राज्य उपभोक्ता आयोग को

जिला फोरम के सदस्य के विरुद्ध किए गए अभिकथनों के संबंध में कोई जाँच संचालित करने की शक्ति अधिनियम में अथवा नियमावली में नहीं है।

9. पूर्वोक्त विधिक अवस्था की दृष्टि में, राज्य उपभोक्ता आयोग के अध्यक्ष द्वारा की गयी अनुशंसा पूर्णतः अधिकारिताहीन है। इस संबंध में नियम 3(5)(e) स्पष्ट है जो कहता है कि राज्य सरकार द्वारा किसी सदस्य की नियुक्ति रद्द की जा सकती है यदि वह सदस्य के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करता है और पद पर उसका बने रहना लोकहित के प्रतिकूल है, किंतु ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल राज्य सरकार द्वारा जाँच करने के बाद ही किया जा सकता है।

10. वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से राज्य सरकार द्वारा कोई जाँच संचालित नहीं की गयी थी। अतः याचीगण की नियुक्ति का रद्दकरण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है। अतः, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में नास्ति हैं।

11. तद्नुसार, मैं इन दोनों रिट आवेदनों को अनुज्ञात करता हूँ और परिशिष्ट 1 में (डब्ल्यू० पी० एस० सं० 5659 वर्ष 2011) और परिशिष्ट-6 में (डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 5730 वर्ष 2011) में अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेशों को अभिखंडित करता हूँ। याचीगण को समस्त पारिणामिक लाभों के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया जाता है।

12. किंतु, मैं स्पष्ट करता हूँ कि यदि राज्य सरकार इच्छुक है, यह याचीगण के विरुद्ध किए गए अभिकथनों की जाँच कर सकती है और विधि के अनुरूप आदेश पारित कर सकती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

कुंज बिहारी अगरवाल उर्फ कुंज बिहारी प्रसाद

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य

Cr. WJC Nos. 35, 32 of 2000(R). Decided on 20th December, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धारा 7—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—गेहूँ की जब्ती–दांडिक अभियोजन–जब अभिग्रहण की तिथि पर गेहूँ के संबंध में स्वयं कोई नियंत्रण आदेश प्रवर्तित नहीं था, तो याचीगण के विरुद्ध अभिग्रहण और दांडिक अभियोजन पोषित नहीं किया जा सकता था–गेहूँ का अभिग्रहण और धारा 7 के अधीन दांडिक अभियोजन पूर्णतः अवैध है और आरंभ से शून्य है और अभिखंडित किए जाने योग्य है। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. S.L. Agrawal, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–ये दोनों रिट आवेदन एक ही प्राथमिकी से उद्भूत होते हैं और इसलिए इस एक ही आदेश द्वारा इन्हें निपटाया जा रहा है।

2. क्रि० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 32 वर्ष 2000-R में परिशिष्ट-2 में अंतर्विष्ट अभिग्रहण सूची के माध्यम से गोलमुरी पी० एस० केस सं० 207 वर्ष 1999, जी० आर० सं० 2171 वर्ष 1999 के तत्सम, के संबंध में इस याची के गोदाम से गेहूँ के 79 बोरों और रजिस्ट्रेशन सं० ओ० आर०-02-3188 वाले ट्रक से गेहूँ के 17 बोरों के अभिग्रहण को याची ने चुनौती दिया है। जबकि क्रि० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 35 वर्ष 2000-R

में उक्त याची ने उक्त अभिग्रहण के आधार पर ई॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन उसके विरुद्ध आरंभ किए गए दांडिक अभियोजन को चुनौती दिया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इन रिट आवेदनों में विधि का एक अत्यंत संक्षिप्त प्रश्न अंतर्ग्रस्त है अर्थात् अभिग्रहण की प्रासंगिक तिथि पर अर्थात् दिनांक 19.12.1999 को गेहूँ के संबंध में कोई नियंत्रण आदेश प्रवर्तित नहीं था। इस संबंध में याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान परिशिष्ट-8 की ओर आकृष्ट किया है जिसे क्रि॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 35 वर्ष 2000-R में दाखिल पूरक शपथ पत्र के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया है जो प्रश्नगत गेहूँ के संबंध में अधिहरण कार्यवाही में उपायुक्त, जमशेदपुर द्वारा अधिहरण मामला सं॰ 12 वर्ष 2000-01 में पारित दिनांक 23.2.2006 का आदेश है। उक्त आदेश में, अधिहरण कार्यवाही इस तथ्य की दृष्टि में छोड़ दी गयी थी कि अभिग्रहण की तिथि पर गेहूँ के संबंध में कोई नियंत्रण आदेश नहीं था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि संपूर्ण अभिग्रहण और ई॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन याची के विरुद्ध आरंभ किया गया दांडिक अभियोजन पूर्णत: अवैध और आरंभ से शून्य है और विधि की दृष्टि में इनको संपोषित नहीं किया जा सकता है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है, किंतु वे यह दर्शाने के लिए कुछ भी इंगित नहीं कर सके थे कि अभिग्रहण की प्रासंगिक तिथि पर गेहूँ के संबंध में कोई नियंत्रण आदेश प्रवर्तित नहीं था।

5. यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि जब अभिग्रहण की तिथि पर गेहूँ के संबंध में नियंत्रण आदेश स्वयं प्रवर्तित नहीं था, तो कोई अभिग्रहण और ई॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन दांडिक अभियोजन याची के विरुद्ध पोषित नहीं किया जा सकता था। तद्नुसार, गेहूँ का अभिग्रहण और ई॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन दांडिक अभियोजन पूर्णत: अवैध और आरंभ से शून्य है और अभिखंडित किए जाने योग्य है।

6. इस प्रकार, ये दोनों रिट आवेदन सफल होते हैं। याची का दांडिक अभियोजन, जिसे विशेष न्यायाधीश (ई॰ सी॰ अधिनियम) सह-प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित गोलमुरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 207 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 2171 वर्ष 1999 के तत्सम, में गेहूँ के अभिग्रहण के आधार पर आरंभ किया गया था, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। परिणामस्वरुप, उक्त मामले में गेहूँ का अभिग्रहण जैसा क्रि॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 32 वर्ष 2002-R में परिशिष्ट-2 में अंतर्विष्ट है, भी एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

तद्नुसार, इन दोनों रिट आवेदनों को एतद् द्वारा अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

भीम सेन साहू एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 6115 of 2005. Decided on 13th December, 2011.

बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1976—धारा 35—सेवा का नियमितिकरण—याचीगण को निम्न श्रेणी सहायकों के रूप में नियुक्त करने के लिए महाविद्यालय के प्राचार्य के पास प्राधिकार नहीं है—नियुक्ति की तिथि पर और उस तिथि पर भी जब

महाविद्यालय घटक बन गया, पद मंजूर नहीं थे जिनके विरुद्ध याचीगण को नियुक्त किया गया था–सेवा में याचीगण के नियमितीकरण के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश जारी करने का आधार नहीं है। (पैराएँ 4, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Ms. Nehala Sharmin, For the Petitioners; Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Respondents; Mr. Sunil Kumar Sinha, For the Intervenor.

आदेश

आइ॰ ए॰ सं॰ 705 वर्ष 2010

इस आइ॰ ए॰ में, मध्यक्षेपियों ने याचीगण की नियुक्ति को चुनौती दी है, जो मेरे अनुसार एक पृथक विवाद्यक है। अत:, यदि मध्यक्षेपी इच्छुक हैं, वे याचीगण की नियुक्ति को चुनौती देते हुए पृथक रिट आवेदन दाखिल कर सकते हैं। तद्नुसार, यह आइ॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6115 वर्ष 2005

2. यह आवेदन याचीगण की आरंभिक नियुक्ति की तिथि से उनकी सेवाओं को नियमित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देने का निर्देश जारी करने के लिए दाखिल की गयी है।

3. यह प्रतीत होता है कि याची सं॰ 1 को पुस्तकालय चपरासी के रूप में, याची सं॰ 2 को पुस्तकालय सहायक के रूप में, याची सं॰ 3, 6, 7, 8, 9, 10, 13 और 14 को निम्न श्रेणी सहायक के रूप में याची सं॰ 4 को चपरासी के रूप में, याची सं॰ 5 को स्टोर कीपर के रूप में और याची सं॰ 11 को पुस्तकालय सहायक के रूप में 1977 से 1980 के बीच मारवाड़ी महाविद्यालय, राँची के प्राचार्य द्वारा नियुक्त किया गया था। आगे यह प्रतीत होता है कि मारवाड़ी महाविद्यालय, राँची वर्ष 1980 में घटक महाविद्यालय बन गया।

4. प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 की ओर से प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया था। पूर्वोक्त प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ सं॰ 9 पर विनिर्दिष्टत: उल्लिखित किया गया था कि याची सं॰ 1 से 11 तक को महाविद्यालय के अधिग्रहण के पहले गैर-मंजूर पदों पर नियुक्त किया गया था, जबकि याची सं॰ 12 से 14 तक को मारवाड़ी महाविद्यालय, राँची के प्राचार्य द्वारा नियुक्त किया गया था। आगे कथन किया गया है कि बिहार राज्य महाविद्यालय अधिनियम की धारा 35 के अनुसार मंजूर पद की अनुपस्थिति में किसी को नियुक्त करने का प्राधिकार प्राचार्य को नहीं है। आगे कथन किया गया है कि महाविद्यालय के प्रशासन/शासी निकाय को नियुक्ति पर विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदन लेने की आवश्यकता है किंतु इसे नहीं लिया गया था। तद्नुसार, कथन किया गया है कि याचीगण उनकी नियुक्ति की आरंभिक तिथि से अथवा उस तिथि से जब महाविद्यालय घटक बन गया नियमित किए जाने के हकदार नहीं है क्योंकि उनकी आरंभिक नियुक्ति अवैध थी। किंतु, यह स्वीकार किया गया है याचीगण की सेवाएँ दिनांक 1.8.1993 के प्रभाव से नियमित किया गया था जब मंजूर पद उपलब्ध हो गया।

5. यह उल्लेखनीय है कि पूर्वोक्त प्रतिशपथ पत्र दाखिल किए जाने के बाद याचीगण ने दिनांक 26.8.2009 को पूरक शपथ पत्र दाखिल किया, किंतु उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त बयान को विवादित नहीं किया है। इस प्रकार, याचीगण यह भी स्वीकार करते हैं कि नियुक्ति की तिथि पर और उस तिथि पर भी जब महाविद्यालय घटक बन गया, कोई मंजूर पद नहीं था जिसके विरुद्ध याचीगण को नियुक्त किया गया था।

6. पूर्वोक्त तथ्यपरक स्थिति की दृष्टि में मैं पाता हूँ कि महाविद्यालय के प्राचार्य को याचीगण को नियुक्त करने का प्राधिकार नहीं है, अत: उनकी नियुक्तियाँ अवैध हैं। अत:, मैं याचीगण की सेवाओं के नियमितीकरण के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश जारी करने का कोई आधार नहीं पाता हूँ।

7. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि रिट आवेदन के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थीगण ने याची सं॰ 12 के मामले पर विचार किया और उसको अनुतोष दिया है, अतः, याचीगण को अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता दी जा सकती है। उक्त परिस्थितियों के अधीन, यदि याचीगण इच्छुक हैं, वे अपनी शिकायत के प्रतितोष के लिए प्रत्यर्थीगण के समक्ष अभ्यावेदन दाखिल कर सकते हैं। यदि ऐसा अभ्यावेदन दाखिल किया जाता है, प्रत्यर्थीगण विधि के अनुरूप इनको निपटा सकते हैं।

8. यहाँ ऊपर कथित कारणों से, मैं इस रिट आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

मनसा कर्मकार

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 141 of 2003. Decided on 16th December, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 758 वर्ष 1994 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ सं॰ 1 जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 23.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 324—घोर उपहति–दोषसिद्धि–हैंडपंप से पानी लाने के बिंदु पर झगड़ा–सूचक ने अभिकथित किया कि वह तीन उंगलियाँ खो बैठा–अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए डॉक्टर का परीक्षण बहुत जरूरी था–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 अथवा 341 के अधीन मामला सिद्ध नहीं किया गया–अन्वेषण के दौरान रक्त का निशान नहीं पाया गया–मेडिकल रिपोर्ट सिद्ध किए बिना अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता था–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किया गया। (पैराएँ 8, 9 एवं 10)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Das, Ms. Sunita Kumari, For the Appellants; Ms. Niki Sinha, For the State.

डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक अपील सत्र विचारण सं॰ 758 वर्ष 1994 (मानगो पी॰ एस॰ केस सं॰ 85/1994, जी॰ आर॰ सं॰ 689/1994 के तत्सम) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ 1 जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 23.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. सूचक बाबूराम गिरी के फर्दबयान से प्रकट होते तथ्य ये हैं कि उनके घर के निकट अवस्थित हैंड पंप से पानी भरने के बिंदु पर अपीलार्थी के परिवार और सूचक के बीच कुछ झगड़ा हुआ था। अभिकथित किया गया है कि सूचक हल्ला सुनने के बाद घटना स्थल पर पहुँचा जहाँ कालिया कर्मकार के उकसावे पर अपीलार्थी द्वारा तेज धार वाले हथियार से उस पर प्रहार किया गया था। सूचक ने अपने मस्तक और हाथ की उंगलियों पर उपहति झेली थी। सूचक का फर्दबयान दिनांक 19.4.1994 को सायं 7.30 बजे एन॰ एच॰ 33 पर दर्ज किया गया था।

3. फर्दबयान के आधार पर, मनसा कर्मकार और कालिया कर्मकार के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 323 और 324 के अपराध के लिए मानगो पी॰ एस॰ केस सं॰ 85/1994, जी॰ आर॰ सं॰ 689/1994 के तत्सम, दर्ज किया गया था।

अन्वेषण के समापन पर, दोनों अभियुक्तगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 323, 324, 326 और 307 के अधीन अपराधों के लिए विचारण का सामना करने के लिए आरोप पत्रित किया गया था। तद्नुसार, दोनों अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 326 और 307 के अधीन आरोपों को विरचित किया गया था और चूँकि उन्होंने निर्दोष होने का अभिवचन किया, उनका विचारण किया गया था।

4. अभियोजन ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर चार गवाहों का परीक्षण किया। विचारण के समापन पर, एक अभियुक्त कालिया कर्मकार को दोषमुक्त किया गया था जबकि अपीलार्थी मनसा कर्मकार उर्फ मंशा कर्मकार को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और पूर्वोक्तानुसार दंडादेशित किया गया था।

5. एकमात्र अपीलार्थी मनसा कर्मकार की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय को इस आधार पर चुनौती दिया है कि अभियोजन मामले का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र गवाह आगे नहीं आया है। पुतुल बाला गिरी (अ॰ सा॰ 1) और मन्ना गिरी (अ॰ सा॰ 2) क्रमशः सूचक अ॰ सा॰ 3 की पुत्री और पत्नी हैं। अन्वेषण अधिकारी सिद्धनाथ सिंह का अ॰ सा॰ 4 के रूप में परीक्षण किया गया था।

6. यह निवेदन किया गया है कि सूचक ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि वह घटनास्थल से आधा किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित खेत में काम कर रहा था और 'हल्ला' सुनने के बाद वह घटना की ओर आकृष्ट हुआ था। यह उम्मीद नहीं की जाती है कि आधा किलोमीटर की दूरी पर काम कर रहा व्यक्ति ऐसी दूरी से आवाज या हल्ला सुनने में सक्षम होगा। यदि तर्क के लिए यह स्वीकार भी किया जाता है, तब हल्ला अन्य गाँववालों द्वारा भी सुना गया होता, किंतु अड़ोस-पड़ोस का कोई गवाह मामले का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आया है। केवल यही नहीं, सूचक ने कुछ व्यक्तियों को भी नामित किया है जिन्होंने उसे अस्पताल ले जाने में उसकी सहायता की थी, किंतु उनमें से कोई भी ऐसे प्रतिवाद का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आया है। सूचक ने आगे इस तथ्य को छुपाने का प्रयास किया है कि मुहल्ला के लोगों ने घटना को देखा था और, इसलिए, इस विरोधाभास का अन्वेषण अधिकारी को निर्दिष्ट किया गया था जिसे उसने स्वीकार किया था और कहा था कि सूचक ने कहा था कि गाँववाले जमा हुए थे और घटना को देखा था। इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल पर खून का धब्बा नहीं पाया था जबकि सूचक ने कहा है कि हैंडपंप से उसके घर तक खून का निशान था।

विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय को इस आधार पर भी चुनौती दिया है कि सूचक ने अपने फर्दबयान में प्रहार के हथियार को 'तलवार' के रूप में वर्णित नहीं किया है बल्कि उसने कथन किया है कि हथियार 'कट्टा' जैसे लोहे का बना हुआ था। यह निवेदन भी किया गया है कि डॉक्टर का अपरीक्षण घातक है।

7. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया है, यद्यपि कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था। यह सत्य है कि इससे छोटे अपराध के लिए भी, यदि इसे किया गया है, के लिए दोषसिद्धि की जा सकती है किंतु वर्तमान मामले में, सूचक ने अभिकथन किया है कि वह दायें हाथ के अंगूठा सहित अपनी तीन उंगलियों को खो दिया था, और इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए डॉक्टर का परीक्षण बहुत जरूरी था।

सूचक ने न्यायालय में अपने परीक्षण के दौरान दो उंगलीवाला अपना दायां हाथ दिखाया था और अभिकथित किया था कि उसने प्रहार में अंगूठा सहित अपनी तीन उंगलियों को खोया था, यह अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए तबतक पर्याप्त नहीं है जबतक मेडिकल रिपोर्ट सिद्ध नहीं किया जाता है।

8. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थी की ओर से दिए गए तर्कों का विरोध किया है और आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है। उन्होंने निवेदन किया है कि स्वतंत्र गवाहों का अ-परीक्षण अभियोजन मामले को खारिज करने के आधार के रूप में माना नहीं जा सकता है, यदि इसे परीक्षण किए गए गवाहों द्वारा सिद्ध किया गया है। घटना पानी भरने के बिंदु पर हुई थी और, इसलिए, अ॰ सा॰ 1 और 2 सूचक के संबंधी हो सकते थे किंतु वे स्वाभाविक गवाह हैं। निवेदन किया गया है कि इस अपील में गुणागुण नहीं है और यह खारिज किए जाने का दायी है।

9. मैंने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है और मुझे यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थी को किसी उपहति रिपोर्ट की अनुपस्थिति में और चिकित्सा अधिकारी के परीक्षण की अनुपस्थिति में भी भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया है। आरोपों को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 326, 341 एवं 307 के अधीन विरचित किया गया था। मैं इस सीमा तक निर्णय से सहमत हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धारा 307 अथवा 341 के अधीन मामला सिद्ध नहीं किया गया था। उन अपराधों के लिए अपीलार्थी को सही प्रकार से दोषमुक्त किया गया है किंतु जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धाराओं 326 अथवा 324 के अधीन दंडनीय अपराध का संबंध है, उपहति रिपोर्ट और चिकित्सा अधिकारी का परीक्षण बहुत ही जरूरी है। केवल इसलिए कि पीड़ित ने अपना दायां हाथ दिखाया था जिसका अंगूठा और दो उंगलियाँ गायब थी विद्वान सत्र न्यायाधीश को किसी मेडिकल रिपोर्ट को सिद्ध किए बिना अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए उसको ध्यान में लेना नहीं चाहिए था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया निवेदन अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से भी समर्थन पाता है कि घटना स्थल पर मुहल्ला के लोग जमा हुए थे किंतु उनमें से किसी का परीक्षण नहीं किया गया है। अगला बिन्दू, कि अन्वेषण के दौरान खून का निशान नहीं पाया गया था, भी सूचक के साक्ष्य की दृष्टि में महत्वपूर्ण है जिसमें उसने कथन किया है कि खून का निशान घटना स्थल से उसके घर तक उपलब्ध था। अन्वेषण अधिकारी ने स्पष्टत: कथन किया है कि उसने घटनास्थल पर खून का धब्बा नहीं पाया था।

10. इन समस्त पहलूओं पर विचार करते हुए, मैं सत्र विचारण सं॰ 758 वर्ष 1994 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ सं॰ 1, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 23.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को मान्य ठहराने का इच्छुक नहीं हूँ और इसलिए, आक्षेपित निर्णय को अपास्त करता हूँ। अपीलार्थी को दोषमुक्त किया जाता है और जमानत बंधपत्र के दायित्व से उन्मोचित और निर्मुक्त किया जाता है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

सुनील कुमार दास

cuke

अनिल कुमार दास

W.P. (C) No. 5416 of 2004. Decided on 21st November, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 9, नियम 13 सह–पठित आदेश 5, नियम 17 एवं 19—एकपक्षीय आदेश अपास्त–नोटिस का तामील नहीं किया जाना–नोटिस आम जनता पर तामील की गयी थी जिसके लिए तामीला रिपोर्ट को सिद्ध करना होगा–आदेश–पत्रक में इसका उल्लेख नहीं है कि नोटिस सम्यक् रूप से तामील किया गया था–नियम 17 और 19 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है और वि॰ प॰ पर समनों के तामीले की घोषणा करने वाला कोई समुचित आदेश नहीं है–अवर न्यायालय द्वारा अधिकारिता के प्रयोग में कोई अवैधता नहीं है–याचिका खारिज। (पैराएँ 12 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Md. Shamim Akhtar, For the Petitioner; Mr. S.K. Ughal, For the Respondent.

आदेश

इस रिट याचिका में याची ने विविध केस सं॰ 1 वर्ष 1998 में प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 6 जुलाई, 2004 के आदेश के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा विद्वान अवर न्यायालय ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9, नियम 13 के अधीन दाखिल आवेदन अनुज्ञात किया था और प्रोबेट केस सं॰ 4/1991 में पारित दिनांक 29.1.1993 के एकपक्षीय आदेश को अपास्त कर दिया था। आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों को समुचित रूप से सत्यापित किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शमीम अख्तर ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने दिनांक 6.8.1991 और 23.8.1991 के आदेश को निर्दिष्ट किया है और गलत रूप से संप्रेक्षित किया है कि विपक्षी पक्षकार को नोटिस जारी नहीं किया गया था। किंतु, प्रति शपथ पत्र के परिशिष्ट–C से स्पष्ट होगा कि प्रत्यर्थी को नोटिस जारी और तामील किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त तिथियों का आदेश–पत्रक दर्शाता है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर नोटिस तामील किया गया था, किंतु उसने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था।

3. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया और आक्षेपित आदेश का समर्थन किया। अपने निवेदनों के समर्थन में उन्होंने अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों को निर्दिष्ट किया।

4. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और प्रोबेट केस सं॰ 4/1991 के आदेश–पत्रक सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और दस्तावेजों का परिशीलन किया है।

5. अवर न्यायालय का दिनांक 6.8.1991 का आदेश–पत्रक दर्शाता है कि सरिस्तादार के रिपोर्ट की दृष्टि में विद्वान अवर न्यायालय ने मामला ग्रहण किया था और दिनांक 23.8.1991 नियत करते हुए विपक्षी पक्षकारों और आम जनता को नोटिस जारी किया था।

6. तत्पश्चात् दिनांक 23.8.1991 का आदेश–पत्रक निम्नलिखित कहता है:–

> *"23.8.91 vkond u gkftjh nkf[ky fd;kA vke turk ij ukfVl rkehy fd;k x;kA ,l0@vkj0 çkIr fd;k x;kA vkond dk ,l0@vkj0 fl} djuk gA fo0 i0 l0 2 ij ukfVl rkehy fd;k x;k ftlu gLrk{kj dju l budkj fd;kA ,l0@vkj0 çkIr fd;k x;kA fo0 i0 l0 1 vkj 3 l 6 rd u ukfVl dk ,l0@vkj0 çkIr ugh fd;kA çrh{kk dj vkj fnukd 28.8.1991 d fy, j[kA**"*

7. उक्त आदेश से स्पष्ट है कि आम जनता पर नोटिस तामील किया गया था जिसके लिए तामील रिपोर्ट सिद्ध किया जाना था। आवेदक को इसे सिद्ध करने का निर्देश दिया गया था। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर नोटिस के तामीले के संबंध में उल्लिखित किया गया है कि उस पर नोटिस तामील किया गया था किंतु उसने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। उक्त आदेश–पत्रक आगे दर्शाता है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 और 3 से 6 तक को भेजे गए नोटिसों के तामील रिपोर्टों को प्राप्त नहीं किया गया था।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह दर्शाने के लिए दिनांक 23.8.1991 के आदेश-पत्रक पर काफी जोर दिया कि विपक्षी पक्षकार सं० 2 पर नोटिस समुचित रूप से तामील किया गया था और विद्वान अवर न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा गलत रूप से अभिनिर्धारित किया कि उस पर नोटिस तामील नहीं किया गया था।

9. सिविल प्रक्रिया संहिता (सी० पी० सी०) का आदेश V समनों को जारी और तामील करने पर विचार करता है। इसका नियम 17 प्रक्रिया विहित करता है जब प्रतिवादी तामील स्वीकार करने से इनकार करता है अथवा नहीं पाया जाता है। आदेश V का नियम 17 निम्नलिखित है:-

*"17. **tc çfroknh rkehy dk çfrxg.k dju l bdkj dj ;k u ik;k tk,] rc çfØ;k-**—tgk çfroknh ;k mldk vfHkdrk ;k mijkDr tlk vU; 0;fDr vfHkLohNfr ij gLrk{kj dju l bdkj djrk g] ;k tgk rkehy dju okyk vfèkdkjh lHkh lE;d vkj ;fDr;Dr rRijrk cjru d i'pkr ,l çfroknh dk u ik ld] tk viu fuokl LFkku l ml le; vuifLFkr g] tc ml ij leu dh rkehy mld fuokl&LFkku ij dh tkuh g vkj ;fDr;Dr le; d Hkhrj mld fuokl&LFkku ij ik, tku dh lHkkouk ugh gA] vkj ,lk dkb vfHkdÙkk ugh g tk leu dh rkehy dk çfrxg.k mldh vkj l dju d fy, l'kDr g vkj u dkb ,lk vU; 0;fDr g ftl ij rkehy dh tk ld ogk rkehy dju okyk vfèkdkjh ml xg d] ftle çfroknh ekeyh rkj l fuokl djrk g ;k dkjkckj djrk g ;k vfHkykHk d fy, Lo; dke djrk g] ckgjh }kj ij ;k fdlh vU; lgtn'; Hkkx ij leu dh ,d çfr yxk,xk vkj rc og ey çfr dk ml ij i"Bkfdr ;k ml l mikc} ,lh fjikV d lkFk] ftle ;g dfFkr gkxk fd mlu çfr dk ,l yxk fn;k g vkj o dku lh ifjfLFkfr;k Fkh ftue mlu ,lk fd;k] dfFkr gkxh vkj ftle ml 0;fDr dk ¼;fn dkb gk½ uke vkj irk dfFkr gkxk ftlu xg igpkuk Fkk vkj ftldh mifLFkfr e çfr yxkb xb Fkh] ml U;k;ky; dk ykVk,xk] ftlu leu fudkyk FkkA***

10. आगे, आदेश V का नियम 19 तामील करने वाले अधिकारी का परीक्षण प्रावधानित करता है जब नियम 17 के अधीन समन वापस लौटाया जाता है।

11. नियम 19 को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:-

*"19. **rkehy dju oky vfèkdkjh dh ijh{kk-**—tgk leu fu;e 17 d vèkhu ykVk fn;k x;k g ogk rkehy dju oky vfèkdkjh dh ijh{kk mldh viuh dk;okfg;k dh ckcr U;k;ky; Lo; ;k fdlh vU; U;k;ky; }kjk ml n'kk e djxk ;k djk,xk ftle ml fu;e d vèkhu fooj.kh rkehy dju oky vfèkdkjh }kjk 'kiFki= }kjk lR;kfir ugh dh xb g vkj ml n'kk e dj ldxk ;k djk ldxk ftle og ,l lR;kfir dh xb g vkj ml ekey e ,lh vfrfjDr tkp dj ldxk tk og Bhd le> vkj ;k rk og ?kkf"kr djxk fd leu dh rkehyk lE;d :i l gh gk xb g ;k ,lh rkehyk dk vkn'k djxk tk og Bhd le>A***

12. आदेश V के नियमों 17 और 19 के संयुक्त पठन पर स्पष्ट है कि प्रतिवादी द्वारा नोटिस से इनकार की स्थिति में, तामील करने वाले अधिकारी को समनों की प्रति को घर के बाहरी दरवाजे अथवा आसानी से दिखने वाले भाग पर चिपकाना होगा-जहाँ प्रतिवादी सामान्यत: निवास करता है अथवा व्यवसाय करता है अथवा निजी लाभ के लिए काम करता है। तत्पश्चात्, उसे मूलप्रति को उस पर पृष्ठांकित अथवा संलग्न रिपोर्ट के साथ यह कथन करते हुए उस न्यायालय को वापस करना होगा जिससे इसे जारी किया गया था कि उसने प्रति को इस तरह चिपकाया है जैसा नियम द्वारा विहित किया गया है और परिस्थिति जिसके अधीन उसने ऐसा किया और व्यक्ति का नाम और पता जिसके द्वारा घर पहचाना गया था और जिसकी उपस्थिति में प्रति चिपकायी गयी थी। आदेशिका तामीलकर्ता के ऐसे पृष्ठांकन के साथ समनों को वापस किए जाने की स्थिति में स्वयं उक्त न्यायालय द्वारा तामील अधिकारी का परीक्षण

शपथ पर करना होगा यदि तामील करने वाले अधिकारी द्वारा वापस किए गए नोटिस को सत्यापित नहीं किया गया है और तब भी जब इसे सत्यापित किया गया है। तत्पश्चात्, न्यायालय घोषणा करेगा कि समनों को सम्यक रूप से तामील कर दिया गया है अथवा ऐसे तामील का आदेश देगा जैसा वह समुचित समझता है।

13. जैसा ऊपर गौर किया गया है, दिनांक 23.8.1991 का आदेश-पत्रक तामील करने वाले अधिकारी द्वारा शपथ पर वापसी के सत्यापन के बारे में उल्लेख नहीं करता है और न ही यह न्यायालय की किसी घोषणा का उल्लेख करता है कि नोटिस सम्यक् रूप से तामील किया गया था। नियमों 17 और 19 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर समनों के तामीले की घोषणा करने वाला समुचित आदेश नहीं है।

14. यद्यपि, विद्वान अवर न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा अपने आदेश को समुचित रूप से शब्दों में व्यक्त नहीं किया है, पर इसने अभिनिर्धारित किया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर नोटिस तामील नहीं किया गया था। उस आधार पर उन्होंने एकपक्षीय आदेश अपास्त करते हुए और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अपीलार्थी को अवसर देने के लिए अपने मूल फाइल में प्रोबेट केस को पुनर्स्थापित करते हुए विविध केस सं॰ 1/1998 को अनुज्ञात किया है।

15. मैं विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अधिकारिता के प्रयोग में कोई अवैधता अथवा मनमानापन अथवा गलती नहीं पाता हूँ। इस प्रकार, इस रिट याचिका में गुणागुण नहीं है और इसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

रजिया बीबी एवं अन्य

बनाम

मोहम्मद नजरुल हक एवं अन्य

S.A. No. 288 of 2006. Decided on 13th December, 2011.

(क) मोहम्मडन विधि–बँटवारा–प्रतिदावा–जब कोई प्रतिदावा नहीं था, लिखित कथन में मात्र इनकार प्रतिवादीगण को अनुसूची-B में उल्लिखित संपत्ति जिसके संबंध में वादी ने वाद पत्र में कोई अनुतोष इप्सित नहीं किया था, में हिस्सा लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी–अपील खारिज। (पैराएँ 6 एवं 7)

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 100—विधि का कोई बिंदु, जो दो विकल्पों को स्वीकार नहीं करता है, विधि की प्रतिपादना हो सकता है किंतु विधि का सारवान प्रश्न नहीं हो सकता है–विधि का सारवान प्रश्न विवाद योग्य होना ही चाहिए जिसे राष्ट्र की विधि द्वारा अथवा बाध्यकारी पूर्व निर्णय द्वारा पहले सुनिश्चित नहीं किया गया है और इसके उत्तर का पक्षों के अधिकारों के प्रति तात्विक प्रभाव होगा। (पैरा 7)

निर्णयज विधि.–(2001) 3 SCC 179; (2004) 5 SCC 762—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Ranjan, A.K. Mishra, O.P. Tiwary, For the Appellants; Mr. Lalit Kumar Lal, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान द्वितीय अपील मूल वाद सं॰ 9 वर्ष 1980 (**मोहम्मद नजरुल हक बनाम रजिया बीबी एवं अन्य**) में उप-न्यायाधीश I, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 17.1.2005 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत होने वाले हक वाद सं॰ 1 वर्ष 2005 में निर्णय और डिक्री को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है। वाद संपत्तियों में वादीगण के पाँच आना आठ पाई के संबंध में बँटवारा की डिक्री के लिए वाद दाखिल किया गया था। यह कथन किया गया था कि अनुसूची-A में उल्लिखित संपत्तियाँ वादीगण और प्रतिवादीगण की संयुक्त पारिवारिक संपत्ति हैं। किंतु, वादीगण द्वारा दावा की गयी अनुसूची-B में वर्णित कतिपय संपत्तियाँ स्व अर्जित संपत्ति है और अनुसूची-B संपत्ति के संबंध में अनुतोष का दावा नहीं किया गया था। वादी का दावा अनुसूची-A में उल्लिखित संपत्ति के 1/3 हिस्से के संबंध में था। पक्षों को सुनने के बाद, अवर न्यायालय ने दोनों संपत्तियों अर्थात् अनुसूची-A और B में वादीगण को 1/3 हिस्सा अनुज्ञात किया। वादीगण ने विद्वान जिला न्यायाधीश, पाकुड़ के समक्ष अपील दाखिल किया। आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील अनुज्ञात किया गया था। संपूर्ण विवाद इस प्रश्न के इर्द-गिर्द घूमता है कि चूँकि अनुसूची-B में दर्शायी गयी संपत्ति के संबंध में अनुतोष का दावा नहीं किया गया था, विचारण न्यायालय ने उक्त संपत्ति में भी 1/3 हिस्सा की घोषणा करने में विधि में गलती की। प्रतिवादीगण की ओर से कोई प्रतिदावा स्थापित नहीं किया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया विधि का सारवान प्रश्न यह है कि बँटवारा वाद में प्रतिवादीगण सह-वादीगण है, अत:, प्रतिदावा स्थापित करना आवश्यक नहीं है।

4. श्रीमती गोवरम्मा बनाम ननजप्पा एवं अन्य, AIR (2002) Karnataka 76, मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने मोहम्मडन विधि की धारा 57 के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों पर जोर दिया है जहाँ वादीगण का मामला यह है कि संपत्ति कॉमन व्यवसाय से खरीदी गयी थी और चूँकि परिवार के साथ रह रहा था और कोई मोहम्मद शकुरूल्ला व्यवसाय की देखभाल कर रहा था, अत:, अन्य समस्त सदस्यों का समस्त संपत्तियों में स्पष्टत: हिस्सा था। आरंभ में व्यवसाय 'शेख वाजिद अली हाजी मोहम्मद अली' के नाम से हाजी मोहम्मद द्वारा चलाया जा रहा था और इस प्रकार, उक्त संयुक्त संपत्ति की आय से पुत्रों ने अनुसूची-B में वर्णित संपत्तियों और भूखंड सं॰ 1706 को छोड़कर अनुसूची-A में वर्णित संपत्ति में हिस्सा अर्जित किया था। अनेक दस्तावेजों को अभिलेख पर लाया गया था।

6. अपीलार्थीगण की ओर से प्रतिवाद यह है कि भूखंड सं॰ 1706 को छोड़कर अनुसूची-A और B में उल्लिखित संपत्तियाँ संयुक्त पारिवारिक संपत्ति बनी रही। स्वीकृत अवस्था यह है कि कोई प्रतिदावा नहीं था और, इसलिए, लिखित कथन में मात्र इनकार प्रतिवादीगण को अनुसूची-B में उल्लिखित संपत्ति में हिस्सा लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी विशेषत: जब वादी ने अनुसूची-B में वर्णित व्यावसायिक संपत्तियों के संबंध में वाद पत्र में कोई अनुतोष इप्सित नहीं किया था। अत: यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अनुसूची-A के साथ अनुसूची-B की संपूर्ण संपत्ति संयुक्त संपत्ति है और बँटवारा के लिए दायी है, विचारण न्यायालय का निष्कर्ष अनपेक्षित है क्योंकि प्रतिवादीगण द्वारा कोई प्रतिदावा अथवा अनुतोष इप्सित नहीं किया गया था। अत: अवर न्यायालय का निर्णय इस तथ्य पर दिया गया निश्चयात्मक निष्कर्ष है कि अनुसूची-B में दर्शायी गयी संपत्ति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति नहीं था और यह भी कि अनुसूची-B की संपत्ति के संबंध में वादीगण द्वारा किसी अनुतोष का दावा नहीं किया गया था और इसलिए, लिखित कथन दाखिल मात्र करके प्रतिवादीगण उक्त संपत्ति में हिस्सा प्राप्त नहीं कर सकते थे।

7. मैं अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निष्कर्षों के साथ पूरी सहमत हूँ। वर्तमान अपील में उठाया गया विधि का सारवान प्रश्न गुणागुण रहित है और सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 100 के अधीन किसी हस्तक्षेप के लिए नहीं कहता है। सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 100 का विस्तार सीमित है। **संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी, (2001)3 SCC 179,** और **त्यागराजन एवं अन्य बनाम श्री वेणुगोपाल स्वामी बी॰ कोली एवं अन्य, (2004)5 SCC 762** में सर्वोच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय की अधिकारिता पर चर्चा किया है। अधिकथित सिद्धांत यह था कि विधि का वह बिंदु, जो दो विकल्पों को स्वीकार नहीं करता है, विधि की प्रतिपादना हो सकता है किंतु विधि का सारवान प्रश्न नहीं हो सकता है। विधि के सारवान प्रश्न को विवाद योग्य होना होगा जिसे राष्ट्र की विधि द्वारा अथवा बाध्यकारी पूर्व निर्णय द्वारा पहले सुनिश्चित नहीं किया गया है और इसके प्रति उत्तर का पक्षों के अधिकारों के प्रति तात्विक प्रभाव होगा। अनेक निर्णयों में इस सिद्धांत का अनुसरण किया गया है। अतः, मेरे दृष्टिकोण में वर्तमान मामला विधि का सारवान प्रश्न होने से बहुत दूर है।

तद्नुसार द्वितीय अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

शिवनन्दन पटार

cuke

अंचलाधिकारी, सिमडेगा एवं एक अन्य

W.P. (C) No. 5629 of 2005. Decided on 21st November, 2011.

भूमि विधि–किराया का नियतीकरण–अंचलाधिकारी के कार्यालय से अभिलेखों को मंगाने के लिए दिए गए आवेदन का अस्वीकार किया जाना–अंचलाधिकारी द्वारा दस्तावेज की प्रमाणित प्रतियाँ जारी नहीं की गयी–अंचलाधिकारी स्वयं एक पक्ष है–केवल मूल दस्तावेजों को मंगाकर ही याची उन दस्तावेजों को सिद्ध कर सकता है–अवर न्यायालय ने प्रमाणित प्रतियों को प्रस्तुत नहीं किए जाने के आधार पर याची की प्रार्थना को अस्वीकार करने में गलती की–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash, Chaitali C. Sinha, Yogesh Modi, For the Petitioner J.C. to S.C. (Land Ceiling), For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में याची ने दिनांक 2.7.2005 के आदेश को अपास्त करने के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा विद्वान अवर न्यायालय ने अंचलाधिकारी के कार्यालय से मूल अभिलेख को तब तक मंगाने से इनकार कर दिया है जब तक उन अभिलेखों की प्रमाणित प्रतियों को दाखिल नहीं किया जाता है।

2. कथन किया गया है कि आदेश की छाया प्रतिलिपि दाखिल की गयी थी और इस आधार पर कि आदेश की प्रमाणित प्रति को अंचलाधिकारी द्वारा जारी नहीं किया गया है, अभिलेखों को मंगाने के लिए प्रार्थना की गयी थी।

3. आगे कथन किया गया है कि वाद स्वयं अंचलाधिकारी के विरुद्ध दाखिल किया गया है और वह वाद में प्रतिवादी था और कि उसकी उपस्थिति में याची ने बयान दिया था कि प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए आवेदन दिया गया था, किंतु इसे याची को नहीं दिया गया है। उस परिस्थिति में याची ने दस्तावेजों की छाया प्रतिलिपि संलग्न किया और हलका कर्मचारी के परीक्षण के पहले अंचलाधिकारी के कार्यालय से अभिलेख मंगाने की प्रार्थना की गयी थी।

4. यह कथन किया गया है कि जब किराया नियतीकरण मामले में जो लंबे समय से अंचलाधिकारी के समक्ष लंबित था, अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था, अंचलाधिकारी और अन्य के विरुद्ध वाद दाखिल किया गया है। विद्वान अवर न्यायालय ने यह संप्रेक्षित करते हुए कि जब तक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों को दाखिल नहीं किया जाता है, इसे मंगाया नहीं जा सकता है, मूल अभिलेखों को मंगाने की याची की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री जयप्रकाश ने निवेदन किया कि याची ने अंचलाधिकारी, जिसके विरुद्ध वाद संस्थापित किया गया था, के समक्ष दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन दिया था किंतु लंबा समय बीत जाने के बाद भी अंचलाधिकारी द्वारा प्रमाणित प्रति जारी नहीं किया गया था। अत:, याची ने छाया प्रतिलिपि प्रस्तुत किया और हलका कर्मचारी के परीक्षण के पहले अंचलाधिकारी के कार्यालय से मूल अभिलेख मंगाने के लिए प्रार्थना किया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि विधि में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय अभिलेख के लिए केवल तब कह सकता है जब दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति को दाखिल किया जाता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि याची को अपूरणीय क्षति और नुकसान होगा और उसके मामले पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा यदि वादी के मामले के समर्थन में उन मूल दस्तावेजों को मंगाया और सिद्ध नहीं किया जाता है। विद्वान अवर न्यायालय ने याची के उक्त उलझन पर विचार किए बिना दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति को दाखिल किए जाने के पहले अभिलेख मंगवाने से लापरवाह तरीके से इनकार कर दिया है।

6. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित स्थायी अधिवक्ता (भूमि सीलिंग) के विद्वान कनीय अधिवक्ता ने याची की प्रार्थना का विरोध किया और निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालय ने विवेक का इस्तेमाल करने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर सम्यक् रूप से विचार करने के बाद याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया है। उक्त आदेश में इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षणीय नहीं है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों पर विचार किया है।

8. अंचलाधिकारी के विरुद्ध याची द्वारा इस शिकायत के साथ वाद दाखिल किया गया था कि वाद भूमि के संबंध में किराया के नियतीकरण के लिए उसका आवेदन काफी समय से लंबित था। अपना मामला सिद्ध करने के लिए याची दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों और अंचलाधिकारी के अभिलेख को प्रस्तुत करने का आशय रखता था। उसने उन दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों के लिए आवेदन दिया, किंतु लंबे समय के बाद भी अंचलाधिकारी द्वारा प्रमाणित प्रतियों को जारी नहीं किया गया था। तत्पश्चात्, याची ने दस्तावेजों की छाया प्रतिलिपियों को प्रस्तुत किया और अपने मामले के समर्थन में इनको सिद्ध करने के लिए मूल दस्तावेजों को मंगाए जाने की प्रार्थना की, किंतु इसे विद्वान अवर न्यायालय द्वारा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि प्रार्थना तब तक अनुज्ञात नहीं की जा सकती है जब तक उन दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति को न्यायालय में दाखिल नहीं किया जाता है। विद्वान अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहा कि अंचलाधिकारी स्वयं एक पक्ष है और उसने उसके द्वारा आवेदन किए गए दस्तावेजों की प्रमाणित प्रति को जारी नहीं किया है। इस परिस्थिति में उस प्रयोजन से और अपना मामला सिद्ध करने के लिए दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियों को दाखिल करना याची के लिए संभव नहीं होगा। केवल मूल दस्तावेजों को मंगाकर याची उन दस्तावेजों को सिद्ध कर सकता है। किंतु अवर न्यायालय द्वारा उस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है।

9. चूँकि याची ने स्पष्ट किया कि प्रमाणित प्रतियाँ दाखिल नहीं की जा सकी थी क्योंकि इन्हें अंचलाधिकारी जो स्वयं वाद में प्रतिवादी है, ने इन्हें जारी नहीं किया है, अत: विद्वान अवर न्यायालय ने प्रमाणित प्रतियों के अप्रस्तुतीकरण के आधार पर याची की प्रार्थना को अस्वीकार करने में गलती की है। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विद्वान अवर न्यायालय ने समुचित रूप से याची की प्रार्थना

का अधिमूल्यन नहीं किया है और यह विचार किए बिना इसे अस्वीकार कर दिया है कि प्रमाणित प्रतियों को अंचलाधिकारी द्वारा जारी नहीं किया गया है और वादी-याची के लिए अपना मामला सिद्ध करना संभव नहीं होगा यदि मूल दस्तावेजों को न्यायालय द्वारा नहीं मंगाया जाता है और वादी द्वारा इसे सिद्ध नहीं किया जाता है।

10. उक्त पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 2.7.2005 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। विद्वान अवर न्यायालय को मूल अभिलेख मंगाने का निर्देश दिया जाता है जैसी प्रार्थना वादी-याची द्वारा अपने मामले के समर्थन में इन्हें सिद्ध करने के लिए उसको सक्षम बनाने के लिए की गयी है। चूँकि मामला काफी पुराना है, विद्वान अवर न्यायालय इस पर शीघ्रातिशीघ्र अग्रसर होगा।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k

दिनेश प्रसाद

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Arb. Appeal No. 5 of 2010. Decided on 2nd December, 2011.

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 34—माध्यस्थम् अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील—अपीलार्थी द्वारा किए गए अतिरिक्त काम के कारण कुछ राशि अधिनिर्णीत करने वाले अधिनिर्णय का भाग अपास्त किया गया—अपीलार्थी ने कभी भी यह अभिवचन नहीं किया कि उसे अतिरिक्त काम करने के लिए लिखित आदेश दिया गया था—अवर न्यायालय ने सही प्रकार से अधिनिर्णय के उस भाग को अपास्त किया क्योंकि यह वैसे विवाद पर विचार करता था जिसे अनुध्यात नहीं किया गया था और यह करार के निबंधनों के विपरीत था—अपील खारिज।

(पैरा 7)

निर्णयज विधि.—AIR 2004 SC 1344—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. S. Srivastava, For the Appellant/Petitioner; Mr. S. Choudhary, For the Respondent/ Opp. Party.

आदेश

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह अपील विविध केस सं॰ 7/2008 में पारित दिनांक 8 सितंबर, 2009 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा उप न्यायाधीश-I, राँची के न्यायालय ने माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 के अधीन आवेदन को अंशत: अनुज्ञात किया है और संविदा के अधीन अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से किए गए अतिरिक्त काम के कारण 1,50,000/- रुपयों की राशि अधिनिर्णीत करने वाले अधिनिर्णय के भाग को अपास्त कर दिया।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन विस्तार अत्यन्त सीमित है और अवर न्यायालय केवल धारा 34 की उपधारा (2) के अधीन आधार की वैधता के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के बाद ही अधिनिर्णय में हस्तक्षेप कर सकता था। निवेदन किया गया है कि विद्वान मध्यस्थ ने प्रत्यर्थी राज्य को दस्तावेजों विशेषत: माप पुस्तिका और संकर्म आदेश पुस्तिका को प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया किंतु अनेक अवसर दिए जाने के बावजूद प्रत्यर्थी राज्य ने माप पुस्तिका और संकर्म आदेश पुस्तिका प्रस्तुत नहीं किया था और इसलिए, विद्वान मध्यस्थ ने राज्य के विरुद्ध

प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला। यह निवेदन भी किया गया है कि करार के खंड 11 के मुताबिक काम के निष्पादन के दौरान प्रभारी अभियन्ता द्वारा अतिरिक्त काम किया जा सकता था और इसलिए, अतिरिक्त काम करना पक्षों के बीच करार के विस्तार के अंतर्गत था।

4. प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने विधिपूर्वक और वैधपूर्वक अधिनिर्णय के उस भाग को पृथक किया जो **एम॰ डी॰ सेना कल्याण आवासीय संगठन बनाम सुमंगल सर्विसेज प्रा॰ लि॰, AIR 2004 SC 1344** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए अपीलार्थी को अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता था।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया, मामले के तथ्यों का परिशीलन किया और विद्वान मध्यस्थ एवं अवर न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर विचार किया।

6. यह स्वयं अपीलार्थी का मामला है कि करार के खंड 11 के अधीन वह अतिरिक्त काम के लिए भुगतान का हकदार था। खंड 11 अत्यन्त स्पष्ट है और यह मूल विशिष्टियों, ड्राइंग, डिजाइन और अनुदेशों, जो काम की प्रगति के दौरान उसे आवश्यक अथवा परामर्श योग्य प्रतीत हो सकते हैं, कोई परिवर्तन करने के लिए प्रभारी अभियन्ता को सशक्त बनाता है और उसकी संतुष्टि पर ठेकेदार किसी अनुदेश, जिन्हें प्रभारी अभियन्ता द्वारा लिखित में और उसके द्वारा हस्ताक्षरित करके ठेकेदार को दिया जा सकता है, के अनुरुप काम करने के लिए बाध्य है।

7. स्वीकृत रूप से अपीलार्थी ने यह साक्ष्य देने वाला कि प्रभारी अभियन्ता ने ठेकेदार को अतिरिक्त काम करने के लिए अपने द्वारा हस्ताक्षरित लिखित में कोई आदेश दिया था, न तो अभिवचन किया और न ही कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया; इसके विपरीत स्वयं दावा याचिका में पैराग्राफ 6 में अपीलार्थी-ठेकेदार ने केवल यह निवेदन किया कि उसने पुराने एस्बेस्टस उखाड़कर और लकड़ी के बीट के साथ नया एस्बेस्टस लगाकर प्रखंड के क्वार्टर के पूरे छत का अतिरिक्त काम किया था। किंतु अपीलार्थी के अनुसार, अतिरिक्त काम प्रत्यर्थीगण के कनीय अभियन्ता और अन्य अधिकारियों के अनुदेश पर किया गया था। अपीलार्थी का मामला यह नहीं है कि प्रभारी अभियन्ता कनीय अभियन्ता था और स्वीकृत रूप से वह प्रभारी अभियन्ता नहीं था और प्रभारी अभियन्ता कार्यपालक अभियन्ता था। तत्पश्चात् अपीलार्थी ने कभी भी यह अभिवचन नहीं किया कि उसे अतिरिक्त काम करने के लिए प्रभारी अभियन्ता द्वारा हस्ताक्षरित लिखित में आदेश दिया गया था। दावा याचिका में अपीलार्थी का मामला यह नहीं है कि प्रभारी अभियन्ता द्वारा माप पुस्तिका और संकर्म आदेश पुस्तिका में कोई लिखित आदेश दिया गया था। अतः, विद्वान अवर न्यायालय अधिनियम, 1996 की धारा 34(2)(iv) के अधीन अधिनिर्णय के भाग को अपास्त करने में सही थे क्योंकि माध्यस्थम अधिनिर्णय वैसे विवाद पर विचार करता था जिसे अनुध्यात नहीं किया गया था और यह करार के निबंधनों के विपरीत था क्योंकि अपीलार्थी अतिरिक्त काम के लिए भुगतान का दावा करने के अपने अधिकार के बारे में अभिवचन करने और कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहा था। अतः, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है जिसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjh dh ejkfB;k] U;k;efr

रमीज राजा खान

cuke

झारखंड राज्य

W.P. (Cr) No. 221 of 2011. Decided on 9th December, 2011.

(क) आयुध अधिनियम, 1959—धाराएँ 25 (1B) (a)/26—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 300 (1)—अभिखंडन के लिए आवेदन–आग्नेयास्त्र से हत्या करने की धमकी पर बलात्संग और हत्या की गयी–दोनों मामलों में अभिकथित अपराध भिन्न हैं–दूसरा मामला उन्हीं तथ्यों पर नहीं है जिन पर पहला मामला दर्ज किया गया था–केवल इसलिए कि पहले मामले के अन्वेषण के दौरान दूसरा मामला दर्ज किया गया था, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि दूसरा मामला दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 300 (1) द्वारा बाधित है–रिट याचिका खारिज।

(पैराएँ 4 एवं 5)

(ख) पूर्व निर्णय–निर्णयों का संविधि के रूप में पठन नहीं किया जाना है–उन्हें मामला विशेष के तथ्यों और परिस्थितियों के समूह में पठन करना होता है। (पैरा 5)

निर्णयज विधि.–(1998) 7 SCC 390; (2011)7 SCC 639—Relied on. 1991 Cr. LJ 2329 MAD; (2011) 2 SCC 703—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. K.S. Nanda, For the Petitioner; JC to G.P. III, For the State.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह दांडिक रिट याचिका आयुध अधिनियम की धारा 25 (1B)(a)/26 के अधीन अपराधों के लिए बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 102/07, जी॰ आर॰ सं॰ 772/07 के तत्सम, के रूप में दर्ज प्राथमिकी (इसके बाद 'दूसरा मामला' के रूप में निर्दिष्ट) और उसके संबंध में तत्सम दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए इस आधार पर दाखिल की गयी है कि यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 300 (1) के अधीन वर्जित है।

2. याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/376/394/34 के अधीन दालभूम (कदमा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 33/2007 दिनांक 6.4.2007 (इसके बाद 'पहला मामला' के रूप में निर्दिष्ट) की प्राथमिकी दिनांक 6.4.2007 को दर्ज की गयी थी। अन्य बातों के साथ साथ याची के विरुद्ध अभिकथन यह था कि आग्नेयास्त्र से हत्या करने की धमकी, बलात्संग करके और गला दबाकर हत्या कारित की गयी थी। याची को उक्त मामले में दोषसिद्ध किया गया है और मामला इस न्यायालय के समक्ष अपील में लंबित है, जिसमें याची को जमानत पर छोड़ दिया गया है। किंतु इसी अपराध के लिए आयुध अधिनियम के अधीन दिनांक 7.4.2007 को दर्ज बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 102/07 (इसके बाद दूसरा मामला के रूप में निर्दिष्ट) में याची का विचारण किया जा रहा है। उन्होंने याची के इकबालिया बयान को यह दर्शाने के लिए निर्दिष्ट किया कि आग्नेयास्त्र पहले मामले के संबंध में बरामद किया गया था। उन्होंने **कोला वीरा राघव राव बनाम गोरंतला वेंकटेश्वरा राव, (2011)2 SCC 703** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और **नटराजन बनाम राज्य, 1991 Cr.L.J. 2329 MAD,** मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया। पूछे जाने पर, याची के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि दूसरे मामले में विचारण अंतिम चरण पर है।

3. दूसरी ओर, राज्य के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि न तो दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 300(1) और न ही याची की ओर से विश्वास किए गए उक्त निर्णय इस मामले पर प्रयोज्य हैं। उन्होंने आगे निवेदन किया कि उक्त अभिकथनों के साथ पहला मामला दर्ज किए जाने के बाद, उसके संबंध में याची के घर पर छापा मारा गया था। याची को अवैध आग्नेयास्त्र के साथ गिरफ्तार किया गया था और इसलिए दूसरा मामला संस्थापित किया गया था। यदि कोई आग्नेयास्त्र बरामद नहीं किया जाता, दूसरा मामला संस्थापित करने का कोई अवसर नहीं होता। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि याची ने दूसरे मामले के संस्थापन

के 4 1/2 वर्ष बाद जब स्वीकृत रूप से विचारण अंतिम चरण पर है, इस रिट याचिका को दाखिल किया है। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि यह रिट याचिका न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

4. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने और अभिलेखों का परिशीलन करने के बाद, मैं इस मामले में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। पहला मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 376/302/394/34 के अधीन अपराधों को किए जाने का अभिकथन करते हुए दिनांक 6.4.2007 को दर्ज किया गया था। यह भी अभिकथित किया गया था कि याची और अन्य अभियुक्त ने आग्नेयास्त्र/छुरा से पीड़िता/सूचक पक्षकार को धमकाया था। पहले मामले के अन्वेषण के दौरान, याची के घर पर छापा मारा गया था और अभिकथित किया गया है कि उसके कब्जा से अवैध आग्नेयास्त्र या बरामद किया गया था। तद्नुसार, अगले दिन अर्थात् दिनांक 7.4.2007 को अवैध आग्नेयास्त्र रखने के लिए याची के विरुद्ध दूसरा मामला दर्ज किया गया था। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34, 376 और 392/411 के अधीन अपराध करने के लिए पहले मामले में याची का विचारण और उसको दोषसिद्ध किया गया था और आयुध अधिनियम के अधीन दर्ज दूसरे मामले में अभिकथित अपराध के लिए उसका विचारण नहीं किया गया था। दोनों मामलों में अभिकथित अपराध भिन्न हैं। दूसरा मामला उन्हीं तथ्यों पर नहीं है जिस पर पहला मामला दर्ज किया गया था। केवल इसलिए कि पहले मामले के अन्वेषण के दौरान (अवैध आग्नेयास्त्र की बरामदगी पर) दूसरा मामला दर्ज किया गया था, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि दूसरा मामला दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 300 (1) द्वारा बाधित है। कृपया **(1998)7 SCC 390, मोहिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य** का पैराग्राफ-2 देखे।

5. इसपर गौर किया जा सकता है कि याची ने दूसरे मामले में आरोप विरचित करने वाले आदेश को चुनौती अन्य आधारों पर दिया था, किंतु वह मामला अर्थात् दांडिक विविध याचिका सं॰ 529 वर्ष 2008 यह कहते हुए कि उसे दोषसिद्ध किया गया है दिनांक 30.4.2010 को वापस ले लिया गया है।

इस मामले को विनिश्चित करने के प्रयोजन से याची की संस्वीकृति का परिशीलन नहीं किया जा सकता है। याची द्वारा विश्वास किए गए निर्णय इस मामले में प्रयोज्य नहीं हैं। **कोला वीरा राघव राव (ऊपर)** मामले में उस मामले में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किए जाने के बाद उन्हीं तथ्यों पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन एक अन्य मामला संस्थापित किया गया था। इसी प्रकार से **नटराजन (ऊपर)** के मामले के तथ्य बिल्कुल भिन्न हैं। इस पर, याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वह उक्त मामलों में किए गए संप्रेक्षणों पर और न कि उसके तथ्यों पर विश्वास कर रहे हैं।

यह सुनिश्चित अवस्था है कि निर्णयों को संविधियों के रूप में पठन नहीं करना चाहिए और उनकी मामला विशेष के सामने आने वाले तथ्यों और परिस्थितियों के समूह में पठन करना होगा। कृपया देखें **(2011)7 SCC 639, म॰ प्र॰ राज्य बनाम नर्मदा बचाओ आंदोलन (पैरा 64)** इसके अतिरिक्त, स्वीकृत रूप से विचारण अंतिम चरण पर है। मेरे मत में, याची ने इस रिट याचिका को दाखिल करके विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने का प्रयास किया है।

परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका खारिज की जाती है। किंतु, व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

---

ekuuh; Mhd ,u iVy] U;k;efr

सुधीर कुमार पासवान

cuke

झारखंड लोक सेवा आयोग, अपने अध्यक्ष के माध्यम से एवं अन्य

W.P.(S) No. 5570 of 2011. Decided on 12th December, 2011.

विद्यालय विधि–नियुक्ति–बी॰ एड॰ परीक्षा के प्रमाणपत्र के विलंबित प्रस्तुतिकरण के कारण शिक्षक के पद पर नियुक्ति से इनकार–याची ने एक वर्ष पहले ही आवेदन दिया था जब

वह बी॰ एड॰ पाठ्यक्रम पूरा कर रहा था–याची सात माह तक बढ़ायी गयी अवधि के भीतर भी प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं कर सका था–किसी मामला विशेष के लिए, न्यायालय नयी नीति नहीं बना सकता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Sahani, For the Petitioner; M/s Sanjay Piperwal, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची ने दिनांक 17 जुलाई, 2008 के सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसरण में शिक्षक के पद के लिए आवेदन दिया था और केवल बी॰ एड॰ परीक्षा, जो शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए विधिक आवश्यकता में एक है, के प्रमाण पत्र के विलंबित प्रस्तुतीकरण के कारण शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए याची के मामले पर प्रत्यर्थीगण द्वारा विचार नहीं किया गया है जिन्होंने आक्षेपित आदेश अर्थात् दिनांक 10 अगस्त, 2011 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट 10) के तहत उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है।

2. याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विज्ञापन के मुताबिक बी॰ एड॰ परीक्षा परिणाम/प्रमाण पत्र के प्रस्तुतीकरण के लिए समय सीमा वस्तुत: झारखंड लोक सेवा आयोग द्वारा शिक्षक के पद के लिए ली गयी परीक्षा की तिथि अर्थात् दिनांक 9 अगस्त, 2009 से तीन माह थी।

3. वर्तमान याची उक्त परीक्षा में उपस्थित हुआ और इस शर्त पर सफल घोषित किया गया है कि वह दिनांक 9 नवंबर, 2009 को अथवा इसके पहले बी॰ एड॰ परीक्षा का प्रमाण पत्र अथवा कम से कम परिणाम प्रस्तुत करेगा। यह उस शर्त के मुताबिक है जो सार्वजनिक विज्ञापन में था। बी॰ एड॰ प्रमाण पत्र/ परिणाम के प्रस्तुतीकरण की अवधि प्राधिकारियों द्वारा दोबारा 30 जून, 2010 तक बढ़ायी गई थी, परन्तु याची दिनांक 30 जून, 2010 तक भी अपना बी॰ एड॰ प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं कर सका था। याची के साथ मुख्य मुश्किल यह थी कि इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय ने जून, 2010 में बी॰ एड॰ परीक्षा लिया था और दिनांक 28 अक्टूबर, 2010 को परिणाम घोषित किया गया था। इसके पहले रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3220 वर्ष 2010 संस्थापित किया गया था जिसे दिनांक 13 अगस्त, 2010 के आदेश के तहत इस न्यायालय द्वारा निपटाया गया था और याची के लिए बी॰ एड॰ परीक्षा परिणाम/प्रमाणपत्र के प्रस्तुतीकरण की तिथि को बढ़ाने के लिए याची द्वारा दाखिल अभ्यावेदन को निपटाने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया गया था। उक्त अभ्यावेदन दिनांक 10 अगस्त, 2011 के आक्षेपित आदेश द्वारा विनिश्चित किया गया था जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट–10 पर है और चूँकि प्रत्यर्थीगण ने याचीगण का अभ्यावेदन इस आधार पर अस्वीकार कर दिया है कि वह दिनांक 30 जून, 2010 तक बी॰ एड॰ परीक्षा परिणाम/प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा और इसलिए यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

4. झारखंड लोक सेवा आयोग के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उन उम्मीदवारों, जो शिक्षक के पद पर नियुक्ति के प्रयोजन से दिनांक 9 अगस्त, 2009 को ली गयी झारखंड लोक सेवा परीक्षा में उपस्थित हुए हैं, को बी॰ एड॰ परीक्षा प्रमाण पत्र/परिणाम के प्रस्तुतीकरण के लिए परीक्षा की तिथि से केवल तीन माह का समय प्रदान किया गया था अर्थात् उनसे दिनांक 9 नवंबर, 2009 को अथवा इसके पहले प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की उम्मीद की जाती थी जिसे तत्पश्चात् आगे सात माह अर्थात् 30 जून, 2010 तक बढ़ाया गया था। इस प्रकार, प्रत्यर्थी राज्य द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय के मुताबिक विस्तारण दिया गया था, किंतु याची के बी॰ एड॰ परीक्षा का परिणाम अक्टूबर, 2010 में प्रकाशित किया गया था और इसलिए,

याची की प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए दिनांक 10 अगस्त, 2011 को विस्तृत सकारण आदेश पारित किया गया है और इसलिए, शिक्षक के पद के लिए याची का चयन नहीं किया गया है और इन तथ्यों की दृष्टि में रिट याचिका में कोई सार नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

5. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं निम्नलिखित कारणों से इस रिट याचिका को ग्रहण करने का आधार नहीं देखता हूँ:–

(I) ;kph u fnukd 17 tykb] 2008 d lkotfud foKkiu d vulj.k e f'k{kd d in d fy, vkonu fn;k tk ;kfpdk d eek d ifjf'k"V&2 ij gA bl lkotfud foKkiu d erkfcd] chO ,MO ijh{kk çek.ki= ;k rk vkonu d lkFk vFkok f'k{kd d in ij fu;fDr d fy, ijh{kk dh frfFk l rhu ekg dh vofèk d Hkhrj çLrr djuk gkxkA

(II) vkx çrhr gkrk g fd >kj[kM ykd lok vk;kx }kjk f'k{kd d in d fy, fnukd 9 vxLr] 2009 dk ijh{kk yh x;h FkhA ;kph mDr ijh{kk e mifLFkr gvk vkj ble mÙkh.k gvk] fdr chO ,MO ijh{kk çek.k i= fnukd 9 uocj] 2009 dk vFkok bld igy çLrr fd;k tkuk Fkk vkj bl ;kph }kjk çLrr ugh fd;k tk ldk Fkk D;kfd ml le; ij og chO ,MO ikB;Øe ijk dj jgk FkkA

(III) ekey d rF;k l vkx çrhr gkrk g fd chO ,MO çek.ki=@ifj.kke çLrr dju dh frfFk fnukd 30 tu] 2010 rd c<k;h x;h FkhA lkr ekg d fy, c<k;h x;h vofèk d Hkhrj Hkh ;kph çek.k i= çLrr ugh dj ldk FkkA

(IV) ekey d rF;k l vkx çrhr gkrk g fd chO ,MO ijh{kk d fy, ;kph dk ifj.kke fnukd 28 vDVcj] 2010 dk ?kkf"kr fd;k x;k FkkA bl çdkj] vR;Ur foyfEcr pj.k ij ;kph vius chO ,MO ijh{kk mÙkh.k gku dh voLFkk e FkkA ;kph }kjk lLFkkfir io fjV ;kfpdk MCY;O ihO ¼,lO½ lO 3220 o"k 2010 bl U;k;ky; d fnukd 13 vxLr] 2010 d vkn'k d rgr fuiVk;h x;h Fkh fdr U;k;ky; }kjk le; c<k;k ugh x;k Fkk vkj ;kph d vH;konu dk fofuf'pr dju d fy, çR;FkhZx.k dk doy fun'k fn;k x;k FkkA

(V) rRi'pkr] ;kph dk vH;konu fnukd 10 vxLr] 2011 dk fofuf'pr fd;k x;k FkkA ¼;kfpdk d eek dk ifjf'k"V 10) vkj vk{kfir vkn'k l çrhr gkrk g fd uhfrxr fu.k; d :i e fy, x, io fu.k; d fo#} oreku ;kph d fy, dkb viokn ugh fd;k x;k gA vkx çrhr gkrk g fd ;fn ,d viokn fd;k tkrk g] rc nlj vkj rhlj k D;k ugh D;kfd ;g vrghu çrhr gkrk gA ;gk ;g xkj djuk egRoi.k g fd U;k;ky; ekeyk fo'k"k e u;h uhfr ugh cuk ldrk gA

(VI) ;g çrhr gkrk g fd f'k{kd d :i e fu;fDr d fy, vkonu nu l igy vFkok de l de ijh{kk dh frfFk l rhu ekg d Hkhrj ;kph dk chO ,MO çek.k i= çkIr dj yuk pkfg, FkkA çek.k i= d çLrrhdj.k d fy, le; Hkh lkr ekg vFkkr 30 tu] 2010 rd c<k;k x;k Fkk] fdr ml frfFk ij Hkh ;kph çek.k i= çLrr dju e foQy jgkA ;kph dk vH;konu çR;FkhZx.k }kjk fnukd 10 vxLr] 2011 d vkn'k d rgr vLohdkj dj fn;k x;k FkkA ;g çrhr gkrk g

fd ;kph u f'k{kd d in d fy, vkonu fn;k FkkA t0 ih0 ,l0 lh0 }kjk vxLr] 2009 e ijh{kk yh x;h Fkh vkj ;kph d ch0 ,M0 ijh{kk dk ifj.kke fnukd 28 vDVcj] 2010 dk ?kkf"kr fd;k x;k FkkA bl çdkj] oLrr] ;kph u ,d o"k igy gh vkonu fn;k g vFkkr tc og bfnjk xkèkh jk"Vh; [kyk fo'ofo|ky; l ch0 ,M0 ikB;Øe ijk dj jgk FkkA

9. इन तथ्यों की दृष्टि में, रिट याचिका में कोई सार नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

साइमन बरला एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 351 of 2002. Decided on 20th December, 2011.

थेटाई टंगर पी॰ एस॰ केस सं॰ 28 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 270 वर्ष 1999 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 47 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 22.6.2002 और दिनांक 25.6.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–आजीवन कारावास–डॉक्टर ने घटना के तरीके का पूरा समर्थन किया–यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है–प्रहार के हथियार का अभिग्रहण नहीं किया जाना और रक्तरंजित मिट्टी अथवा रक्तरंजित कपड़ों के रासायनिक विश्लेषण रिपोर्ट का प्रस्तुत नहीं किया जाना अभियोजन मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करता है–दोनों अभियुक्तों ने मृतक की हत्या करने के आशय से भाग लिया था–अपील खारिज। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–M/s. Pramod Kumar, For the Appellants; Mrs. Niki Sinha, A.P.P., For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील जी॰ आर॰ केस सं॰ 270 वर्ष 1999 के तत्सम थेटाई टंगर पी॰ एस॰ केस सं॰ 28 वर्ष 1999 से उद्भूत होने वाले सत्र विचारण सं॰ 47 वर्ष 2000 में अपीलार्थी सं॰ 1 साइमन बरला को भारतीय दंड संहिता की धारा 320/34 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और आजीवन कठोर कारावास भुगतने और 500/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने और व्यतिक्रम में एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए और अपीलार्थी सं॰ 2 सिरिल बरला को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और आजीवन कठोर कारावास भुगतने और 500/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने और व्यतिक्रम में एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा क्रमशः दिनांक 22.6.2002 और दिनांक 25.6.2002 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश से उद्भूत होती है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक अ॰ सा॰ 5 सिरिल एक्का ने दिनांक 8.11.1999 को प्रातः 9 बजे थेटाई टंगर पी॰ एस॰ के प्रभारी–अधिकारी के समक्ष फर्दबयान दर्ज किया कि पूर्व संध्या अर्थात दिनांक 7.11.1999 को सायं लगभग 5 बजे उसकी 35 वर्षीया पत्नी (मृतका) अ॰ सा॰ 4 टेओफिल एक्का के घर के निकट स्थित हैंड पंप से पानी भरने गयी थी। उसने और उसका भाई अ॰ सा॰ 6 तनिस एक्का चीख सुनकर हैंड पंप की ओर दौड़े और देखा कि अपीलार्थी सं॰ 1 साइमन बरला उसकी पत्नी को जमीन पर गिराने के बाद पकड़े हुए था और अपीलार्थी सं॰ 2 सिरिल बरला उसकी गर्दन काट रहा था। जब ये अ॰ सा॰ वहाँ गए, अपीलार्थीगण ने उनको धमकाया। सूचक की पत्नी का मस्तक काट

दिया गया था। उन पर प्रहार करने के लिए अपीलार्थीगण ने इन अभियोजन साक्षियों का पीछा किया जिस कारण वे भाग गए। तब प्राथमिकी में अभिकथित किय गया है कि उस घटना के पीछे कारण यह था कि लगभग चार वर्ष पहले अपीलार्थीगण ने मृतका को 'डायन' कहा था जिसके लिए पंचायती की गयी थी और मामला सुलझा दिया गया था, किंतु लगभग 15 दिन पहले, अपीलार्थी सं॰ 2 के पुत्र और पुत्री की मृत्यु हो गयी जिस कारण अपीलार्थीगण ने यह सोचते हुए कि उसने जादू–टोना किया था, उसकी गर्दन को काट दिया।

3. अभियोजन ने कुल मिलाकर आठ गवाहों का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1 औपचारिक गवाह है। वह रक्तरंजित मिट्टी के अभिग्रहण का गवाह है। अ॰ सा॰ 1 और 2 पक्षद्रोही गवाह हैं। अ॰ सा॰ 3 डॉ॰ के॰ डी॰ चौधरी है जिन्होंने मृतक का शव परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 4 मृत्यु समीक्षा गवाह है। अ॰ सा॰ 5 सूचक है जो चश्मदीद गवाह है। अ॰ सा॰ 6 अ॰ सा॰ 5 का भाई है और वह भी चश्मदीद गवाह है। अ॰ सा॰ 7 वह गवाह है जिसने हैंडपंप के निकट मृत शरीर देखा था। अ॰ सा॰ 8 अन्वेषण अधिकारी है।

4. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रमोद कुमार ने निवेदन किया कि यह आश्चर्यजनक है कि शाम में ही प्राथमिकी दर्ज नहीं की गयी थी और अगले दिन पुलिस ने अभिकथित अपराध होने की गुप्त सूचना पर प्राथमिकी दर्ज किया। गाँव का चौकीदार जो केवल एक किलोमीटर दूर रहता है, को भी सूचित नहीं किया गया था। अभिसाक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभाष है तथा अपराध में अभिकथित तौर पर प्रयुक्त हथियार बरामद नहीं किया गया है। न तो रक्त रंजित मिट्टी और न ही रक्त रंजित वस्त्र का रासायनिक परीक्षण किया गया है और न ही विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। अ॰ सा॰ 7 ने कहा कि अपीलार्थीगण उसके साथ पशु चराने गए थे। यद्यपि, यह दीपावली की शाम थी और स्वतंत्र गवाह निश्चय ही उपलब्ध होंगे, किंतु उनमें से किसी का परीक्षण नहीं किया गया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने आक्षेपित निर्णय का पूरा समर्थन किया है।

6. हमारे मत में, अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध किया है। डॉक्टर ने यह संपुष्ट करते हुए कि मृतका की गर्दन काट दी गयी थी, घटना के तरीके का पूरा समर्थन किया है, उन्होंने मृतका की उंगलियों में भी कुछ उपहतियों को पाया था। चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 5 और 6 के बयान पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। अ॰ सा॰ 7 ने कथन किया है कि शाम में अपीलार्थीगण पशु चराने के बाद उसके साथ लौटे थे। यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिकथित घटना के समय पर, जो शाम में हुई थी, अपीलार्थीगण उपस्थित नहीं हो सकते थे। यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है। अत:, प्रहार के हथियार का जब्त नहीं किया जाना और रक्तरंजित मिट्टी अथवा रक्तरंजित वस्त्र के रासायनिक विश्लेषण रिपोर्ट का प्रस्तुत नहीं किया जाना अभियोजन मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर रहा है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन कि गर्दन काटने का अभिकथन केवल अपीलार्थी सं॰ 2 सिरिल बरला के विरुद्ध है और अपीलार्थी सं॰ 1 साइमन बरला के विरुद्ध नहीं है। ऐसे निवेदन को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभियोजन मामला संगति में है कि साइमन बरला मृतका का पैर पकड़े था और सिरिल बरला गर्दन काट रहा था। इस प्रकार, दोनों ने मृतका की हत्या करने के आशय से भाग लिया था।

7. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, हम आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं देखते हैं। तद्नुसार, इस अपील को खारिज किया जाता है।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

कमलेश प्रसाद सिन्हा एवं अन्य (4016 में)

संजय कुमार एवं एक अन्य (5017 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P.(S) Nos. 4016 of 5017 of 2011. Decided on 20th December, 2011.

सेवा विधि–प्रोन्नति–रद्दकरण–स्थापन समिति की अनुशंसा के आधार पर उत्पाद शुल्क निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति रद्द की गयी–मंजूर पदों के परे स्थापन समिति द्वारा प्रोन्नतियाँ गलत रूप से दी गयी थी जो पूर्णतः अवैध थी–प्रोन्नति एक माह की अवधि के भीतर वापस ले लिया गया था–प्रोन्नति द्वारा भरी जानेवाली 13 स्पष्ट रिक्तियों की दृष्टि में याची के मामले पर विचार करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देते हुए याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–M/s Anuj Kumar, For the Petitioners; J.C. to S.C. I, For the Respondents.

आदेश

याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याचीगण दिनांक 8 जुलाई, 2011 के मेमो सं॰ 1605 (डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 4016 वर्ष 2011 में परिशिष्ट-9 और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5017 वर्ष 2011 में परिशिष्ट 8), जो दिनांक 8 जुलाई, 2011 का आदेश अंतर्विष्ट करता है, को चुनौती दे रहे हैं जिसके द्वारा स्थापन (सिक) कमिटि की अनुशंसा के आधार पर उत्पाद शुल्क निरीक्षक के पदों पर याचीगण को दी गयी प्रोन्नति रद्द कर दी गयी है। पहले, दिनांक 3 जून, 2011 को प्रोन्नतियाँ दी गयी थी और पूर्वोक्त आदेश के तहत इन प्रोन्नतियों को वापस ले लिया गया था।

2. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि नियमावली के अनुसार, उत्पाद शुल्क निरीक्षक के कुल रिक्त पदों का 50% प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा और अन्य 50% प्रोन्नति द्वारा भरा जाना है और याचीगण को प्रोन्नति दिए जाते समय उत्पाद शुल्क निरीक्षक के 37 पदों में से केवल आठ रिक्त थे और कुछ गलत संगणना के कारण स्थापन कमिटि द्वारा गलत रूप से याचीगण को प्रोन्नतियाँ दी गयी थी और उक्त प्रोन्नति के बाद 37 मंजूर पदों के विरुद्ध 40 उत्पाद शुल्क निरीक्षक हो गए अर्थात् कार्यरत निरीक्षकों की संख्या मंजूर पदों की तुलना में अधिक थी। अतः, याची को गलत रूप से दी गयी प्रोन्नति एक माह की अवधि के भीतर वापस ले ली गयी थी। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि उक्त स्थापना कमिटि को अनुशंसा करते हुए उल्लिखित करना चाहिए था कि रिक्ति की स्थिति क्या थी और प्रोन्नति का पात्रता मापदंड क्या था। स्थापना कमिटि के उक्त अनुशंसा की कार्यवाही में इन समस्त कारकों ने कोई स्थान नहीं पाया था।

3. किंतु, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा आश्वासन दिया गया है कि अब उत्पाद शुल्क निरीक्षकों की नियमित प्रोन्नति के बाद, उत्पाद शुल्क निरीक्षक के रिक्त पद की कुल संख्या 13 हो गयी है और उपायुक्त, उत्पाद शुल्क विभाग (मुख्यालय), झारखंड सरकार, राँची से अनुदेश के मुताबिक उत्पाद शुल्क

निरीक्षक के इन 13 पदों को निगरानी प्रमाण पत्र, आदि समुचित प्रक्रियाओं का अनुसरण करने के बाद प्रोन्नति द्वारा भरा जाएगा और इसलिए, उत्पाद शुल्क निरीक्षक के पद पर उनकी प्रोन्नति के लिए भी याचीगण के मामले पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को तीन सप्ताह का समय प्रदान किया जा सकता है।

4. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और प्रतिशपथ पत्र को देखने पर, यह प्रतीत होता है कि नियमावली के मुताबिक उत्पाद शुल्क निरीक्षक के कुल रिक्त पदों का 50% प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा और अन्य 50% प्रोन्नति द्वारा भरा जाना है, और याचीगण को प्रोन्नति दिए जाने के समय उत्पाद शुल्क निरीक्षक के 37 पदों में से केवल आठ रिक्त थे और कुछ गलत संगणना के कारण स्थापन कमिटि द्वारा गलत रूप से याचीगण को प्रोन्नति दी गयी थी और उक्त प्रोन्नति के बाद 37 मंजूर पदों के विरुद्ध 40 उत्पाद शुल्क निरीक्षक हो गए थे अर्थात् कार्यरत लोगों की संख्या मंजूर पदों की तुलना में अधिक थी जो पूर्णत: अवैध है। अत:, याचीगण को गलत रूप से दी गयी प्रोन्नति एक माह की अवधि के भीतर वापस ले ली गयी थी। (डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 4016 वर्ष 2011 में दाखिल प्रतिशपथ पत्र में पैरा सं० 7(i) में और डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 5017 वर्ष 2011 में दाखिल प्रतिशपथ पत्र के पैरा सं० 15) में आगे आश्वासन दिया गया है कि अब उत्पाद शुल्क निरीक्षक के पद पर 13 स्पष्ट रिक्तियाँ उपलब्ध हैं जिन्हें प्रोन्नति द्वारा भरा जाना है और प्रत्यर्थीगण समुचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद याचीगण के मामले पर विचार करने के इच्छुक हैं जिसके लिए उन्हें तीन सप्ताह के समय की आवश्यकता है।

5. अत:, मैं प्रतिशपथ पत्र (डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 4016 वर्ष 2011 में दाखिल प्रतिशपथ पत्र के पैरा सं० 7 (i) और डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 5017 वर्ष 2011 में दाखिल प्रतिशपथ पत्र में पैरा सं० 15) में स्वीकृत तथ्य के प्रकाश में याचीगण के मामले पर विचार करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देता हूँ कि अब प्रोन्नति द्वारा भरी जाने वाली 13 स्पष्ट रिक्तियां है। यह निर्णय इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से शीघ्रतापूर्वक जितना जल्द संभव और व्यावहारिक हो, तीन सप्ताह के भीतर याची अथवा उसके प्रतिनिधि को सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के बाद याची के प्रति प्रयोज्य विधि, नियमों, विनियमों, नीतियों और सरकारी प्रवर्तनीय आदेशों के अनुरूप निगरानी प्रमाण पत्र आदि जैसी समुचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया जाएगा।

6. याची के अधिवक्ता पूर्वोक्त निर्देश से संतुष्ट हैं और इस न्यायालय के समक्ष प्रार्थना की गयी है कि प्रत्यर्थीगण मामले को विनिश्चित करने में अनावश्यक लंबा समय न लें और कि उन्हें इस न्यायालय द्वारा अनुबंधित तीन सप्ताह के समय का पालन करना चाहिए जिसके भीतर पात्र उम्मीदवारों को प्रोन्नति प्रदान कर दी जाय।

7. अत:, राज्य के उच्चतर श्रेणी के अधिकारियों से आशा की जाती है कि इस न्यायालय द्वारा अनुबंधित पूर्वोक्त समय सीमा के भीतर आवश्यक प्रक्रियाओं को पूरा कर लिया जाएगा।

8. पूर्वोक्त अंतिम आदेश के प्रकाश में पहले दिया गया अंतरिम अनुतोष रिक्त किया जाता है।

9. पूर्वोक्त निर्देशों की दृष्टि में यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मेसर्स गोयल इंटरप्राइजेज

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 28 of 2008. Decided on 22nd December, 2011.

परिवाद केस सं॰ C/1181 वर्ष 2001, टी॰ आर॰ सं॰ 976 वर्ष 2007 में श्री आसिफ इकबाल, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 8.10.2007 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धाराएँ 138 एवं 87—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–चेकों में तात्विक परिवर्तन पाए गए–चेक पूर्णतः शून्य थे और अभियुक्त को धारा 138 के अधीन अपराध का दोषी नहीं पाया जा सकता था–दोषमुक्ति का निर्णय अभिपुष्ट किया गया। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.–(2002)1 SCC 97—Distinguished; 2004 (4) JLJR 317; 2005 (4) East Cr. C. 98—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Kumar, For the Appellants; APP, For the State; Mr. Kripa Shankar Nanda, For the Respondent No. 2.

आदेश

दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह अपील परिवाद मामला सं॰ C/1181 वर्ष 2001, टी॰ आर॰ सं॰ 976 वर्ष 2007 में श्री आसिफ इकबाल, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसके बाद 'एन॰ आई॰ एक्ट' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी–परिवादी द्वारा दाखिल परिवाद मामले में अवर न्यायालय ने न्यायनिर्णयन पर प्रत्यर्थी अभियुक्त को आरोपित अपराध का दोषी नहीं पाते हुए उसको दोषमुक्त कर दिया है।

3. अपीलार्थी परिवादी का मामला, जैसा परिवादी मेसर्स गोयल इंटरप्राइजेज द्वारा दाखिल परिवाद याचिका में बनाया गया है, यह है कि परिवादी इस्पात सामग्रियों के व्यवसाय में लगा हुआ है और इसने मेसर्स एवरेस्ट इलेक्ट्रिकल एण्ड इंजीनियरिंग कंपनी प्रा॰ लि॰ को उधार पर इस्पात सामग्रियों की आपूर्ति की, जिसके अनुसरण में, अभियुक्त इष्ट नारायण मिश्रा ने उक्त कंपनी का प्रबंध निदेशक होने के नाते परिवादी के पक्ष में दो एकाउंट पेई चेकों–51,044/- रुपयों के लिए चेक सं॰ 0956555 और 1,10,115/- रुपयों के लिए चेक सं॰ 0956556 जारी किया, जिन्हें दिनांक 14.9.2000 को जारी किया गया था और वे स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, एस॰ एस॰ आई॰ आदित्यपुर शाखा, जमशेदपुर के थे। चेकों को बैंक में जमा किया गया था, किंतु इनका अनादर किया गया था और कारण ''एक्सीड एरेंजमेंट'' बताते हुए बैंक रिटर्न मेमो के साथ दिनांक 13.1.2001 को लौटा दिया गया था। बाद में, परिवादी ने चेकों की राशि की मांग करते हुए, अभियुक्त को दिनांक 19.1.2001 को मांग की कानूनी नोटिस तामील किया किंतु जब राशि का भुगतान नहीं किया गया था, अधिनियम की धारा 138 के अधीन परिवादी द्वारा परिवाद मामला दाखिल किया गया था।

4. अवर न्यायालय में, परिवादी के प्राधिकृत एटॉर्नी अर्थात् हरदीप सिंह का परीक्षण सी॰ डब्ल्यू॰–1 के रूप में किया गया था, जिसमें उसने परिवाद मामले के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है। उन्होंने अपना

प्राधिकार पत्र सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया था। उन्होंने चेकों को भी सिद्ध किया है जिन्हें प्रदर्शों 2 और 2/1 के रूप में चिन्हित किया गया है। उन्होंने बैंक के रिटर्न मेमो को सिद्ध किया है जिन्हें प्रदर्श 3 के रूप में चिन्हित किया गया है। इस गवाह ने मांग के कानूनी नोटिस को भी सिद्ध किया है, जिन्हें प्रदर्श 5 के रूप में चिन्हित किया गया है। मांग की नोटिस भेजने की डाक रसीदों को प्रदर्शों 6 और 6/1 के रूप में चिन्हित किया गया है। देय अभिस्वीकृति भी सिद्ध की गयी है जिसे प्रदर्श 7 के रूप में चिन्हित किया गया है। चेकों के बारे में उनके प्रति-परीक्षण में उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया है कि चेकों की तिथियों में कोई प्रक्षेप था।

5. अभिलेखों के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि यद्यपि बचाव पक्ष द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य नहीं दिया गया है किंतु कुछ दस्तावेजी साक्ष्यों को दिया गया है जिन्हें प्रदर्शों के रूप में चिन्हित किया गया है।

6. इस चरण पर, यह कथन किया जा सकता है कि चेकों, जिन्हें इस मामले में प्रदर्शों 2 और 2/1 के रूप में सिद्ध किया गया है, के कोरे परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि चेकों की तिथियों में प्रक्षेप है। चेक 14.9.2001 के हैं और चेकों का कोरा परिशीलन दर्शाता है कि अंक '4' के ऊपर लिप्त लेखन है और माह '4' पर भी लिप्तलेखन किया गया है और दोनों चेकों में '9' बनाया गया है। इन चेकों में से किसी पर भी लिप्तलेखन पर चेक लिखने वाले का पृष्ठांकन या हस्ताक्षर नहीं है।

7. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवाद मामला दाखिल करने के पहले समस्त सांविधिक आवश्यकताओं को पूरा किया गया था, क्योंकि चेकों को सम्यक् तिथि के भीतर बैंक में जमा किया गया था और चेकों के अनादर के बारे में सूचना प्राप्त करने पर विहित अवधि के भीतर प्रत्यर्थी अभियुक्त को नोटिस दिया गया था और जब प्रत्यर्थी अभियुक्त द्वारा भुगतान नहीं किया गया था, एन॰ आई॰ एक्ट द्वारा विहित अवधि के भीतर परिवाद दाखिल किया गया था।

8. तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि एन॰ आई॰ एक्ट की धाराओं 118 और 139 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा है, किंतु अभियुक्त उक्त उपधारणा का खंडन करने में विफल रहा है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स भारत सेल्स निगम बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य,** 2004 (4) JLJR 317, मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी विपरीत साक्ष्य की अनुपस्थिति में धाराओं 138 और 139 के अधीन उपधारणा अभिभावी होती है और इस तथ्य की दृष्टि में कि उक्त मामले में परिवादी द्वारा दिए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य को अभिव्यक्त करने के लिए अवर न्यायालय द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया था, इस न्यायालय ने आदेश को अपास्त कर दिया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और साक्ष्य पर पुनर्विचार करने के लिए मामला अवर न्यायालय को वापस भेज दिया। विद्वान अधिवक्ता ने **एस॰ एम॰ एस॰ फार्मास्यूटिकल्स लि॰ बनाम नीता भल्ला एवं एक अन्य, 2005 (4) East Cr. C 98 (SC),** मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ चेक बाउंस हो जाता है, बाउंस होने वाले चेक का हस्ताक्षरकर्ता अपराध में फँसाने वाले कृत्य के लिए स्पष्टत: जिम्मेदार है और उसे एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 141(2) के अधीन दायित्व धारण करना होगा। विद्वान अधिवक्ता ने **वीरा एक्सपोर्ट्स बनाम टी॰ कलावती, (2002)1 SCC 97,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि इसकी वैधता अवधि के अवसान के बाद लेखीवाल द्वारा (चेक सहित) परक्राम्य लिखत के स्वैच्छिक पुनर्विधिमान्यकरण के विरुद्ध कोई वर्जना नहीं है। इस निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भले ही चेकों की तिथियों पर लिप्त लेखन था, यह चेकों के पुनर्विधिमान्यकरण के तुल्य होगा।

9. वीरा एक्सपोर्ट्स (ऊपर) के मामले में चेक पर तिथि का परिवर्तन चेक के लेखीवाल के पृष्ठांकन के अधीन था, किंतु वर्तमान मामले में तिथियों पर लिप्त लेखनों के नीचे चेकों के लेखीवाल का पृष्ठांकन अथवा हस्ताक्षर नहीं था। इसके अतिरिक्त, यह परिवादी का मामला नहीं है कि चेकों के अवसान के बाद इन्हें लेखीवाल द्वारा अथवा उसकी सहमति से पुनर्विधिमान्य किया गया था। बल्कि, परिवादी का विनिर्दिष्ट मामला यह है कि चेकों को दिनांक 14.9.2000 को ही जारी किया गया था। इस प्रकार, इस मामले के तथ्यों पर यह निर्णय प्रयोज्य नहीं है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि चेकों में प्रक्षेप है और तद्नुसार एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 87 जो कहती है कि परक्राम्य लिखत का कोई तात्विक परिवर्तन इसे शून्य बना देता है, की दृष्टि में चेक शून्य हो गए थे। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस तथ्य की चेक शून्य थे कि दृष्टि में अवर न्यायालय द्वारा अपराध के लिए प्रत्यर्थी अभियुक्त का विचारण नहीं किया जा सकता था और अवर न्यायालय ने सही प्रकार से यद्यपि अन्य वैध आधारों पर, प्रत्यर्थी अभियुक्त को दोषमुक्त किया है। इस प्रकार, अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।

11. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिशीलन पर मैं पाता हूँ कि चेक जिन्हें इस मामले में सिद्ध किया गया है, स्पष्टत: दर्शाते हैं कि इनमें तात्विक परिवर्तन हैं क्योंकि दोनों चेकों में तिथि '14.4.2000' को '14.9.2000' के रूप में परिवर्तित किया गया है और चेकों के लेखीवाल द्वारा उस पर पृष्ठांकन अथवा हस्ताक्षर नहीं है। एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 87 का पठन निम्नलिखित है:–

> *"87.* ***rkfRod ifjoru dk iHkko–*** *&ijØkE; fy[kr dk dkbZ Hkh rkfRod ifjoru mlls fdlh ds fo#) Hkh] tks fd ,sls ifjoru ds le; mldk i{kdkj vkSj mlds çfr lEer ugha gvk g] rc ds fly ok; 'kU; dj nrk g] tcfd ;g ifjoru ey i{kdkjks ds lkekU; vk'k; dks ijk djus ds fy, fd;k x;k gk(**"*

12. एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 87 आज्ञापक प्रावधान है और मामले के इस दृष्टि में चेक, जिन्हें न्यायालय में प्रस्तुत करने के पहले तात्विक रूप से परिवर्तित किया गया था और इस प्रभाव के साक्ष्य के बिना कि किस प्रकार चेकों में उक्त परिवर्तन किए गए थे, पूर्णत: शून्य थे और उक्त शून्य चेकों के आधार पर एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अभियुक्त को दोषी नहीं पाया जा सकता था। इस तर्क की दृष्टि में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए अन्य तर्क अब केवल एकेडमिक महत्व के हैं, जिन पर वर्तमान मामले में चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

13. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि उक्त शून्य चेकों, जिन्हें अवर न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है और प्रदर्शों 2 और 2/1 के रूप में चिन्हित किया गया है और चेकों की तिथियों में तात्विक परिवर्तन होने के नाते, इनके आधार पर प्रत्यर्थी अभियुक्तों को एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध का दोषी नहीं पाया जा सकता था।

14. तद्नुसार, मैं प्रत्यर्थी अभियुक्त की दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करने लायक कोई सामग्री नहीं पाता हूँ। इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है, जो तद्नुसार विफल है और एतद् द्वारा इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

मेसर्स भारत कोकिंग कोल लि० के जीलगोरा कोलियरी के प्रबंधन के संबंध में नियोक्तागण

cuke

पीठासीन अधिकारी, केंद्र सरकार औद्योगिक अधिकरण सं० 2 एवं एक अन्य

L.P.A. No. 505 of 2002. Decided on 8th December, 2011.

सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 3286 वर्ष 1994 (R) में पारित दिनांक 22.8.2002 के निर्णय के विरुद्ध।

श्रम एवं औद्योगिक विधि–50% पिछली मजदूरी के साथ सेवा से सेवा समाप्ति का आदेश अपास्त किया गया–कर्मकार वर्ष 1965 के पहले से नियोजन में था और वर्ष 1976 में उसे काम करने से रोक दिया गया था–उसने अनेक वर्ष पहले अधिवर्षिता आयु प्राप्त किया था–उसने वेतन और अन्य मजदूरी प्राप्त किया था जब वह सेवा में था–पुनर्बहाली और संपूर्ण बकाया मजदूरी के बदले कर्मकार 1,50,000/- रुपयों का हकदार होगा। (पैराएँ 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Mehta, For the Appellant; Mr. A.K. Das, For the Respondent.

आदेश

न्यायालय द्वारा–पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 3286/1994R में दिनांक 22 अगस्त, 2002 को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से व्यथित है जिसके द्वारा केंद्र सरकार औद्योगिक अधिकरण सं० 2, धनबाद द्वारा दिनांक 13 मई, 1994 को पारित अधिनिर्णय को मान्य ठहराते हुए प्रबंधन की रिट याचिका खारिज कर दी गयी थी।

3. विवाद इस कारण से उद्भूत हुआ कि तत्कालीन ईस्ट इंडिया कोल कंपनी में, जब जीलगोरा कोलियरी में कार्यरत 500 कर्मकारों को काम करने से रोक दिया गया था, पटना उच्च न्यायालय में सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 995/1976 दाखिल की गयी थी और उस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच समझौता हुआ था जिसके अधीन कर्मचारियों की पहचान के बाद नियोजन दिया गया था। समझौते की दृष्टि में प्रत्यर्थी, जिसने स्वयं को शिवचंद उर्फ सुदर्शन होने का दावा किया था, ने दिनांक 17.10.1981 को नियुक्ति पाया और वर्ष 1987 तक काम करना जारी रखा जब उसे किसी महिला, जिसने स्वयं को शिवचंद की पत्नी होने का दावा किया, द्वारा अभिकथित रूप से दाखिल परिवाद, जिसमें कथन किया गया था कि उसके पति की मृत्यु लगभग चार वर्ष पहले हो गयी थी और प्रत्यर्थी ने स्वीकृत रूप से अपना नाम और पता बदलने के लिए आवेदन दिया था। प्रत्यर्थी-कर्मकार के अनुसार जब उसने अपना नाम और पता बदलने के लिए आवेदन दिया, केवल तब विवाद उद्भूत हुआ। प्रत्यर्थी कर्मकार ने शिवचंद की अभिकथित पत्नी परिवादी की पहचान को भी चुनौती दिया। किंतु, जाँच करने के बाद कर्मकार के विरुद्ध आरोप सिद्ध पाया गया था और उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी थी और दिनांक 11 दिसंबर, 1990 के आदेश के तहत न्यायनिर्णयन के लिए निम्नलिखित विवाद अधिकरण को निर्दिष्ट किया गया था:–

> *^^D;k Jh f'kopn mQ ln'ku dk lok l c[kkLr djus e ell chO lhO lhO ,yO] ihO vkO thyxkjk] ftyk èkuckn d thyxkjk dkfy;jh d çcèku dh dkjokb U;k;kfpr g\ ;fn ugh] rk dedkj fdl vurk"k dk gdnkj g***

4. विद्वान अधिकरण ने साक्ष्य के अधिमूल्यन के बाद, कर्मकार के अभिवचन में सार पाया कि शिवचंद की अभिकथित पत्नी भमिया देवी, परिवादी की पहचान स्थापित नहीं की गयी थी। अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि गवाहों, एम॰ डब्ल्यू॰ 4 श्री जोधाई जयसवारा और एम॰ डब्ल्यू॰ 5 गनोरी पासवान के आचरण ने गवाहों के बयान की विश्वसनीयता के बारे में संदेह सृजित किया जिन्होंने अभिकथित किया था कि वे वास्तविक कर्मचारी को जानते थे परन्तु लंबी अवधि तक प्रबंधन को सूचित नहीं किया और न ही उन्होंने वास्तविक कर्मकार के परिवार के सदस्यों को इस तथ्य को सूचित किया। अत:, कर्मकार के विरुद्ध साक्ष्य को अस्वीकार करने और कर्मकार के अभिवचन को स्वीकार करने के बाद अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि कर्मकार को दोषी अभिनिर्धारित करने वाला निर्णय अपास्त किए जाने का दायी है। अधिकरण ने 50% पिछली मजदूरी भी अधिनिर्णीत किया।

5. इस न्यायालय के समक्ष अधिनिर्णय को चुनौती दी गयी थी जैसा ऊपर कथन किया गया है और यह अभिनिर्धारित करते हुए कि रिट अधिकारिता में न्यायालय साक्ष्य, जिस पर पहले ही अधिकरण द्वारा विचार किया गया था, का पुनर्आकलन और पुनर्अधिमूल्यन करने नहीं जा रहा है, रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था।

6. प्रबंधन की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि अधिकरण ने विनिर्दिष्टत: अभिलिखित किया था कि घरेलू जाँच निष्पक्ष थी और इसकी औचित्यता चुनौती के अधीन नहीं थी और उस स्थिति में निर्देश को प्रबंधन द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील मानते हुए अधिकरण के पास दर्ज निष्कर्ष को उलटने की अधिकारिता नहीं थी।

7. प्रत्यर्थी कर्मकार के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने उन निवेदनों को दोहराया जिन्हें अधिकरण के समक्ष किया गया था और कथन किया कि जब एक बार अधिकरण इस निष्कर्ष पर आया था कि आदेश पूर्णत: अप्रासंगिक साक्ष्य पर आधारित था, साक्ष्य से निष्कर्ष निकाले जाने को तथ्य का प्रश्न नहीं कहा जा सकता है और अधिकरण निर्देश मामला में अधिकारिता का प्रयोग करके जाँच में निकाले गए गलत निष्कर्ष को निश्चय ही सुधारा जा सकता था।

8. यह विवाद में नहीं है कि कर्मकार वर्ष 1965 के पहले से नियोजन में था; वर्ष 1976 में उसे काम करने से रोक दिया गया था; यूनियन के माध्यम से कर्मकार द्वारा दाखिल रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष लंबित थी; उस अवधि के दौरान, पक्षों के बीच समझौता हुआ था और स्पष्टत: तथ्य को सत्यापित करने के बाद प्रबंधन द्वारा नियुक्ति दी गयी थी और निर्विवादत: कर्मचारी ने अपने नाम की परिशुद्धि के लिए आवेदन दिया था, किंतु उसके पहले व्यक्ति की पहचान को सत्यापित करके प्रबंधन द्वारा नियुक्ति दी गयी थी क्योंकि यह कर्मकार को नियोजन देने की शर्तों में एक था और प्रबंधन द्वारा इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि यह नियुक्ति देने के लिए पुरोभाव्य शर्त थी।

9. चूँकि कर्मचारी वर्ष 1965 के पहले का था और वर्ष 1981 में नियुक्ति पा सका था और वर्ष 1987 तक सेवा दिया था, आज वह सेवा में नहीं है, क्योंकि उसने निश्चय ही अनेक वर्ष पहले अधिवर्षिता आयु प्राप्त कर लिया था। जहाँ तक उसके वेतन और अन्य मजदूरी का संबंध है, उसने उन्हें पाया था जब वह वर्ष 1981 से वर्ष 1987 तक सेवा में था। अत:, इन विचित्र तथ्यों और परिस्थितियों में और इस तथ्य को ध्यान में लेते हुए कि अधिकरण ने भी काफी पहले वर्ष 1994 में 50% पिछली मजदूरी अधिनिर्णीत किया था, हमारा सुविचारित मत है कि पुनर्बहाली का आदेश पारित करने के बजाय केवल ऊपर उपदर्शित सेवावधि के लिए उसके समस्त लाभों को संतुष्ट करने के लिए कर्मकार को एकमुश्त राशि देना समुचित होगा और हम इसे 1,50,000/- (एक लाख पचास हजार) रुपयों पर नियत करते

हैं। अत: विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आपेक्षित निर्णय और अधिनिर्णय इस सीमा तक उपांतरित किया जाता है कि पुनर्बहाली और किसी पूर्ण एवं अंतिम पिछली मजदूरी के बदले कर्मकार प्रबंधन से 1,50,000/- (एक लाख पचास हजार) रुपया पाने का हकदार होगा, जिसका भुगतान प्रबंधन द्वारा प्रत्यर्थी कर्मकार को आज के दिन से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर किया जाएगा।

तद्नुसार यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

रेणु कुमारी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2932 of 2006. Decided on 16th November, 2011.

(क) भारत का संविधान–अनुच्छेद 14—अनेक वर्षों की सेवा देने के बाद शिक्षा दूत के पद से सेवा समाप्ति–याची सरकारी प्राधिकारियों से वेतन पा रही थी–कोई नोटिस दिए बिना और कोई जाँच किए बिना याची की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया–आक्षेपित आदेश अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है। (पैराएँ 7 एवं 8)

(ख) व्यवहार एवं प्रक्रिया–आक्षेपित आदेश में ही कारणों को उल्लिखित किया जाना चाहिए–प्रतिशपथ पत्र में दिए गए कारणों को पढ़ा नहीं जा सकता है। (पैरा 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1952 SC 16; (1978) 1 SCC 405—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s M.M. Pan, Praveen Kumar, For the Petitioner; J.C. to S.C.-III, For the Respondents.

आदेश

याची के अधिवक्ता इस याचिका के पक्षकार प्रत्यर्थी के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 1 का विलोपन करने की अनुमति इप्सित करते हैं।

2. पक्षकार प्रत्यर्थी के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 7 के विलोपन की अनुमति, जैसी इप्सित की गयी है, प्रदान की जाती है।

3. आज की कार्यवाहियों के दौरान लाल स्याही से संशोधन किया जाएगा।

4. याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को वर्तमान याचिका के मेमो के परिशिष्ट–1 पर आदेश के तहत दिनांक 15 नवंबर, 2002 को ''शिक्षा दूत'' के पद पर विधिपूर्वक नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात्, याची ने ईमानदारी, विश्वास और मेहनत से और प्रत्यर्थीगण के संतोषानुसार अनेक वर्षों तक काम किया।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि याची को नोटिस दिए बिना और सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना याची की सेवाएँ दिनांक 10 जनवरी, 2006 के प्रभाव से (परिशिष्ट–2) समाप्त कर दी गयी हैं और इसलिए, प्रार्थना की गयी है कि परिशिष्ट–2 पर दिनांक 10 जनवरी, 2006 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जा सकता है जहाँ तक यह वर्तमान याची की सेवा समाप्ति से संबंधित है।

6. प्रत्यर्थी राज्य के अधिवक्ता यह इंगित करने में विफल रहे हैं कि किन कारणों से वर्तमान याची की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया है। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि वर्तमान याची के विरुद्ध कतिपय परिवाद प्राप्त किया गया था और जाँच संचालित की गयी थी और रिपोर्ट दिया गया था जो प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–A पर है और इस रिपोर्ट के आधार पर वर्तमान याची की सेवाओं को समाप्त किया गया है। दिनांक 8 सितंबर, 2005 का रिपोर्ट प्रखंड शिक्षा प्रसार पदाधिकारी, गम्हरिया, सरायकेला–खरसावाँ द्वारा दिया गया था।

7. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के परिशीलन पर, मैं मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से वर्तमान याचिका के मेमो के परिशिष्ट–2 पर दिनांक 10 जनवरी, 2006 के वर्तमान याची की सेवा समाप्ति के आदेश को अपास्त और अभिखंडित करता हूँ:–

*(i) oreku ;kph dk oreku ;kfpdk d eek d ifjf'k"V&1 ij fnukd 15 uocj] 2002 d vkn'k d rgr ^^f'k{kknr** d :i e fu;Dr fd;k x;k FkkA*

*(ii) ekey d rF;k l vkx çrhr gkrk g fd ;kph u vud ekg vkj vud o"kk rd bekunkjh] fo'okl] egur vkj çR;Fkhx.k d lrk"kkulkj ^^f'k{kknr** d :i e dke fd;kA ;kph çR;Fkh ljdkjh çkfèkdkfj;k l oru Hkh ik jgh FkhA*

(iii) vkx çrhr gkrk g fd ;kph dk dkb ukfVl fn, fcuk vkj dkb tkp fd, fcuk ;kph dh lok, ifjf'k"V&2 ij fnukd 10 tuojh] 2006 d vkn'k d rgr lekIr dj nh x;h gA mDr vkn'k e dkb Hkh l;kX; dkj.k ugh fn;k x;k gA vr%] vkn'k dkj.k jfgr vkn'k g vkj blfy,] ulfxd U;k; d fl)kr dk ?kkj mYy?ku gvk g vkj pfd vkn'k dkj.kjfgr vkn'k g] ;g eueku çÑfr dk gA tc dHkh Hkh depkjh dh lok lekfIr e euekukiu gkrk g] lno lekurk d vfèkdkj dk mYy?ku gkrk g vkj blfy, vk{kfir vkn'k Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 14 dk mYy?ku djrk gA

(iv) çR;Fkhx.k d vfèkoDrk u fuonu fd;k fd ç[kM f'k{kk ilkj inkfèkdkjh }kjk tkp lpkfyr fd;k x;k g tk çfr'kiFk i= d ifjf'k"V&A ij gA çfr'kiFk i= d ifjf'k"V&A d ifj'khyu ij çrhr gkrk g fd rFkkdfFkr tkp ,di{kh; :i l lpkfyr dh x;h FkhA bl tkp d fy, Hkh ;kph dk de l de ukfVl fn;k tkuk pkfg, Fkk rkfd ;kph viu fo#) fd, x, vfHkdFkuk dk mÙkj n ldA bld vfrfjDr] ifjf'k"V&A ij rFkkdfFkr fjikV dh çfr] ;fn ;kph dh lok dk lekIr dju d fy, bl ij fo'okl fd;k x;k Fkk] dh vkifr ;kph dk dh tkuh pkfg, FkhA ;kph dk fjikV dh çfr dh vkifr dHkh ugh dh x;h FkhA vr% ;kph dh lok lekfIr d fy, rFkkdfFkr fjikV çklfxd ugh gA

(v) bld vfrfjDr] tlk ;gk Åij dFku fd;k x;k g] fd ifjf'k"V&2 ij fnukd 10 tuojh] 2006 dk vk{kfir vkn'k ijh rjg l dkj.kjfgr vkn'k g vkj blfy, ifyl vk;Dr] ckEc cuke xkjèkunkl Hktk] AIR 1952 SC 16, ekey e fo'k"kr% ijkxkQ e ekuuh; lokPp U;k;ky; }kjk fn, x, fu.k; d erkfcd çfr'kiFk i= e dkb dkj.k ugh fn;k tk ldrk g] ftUg vk{kfir vkn'k e dHkh

ugh fufn"V fd;k x;k Fkk vU;Fkk leLr dkj.k jfgr vkn'kk dk ldkj.k vkn'k e ifjofrr dj fn;k tk,xk vkj leLr 'kU; vkj voèk vkn'kk dk oèk vkj fofèkd vkn'kk e ifjofrr fd;k tk ldrk gA iokDr fu.k; d ijk 9 dk iBu fuEufyf[kr g%&

"9. vk;Dr d 'kiFki= dk fufn"V djd ;g n'kku dk ç;kl fd;k x;k Fkk fd mudk vkn'k oLrr% mud }kjk ikfjr jídj.k dk vkn'k Fkk vkj fd vkn'k mudk vkn'k Fkk vkj u fd ljdkjh vkn'k FkkA ge Li"V g fd lkfofèkd çkfèkdkj d ç;kx e lkotfud :i l ikfjr lkotfud vkn'kk dk vFk vkn'k ikfjr dju oky vfèkdkjh }kjk ckn e fn, x, Li"Vhdj.kk d çdk'k e ugh yx;k tk ldrk g fd mldk vFk D;k Fkk vFkok mld fnekx e D;k Fkk vFkok mldk vk'k; D;k dju dk FkkA ykd çkfèkdkfj;k }kjk ikfjr ykd vkn'k lkotfud çHkko d fy, gkrk g vkj ; mud Ñ%k vkj vkpj.k dk çHkkfor dju d fy, vk'kf;r gkrk g ftudk bUg lkfèkr fd;k x;k g vkj Lo; vkn'k e ç;Dr Hkk"kk d çfr fun'k e budk vFk oLrijd :i e yxkuk gkxkA**

dkj.kk dk vk{kfir vkn'k e gh mfYyf[kr fd;k tkuk pkfg, Fkk vkj blfy, çfr'kiFk i= e fn, x, dkj.kk dk i<k ugh tk ldrk gA bld vfrfjDr] rFkkdfFkr tkp ;kph dk dkb ukfVl fn, fcuk vkj luokb dk volj fn, fcuk g vkj blfy, Hkh fofèk dh nf"V e bldk dkb eY; ugh gA vr% çfr 'kiFki= d ifjf'k"V A ij çR;Fkx.k }kjk fofèk dh nf"V e fo'okl ugh fd;k tk ldrk g vkj blfy, çR;Fkx.k d vfèkoDrk }kjk mBk;k x;k çfrokn bl U;k;ky; }kjk Lohdkj ugh fd;k x;k gA

(vi) ekfgnj flg fxy ,o ,d vU; cuke e[; puko vk;Dr] u;h fnYyh ,o vU;] (1978)1 SCC 405, ekey e ijk 8 e fuEufyf[kr vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g%&

"8. nljk leku :i l çkfxd ekeyk ;g g fd tc lkfofèkd Ñ%;dkjh dfri; vkèkkjk ij vkèkkfjr vkn'k ikfjr djrk g] rk bldh oèkrk dk fu.k; mfYyf[kr dkj.kk }kjk fd;k tk,xk vkj 'kiFk i= vFkok vU;Fkk d :i e u, dkj.kk }kjk bldh ifr ugh dh tk ldrh gA vU;Fkk] vkjHk e nk"ki.k vkn'k] tc rd ;g pukrh fn, tku d dkj.k U;k;ky; e vkrk g] ckn e fn, x, vfrfjDr vkèkkjk }kjk fofèk ekU; cuk fn;k tk ldrk gA ge ;gk xkjèku nkl Hkuth e ckl] U;k;efr d lç{k.kk dh vkj è;ku vkdf"kr dj ldr g%&

lkfofèkd çkfèkdkj d ç;kx e lkotfud :i l ikfjr lkotfud vkn'kk dk vFk vkn'k ikfjr dju oky vfèkdkjh }kjk ckn e fn, x, Li"Vhdj.kk d vkykd e ugh yxk;k tk ldrk g fd mldk vFk D;k Fkk vFkok mld fnekx e D;k Fkk vFkok mldk vk'k; D;k dju dk FkkA ykd çkfèkdkfj;k }kjk ikfjr ykd vkn'k lkotfud çHkko d fy, gkr g vkj ; mud Ñ%k vkj vkpj.k dk çHkkfor dju d fy, gkr g ftudk bUg lkfèkr fd;k x;k g vkj Lo; vkn'k e ç;Dr Hkk"kk d çfr fun'k e budk vFk oLrijd :i e yxkuk gkxkA**

8. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के कारण, मैं एतद् द्वारा परिशिष्ट–2 पर आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ जहाँ तक यह वर्तमान याची को प्रभावित करता है और जहाँ तक यह वर्तमान याची की सेवा समाप्ति के दिनांक 10 जनवरी, 2006 के आदेश से संबंधित है।

9. याची को अगस्त, 2005 से और इसके आगे पूर्वोक्त पद के लिए मानदेय का भुगतान करना होगा। यदि अगस्त, 2005 से और इसके आगे मानदेय का भुगतान किया जाता है, इसे मुजरा के रूप में दिया जाएगा।

10. तद्नुसार, पूर्वोक्त सीमा तक यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

आर॰ आर॰ सिन्हा (1771 में)

अकबर हुसैन (1773 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

Criminal Appeal Nos. 1771 with 1773 of 2003. Decided on 16th December, 2011.

आर॰ सी॰ केस सं॰ 30(A)/85 (PAT) में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰–सह–प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.11.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420/409/471/467/477A सह–पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धाराएँ 5 (1) (c) और (d)—कपटपूर्वक वापसी करके रेलवे के साथ छल–दोषसिद्धि–लोक सेवक द्वारा बेईमानी से ईमानदार दुर्विनियोग भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1) (c) के अधीन भी अपराध गठित करता है–किंतु, दोनों प्रावधानों के अधीन अपीलार्थीगण को अभियोजित और दंडित नहीं किया जा सकता है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किया गया।(पैराएँ 10 से 15, 22 से 26)

(ख) साधारण खंड अधिनियम, 1897—धारा 26—यदि कोई कृत्य या लोप दो अथवा अधिक अधिनियमनों के अधीन अपराध गठित करता है, तब उस स्थिति में अपराधकर्ता अधिनियमनों में से किसी एक के अधीन अभियोजित और दंडित किए जाने का दायी होता है किंतु दोनों अपराधों के लिए उसे दंडित नहीं किया जाएगा। (पैरा 9)

निर्णयज विधि.–AIR 1955 Allahabad 275; AIR 1991 SC 1394—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s R.K. Singh, Mahesh Tiwari, G.Pathak (in 1771); P.P. N. Roy, Shahid Khan, R. Ansari (in 1773), For the Appellant; M/s Rajesh Kumar, Mokhtar Khan (in both), For the Respondent.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–ये अपीलें आर॰ सी॰ केस सं॰ 30 (A)/85 (PAT) में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰–सह–प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.11.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420/409/471 सह–पठित धाराओं 467/477A के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धाराएँ 5(2) के अधीन दण्डनीय धाराएँ 5(1) (c) और (d) के अधीन भी दोषसिद्ध किया और उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (2) के अधीन 1000/- रुपयों के जुर्माना के साथ तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और आगे उनको भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन किए गए अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन किए गए अपराध के लिए दो वर्षों का कठोर कारावास, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 477A के अधीन किए गए अपराध के लिए 1000/- रुपयों के जुर्माना के साथ दो वर्षों का कठोर कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 467 के अधीन

किए गए अपराध के लिए तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया। उन्होंने आगे आदेश दिया कि समस्त दंडादेश साथ-साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला, जैसा प्राथमिकी (प्रदर्श 1) में अभिकथित किया गया है, यह है कि दोनों अपीलार्थीगण ने अपने अवैध धनीय लाभ के लिए रेलवे के साथ छल करने का षडयंत्र रचा। आगे अभिकथित किया गया है कि पूर्वोक्त षडयंत्र के अनुसरण में उन्होंने लोको फोरमैन, पूर्व रेलवे, धनबाद के यूनिट सं॰ 361 (कार्यालय कर्मचारी) का अप्रिल, मई और जून माह के लिए बढ़ा-चढ़ाकर बिल तैयार किया। तब अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी अकबर हुसैन द्वारा उक्त बिलों पर हस्ताक्षर किया गया था। अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने वरीय खजांची के कार्यालय से पूर्वोक्त इनफ्लेटेड बिलों में उल्लिखित संपूर्ण राशि प्राप्त किया और संवितरण के बाद कपटपूर्वक निकाली गयी आधिक्य राशि अर्थात् 21,708.65/- रुपया अपने पास रख लिया और अपीलार्थी अकबर हुसैन के साथ दुरभिसंधि करके इनका दुर्विनियोग किया।

3. पूर्वोक्त अभिकथन के आधार पर, सी॰ बी॰ आई॰ ने दिनांक 31.10.85 को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 120B/409/420/477A के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (2) सह-पठित धारा 5 (1) (c) और (d) के अधीन आर॰ सी॰ केस सं॰ 30(A)/85 (PAT) संस्थापित किया और अन्वेषण आरंभ किया। आगे प्रतीत होता है कि अन्वेषण पूरा करने के बाद, सी॰ बी॰ आई॰ ने अपीलार्थीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 120B/420/409/467/477A और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) सह-पठित धारा 5(1)(c) और (d) के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया। यह प्रतीत होता है कि उक्त आरोप-पत्र के आधार पर विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ ने पूर्वोक्त अपराधों का संज्ञान लिया और तत्पश्चात भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 120B/420/409/471/467/477A और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(c) और (d) सह-पठित धारा 5 (2) के अधीन आरोपों को विरचित किया और अपीलार्थीगण को स्पष्ट किया जिसके लिए अपीलार्थीगण ने निर्दोषिता का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात, अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल मिलाकर 14 गवाहों का परीक्षण किया। इसने दस्तावेजी साक्ष्य भी दिया जिनका विवरण प्रदर्श सूची में दिया गया है।

4. विद्वान अवर न्यायालय ने अभियोजन मामला के बंद होने के बाद दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण का परीक्षण किया जिसमें उनका बचाव पूरे इनकार का था। आगे प्रतीत होता है कि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने बचाव साक्षी सं॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण कराया।

5. यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद और पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध और दंडादेशित किया, जैसा ऊपर कहा गया है, जिसके विरुद्ध वर्तमान अपीलों को दाखिल किया गया है।

6. अपीलार्थीगण के विद्वान-अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के अधीन भी अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादेशित करके गंभीर अवैधता किया है। निवेदन किया गया है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(c) के अधीन अपराध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध के सदृश है, अतः साधारण खंड अधिनियम की धारा 26 के मुताबिक अपीलार्थीगण को पूर्वोक्त दो अपराधों में से किसी एक के लिए अभियोजित और दंडित किया जा सकता है। यह निवेदन किया गया है कि चूँकि अपीलार्थीगण को दोनों अपराधों के लिए दंडित किया गया था, अतः अवर न्यायालय के निर्णय को संपोषित नहीं किया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण का आधिक्य राशि के दुर्विनियोग का आशय नहीं था क्योंकि स्वीकृत रूप से उक्त राशि प्राथमिकी दर्ज किए जाने के पहले संबंधित प्राधिकारी के पास पहले से ही जमा की जा चुकी थी। आगे निवेदन किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से स्पष्ट है कि अपीलार्थीगण का पूर्वोक्त राशि के दुर्विनियोग का गैर ईमानदार आशय था। इस प्रकार, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार

निवारण अधिनियम की धारा 5 (1) (c) के अधीन भी अपराध निर्मित नहीं हुआ है। आगे निवेदन किया गया है कि यह दर्शाने का साक्ष्य नहीं है अपीलार्थीगण ने राशि के दुर्विनियोग के लिए षडयंत्र रचा था किंतु विद्वान अवर न्यायालय ने किसी साक्ष्य के बिना अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन दोषसिद्ध किया। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश इन अपीलों में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. दूसरी ओर, सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा वेतन बिल तैयार करने के लिए प्राधिकृत नहीं था किंतु उसने अवैध रूप से उक्त बिलों को तैयार किया था और अकबर हुसैन ने उन पर हस्ताक्षर किया था। यह भी निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने स्टाफ को इनका संवितरण करने के लिए वरीय खजांची के कार्यालय से नगद राशि लिया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि कर्मचारी को वेतन का संवितरण करने के बाद उसने बिलों को लौटा दिया था किंतु अतिरिक्त राशि अपने पास रख लिया और इनका दुर्विनियोग किया। यह निवेदन किया गया है कि उच्चतर प्राधिकारी के कहने पर अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने उक्त अतिरिक्त राशि लौटा दिया था। यह निवेदन किया गया है कि सार्वजनिक धन का अस्थायी गबन भी भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(c) के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है जिसमें इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

8. मामले के ताथ्यिक पहलू पर विचार करने के पहले, मैं विधि के बिंदु पर विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए अनेक निवेदनों पर विचार करना समुचित समझता हूँ। साधारण खंड अधिनियम की धारा 26 का पठन निम्नलिखित है:–

> *^^26.* ***nk ;k nk l vfèkd vfèkfu;ek d vèkhu nMuh; vijkèkk d ckj e ikoèkku-&*** *tgk dkb dk; ;k yki nk ;k nk l vfèkd vfèkfu;euk d vèkhu dkb vijkèk xfBr djrk g ogk vijkèkh mu nkuk vfèkfu;euk d ;k mue l fdlh d Hkh vèkhu vfHk;kftr vkj nf.Mr fd, tku d nkf;Ro d vèkhu gkxk fdUr mlh vijkèk d fy, nk ckj nf.Mr fd, tku d nkf;Ro d vèkhu ugh gkxkA**

9. इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधान से देखा जा सकता है कि यदि दो अथवा दो से अधिक अधिनियमनों के अधीन कृत्य अथवा लोप अपराध गठित करता है, तब उस स्थिति में अपराधकर्ता पूर्वोक्त अधिनियमनों में से किसी एक के अधीन अभियोजित और दंडित किया जा सकता है किंतु उसे दोनों अपराधों के लिए दंडित नहीं किया जाएगा।

10. वर्तमान मामले में, दोनों अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(c) के अधीन भी अभियोजित, दोषसिद्ध और दंडादेशित किया गया था। अत:, इस मामले में प्रश्न विचारार्थ उद्‌भूत होता है कि क्या वही कृत्य अथवा लोप भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(c) के अधीन भी अभियोजित, दोषसिद्ध और दंडादेशित किया गया था। अत:, इस मामले में प्रश्न विचारार्थ उद्‌भूत होता है कि क्या वही कृत्य अथवा लोप भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(c) के अधीन भी अपराध गठित करता है। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 निम्नलिखित है:–

> *"èkkjk 409.* ***ykd lod }kjk ;k cdj] 0;kikjh ;k vfHkdrk }kjk vkijkfèkd U;klHkx-*** *&tk dkb ykd lod gkr g, vFkok cdj] 0;kikjh] QDVj] nyky] vVkuh ;k vfHkdrk d :i e viu dkjckj d vuØe e fdlh çdkj lEifUk] ;k lEifUk ij dkb Hkh v[R;kj viu dk U;Lr gkr g, ml lEifUk d fo"k; e vkijkfèkd U;klHkx djxk] og vkthou dkjkokl l] ;k nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l] ftldh vofèk nl o"k rd dh gk ldxh] nf.Mr fd;k tk,xk vkj teku l Hkh] n.Muh; gkxkA*** *¼tkj Mkyk x;k½*

11. पूर्वोक्त प्रावधान के पठन से, यह प्रतीत होता है कि यदि किसी लोक सेवक को संपत्ति न्यस्त किया जाता है और वह उक्त संपत्ति के संबंध में न्यास का दांडिक भंग करता है, तब वह भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन दंडित होने का दायी है। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 405 के अधीन न्यास का दांडिक भंग परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित है:–

> *"405. **vkijkfèkd U;klHkx-**&tk dkb lEifÙk ;k lEifÙk ij dkb Hkh v[R;kj fdlh çdkj viu dk U;Lr fd, tku ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl çdkj ,lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk d fdlh fun'k dk] ;k ,l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHkO;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k O;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; O;fDr dk ,lk djuk lgu djrk g] og ^^vkijkfèkd U;klHkx** djrk gA**"*

इस प्रकार, यदि कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को न्यस्त की जाती है और वह व्यक्ति उस संपत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग करता है, तब वह न्यास के दांडिक भंग का अपराध करता है।

12. बेहतर अधिमूल्यन करने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (1) (c) को उद्धृत करना अनावश्यक नहीं होगा, जो निम्नलिखित है:–

> *^^;g dgk tkrk g fd ykd lod u dÙkO; d fuogu e nkf.Md vopkj dk vijkèk fd;k g] vxj og ,d ykd lod d rkj ij ml U;Lr dh x;h ;k mld fu;=.k dh fdlh lifÙk dk cbekuh l ;k diViod nfofu;kftr djrk g ;k viu mi;kx e lEifjofrr dj yrk g ;k fdlh O;fDr dk ,lk dju nrk gA**"*

13. इस प्रकार, पूर्वोक्त प्रावधानों के संयुक्त पठन पर स्पष्ट है कि यदि लोक सेवक सार्वजनिक धन का बेईमानी से दुर्विनियोग करता है और इसको अपने उपयोग के लिए परिवर्तित करता है, उसे उक्त अपराध के लिए दंडित किया जा सकता है। उक्त परिस्थिति के अधीन वही कृत्य अथवा लोप अर्थात् लोक सेवक द्वारा सार्वजनिक धन का बेईमानी से दुर्विनियोग भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (1)(c) के अधीन भी अपराध गठित करता है।

14. ओम प्रकाश बनाम राज्य, AIR 1955 Allahabad 275, मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया था, जहाँ पूर्वोक्त प्रावधानों पर विचार करने के बाद माननीय न्यायाधीशों ने निष्कर्षित किया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(c) के अधीन अपराध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध के लगभग सदृश है।

15. पूर्वोक्त निष्कर्ष कि एक ही कृत्य अथवा लोप अर्थात् लोक सेवक द्वारा सार्वजनिक धन का बेईमानी से दुर्विनियोग भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1)(c) के अधीन भी अपराध गठित करता है, अतः इसके परिणामस्वरुप मेरे दृष्टिकोण में साधारण खंड अधिनियम की धारा 26 के मुताबिक अपीलार्थीगण को या तो भारतीय दंड संहिता के अधीन या फिर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियोजित और दंडित किया जा सकता है किंतु निश्चय ही उन्हें दोनों प्रावधानों के अधीन दंडित नहीं किया जा सकता है।

16. वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1)(c) के अधीन भी अभियोजित, दोषसिद्ध और दंडादेशित किया। अतः, मेरे दृष्टिकोण में विद्वान अवर न्यायालय ने ऐसा करके गंभीर अवैधता किया।

17. अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य बिल्कुल नहीं है कि अपीलार्थीगण ने रेलवे प्रशासन के साथ छल करने के लिए षडयंत्र रचा था। यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि दोनों अपीलार्थीगण मिले और इनफ्लेटेड बिलों को तैयार करके धन के दुर्विनियोग के लिए योजना बनाया। उक्त परिस्थिति के अधीन, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B की मदद से अनेक अपराधों के लिए अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

18. भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(c) के अधीन अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए अभियोजन द्वारा यह सिद्ध करना आवश्यक है कि अभियुक्तगण ने बेईमानी से उनको न्यस्त संपत्ति का दुर्विनियोग किया था और स्वयं अपने उपयोग के लिए परिवर्तित किया था।

19. अत:, मैं यह अभिनिश्चित करने की क्या अपीलार्थीगण का राशि के दुर्विनियोग का बेईमानी भरा आशय था, की दृष्टि से अभियोजन साक्ष्य पर विचार करने के लिए अग्रसर हो रहा हूँ।

20. अ॰ सा॰ 2 उप मुख्य कार्मिक अधिकारी है। उसने वेतन बिल तैयार करने, बिलों की जाँच करने, और इसके नगदीकरण और कर्मचारी को संवितरण की प्रक्रिया के बारे में विस्तारपूर्वक कथन किया। उसने कथन किया कि बिल तैयार करने के बाद बिलों को जाँचे जाने के लिए लेखा कार्यालय भेजा जाता है और जाँचने के बाद सहायक कार्मिक अधिकारी द्वारा इसपर हस्ताक्षर किया जाता है। तत्पश्चात उप लेखा अधिकारी उनको प्रमाणित और पारित करता है। तत्पश्चात्, नगदीकरण के लिए बिलों को डिविजनल लेखा कार्यालय भेजा जाता है। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि खंड का खजांची विभिन्न कर्मचारियों को उक्त राशि संवितरित करता है। उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि यदि संवितरण के बाद कुछ राशि आधिक्य में होती है तब इसे युक्तियुक्त अवधि के लिए खजांची अथवा किसी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा रखा जाता है और तत्पश्चात् वह इसे कार्यालय में जमा करता है। अ॰ सा॰ 8 जो लेखा कार्यालय में पदस्थापित वरीय खजांची है ने भी इसी प्रक्रिया का कथन किया है।

21. स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने वरीय डी॰ ए॰ ओ॰, पूर्व रेलवे, धनबाद के समक्ष उसमें प्रार्थना करते हुए यह आवेदन (प्रदर्श 5) दाखिल किया था कि अप्रिल, 1985 से जून, 1985 तक के लिए लोको धनबाद की अधिक निकाली गयी वेतन राशि जो उसके द्वारा अपने पास रख ली गयी थी, को जमा करने की अनुमति उसे दी जा सकती है। यह भी स्वीकार किया गया है कि वरीय डी॰ ए॰ ओ॰, धनबाद द्वारा दी गयी अनुमति के मुताबिक अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने दिनांक 31.7.1985 को उक्त राशि जमा कर दिया था। यह भी विवादित नहीं है कि इस मामले की प्राथमिकी दिनांक 31.10.1985 को संस्थापित की गयी थी। इस प्रकार, प्राथमिकी के संस्थापन की तिथि के काफी पहले अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा द्वारा उक्त राशि जमा कर दी गयी थी।

22. प्रक्रिया के मुताबिक, बिल तैयार किए जाने के बाद अनेक अधिकारियों द्वारा इनका जाँच किए जाने की आवश्यकता होती है। प्रक्रिया के मुताबिक बिल पास किए जाने के बाद खजांची इसे भुनाता है और तब विभिन्न कर्मचारियों को संवितरित करता है। उक्त परिस्थिति के अधीन, बिल तैयार किए जाते समय अपीलार्थीगण में से कोई नहीं जानता था कि उन्हें विभिन्न कर्मचारियों को नगद राशि वितरित करना होगा क्योंकि यह उनका काम नहीं है। अभिकथित किया गया है कि बिलों के टोटलिंग में गलती है। यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थीगण ने अनजाने में गलती की क्योंकि वे जानते हैं कि यदि उन्होंने जानबूझकर ऐसा करते हैं, उन्हें पकड़ा जा सकता था क्योंकि बिलों की जाँच करने के समय अन्य अधिकारी अथवा कर्मचारी द्वारा आसानी से उक्त गलतियों का पता लगाया जा सकता है जब तक अन्य अधिकारी अथवा कर्मचारी अपीलार्थीगण के साथ दुरभिसंधि नहीं करता है। यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थीगण ने अतिरेक राशि के दुर्विनियोग के लिए अन्य अधिकारी अथवा कर्मचारी के साथ दुरभिसंधि किया है। उक्त परिस्थिति के अधीन सुरक्षित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि बिल तैयार करते समय अपीलार्थीगण का अनुचित इरादा नहीं था।

23. यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि प्रक्रिया के मुताबिक संवितरण के बाद यदि कुछ राशि शेष बच जाता है, खजांची और/अथवा प्राधिकृत व्यक्ति युक्तियुक्त समय के लिए इसे अपने पास रख सकता है और तब कार्यालय में जमा कर सकता है। वर्तमान मामले में, अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा अप्रिल से जून, 1985 तक के लिए लोको स्टाफ को वेतन संवितरित करने के लिए प्राधिकृत था। आगे यह प्रतीत होता है कि अप्रिल, मई और जून माह के लिए भुगतान क्रमशः मई, जून और जुलाई के प्रथम सप्ताह में किया गया था। जैसा ऊपर गौर किया गया है, अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने प्रदर्श 5 के माध्यम से डिविजनल लेखाकार से अतिरिक्त राशि जमा करने की अनुमति उसे देने का अनुरोध किया और अनुमति प्राप्त करने के बाद उसने दिनांक 31.7.1985 को अतिरिक्त राशि जमा किया। इस प्रकार, मेरे विचार में उसने केवल कुछ दिनों के लिए अतिरिक्त राशि अपने पास रखा। प्रदर्श 5 से प्रतीत होता है कि वह पूर्वोक्त राशि जमा करने के लिए स्वैच्छिक रूप से अनुमति इप्सित करता है। अ॰ सा॰ 8 द्वारा अपने अभिसाक्ष्य में कथन किया गया है कि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने उच्चतर प्राधिकारी द्वारा आदेश दिए जाने पर उक्त राशि जमा किया किंतु उसने उस अधिकारी का नाम नहीं प्रकट किया जिसने ऐसा आदेश जारी किया था। यह उल्लेखनीय है कि अ॰ सा॰ 8 के पूर्वोक्त बयान को सिद्ध करने के लिए उक्त अधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया है। उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं पाता हूँ कि अ॰ सा॰ 8 का उक्त साक्ष्य अनुश्रुत है और इसलिए इसका परिशीलन नहीं किया जा सकता है। अतः, साक्ष्य से स्पष्ट है कि अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने स्वेच्छापूर्वक उक्त राशि को जमा किया था। प्रक्रिया के अनुसार, कर्मचारी जिसे राशि संवितरित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है, युक्तियुक्त अवधि के लिए अतिरिक्त राशि अपने पास रख सकता है। इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में, अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा द्वारा कुछ दिनों के लिए अतिरिक्त राशि अपने पास रखे रहना अस्थायी गबन के तुल्य नहीं है।

24. नरेन्द्र प्रताप नारायण सिंह एवं एक अन्य बनाम उ॰ प्र॰ राज्य, AIR 1991 SC 1394, मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अन्वेषण के पहले अभियुक्त द्वारा अभिकथित रूप से दुर्विनियोग की गयी राशि जमा कर दी जाती है, तब भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध नहीं बनाया जा सकता है। जैसा ऊपर गौर किया गया है, वर्तमान मामले में, अपीलार्थी आर॰ आर॰ सिन्हा ने दिनांक 31.7.1985 को उक्त राशि जमा किया था जबकि अन्वेषण दिनांक 31.10.1985 के बाद आरंभ किया गया था। अतः, सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त विधि की दृष्टि में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध नहीं बनता है। अभियोजन द्वारा दिए गए संपूर्ण साक्ष्य के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थीगण ने किसी दस्तावेज की कूटरचना की थी, अतः भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 467/471 और 477A के अधीन अपराध नहीं बनता है।

25. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश गंभीर अवैधता से ग्रस्त है, अतः इन अपीलों में इन्हें संपोषित नहीं किया जा सकता है।

26. परिणामस्वरुप, अपीलें अनुज्ञात की जाती है। दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। उन्हें उनके द्वारा दिए गए जमानत बंधपत्रों के दायित्वों से भी उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

राजन मुंडा एवं अन्य

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. Revision No. 131 of 1999(R). Decided on 15th December, 2011.

जी॰ आर॰ सं॰ 3156 वर्ष 1994 में न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची द्वारा पारित दिनांक 29.7.1998 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अभिपुष्ट करते हुए दांडिक अपील सं॰ 92 वर्ष 1998 में तत्कालीन तृतीय अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 24.5.1999 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

आयुध अधिनियम, 1959—धाराएँ 25(1-B)/26 एवं 35—पिस्तौलों की बरामदगी—दोषसिद्धि—कठघरे में अभियुक्तगण को सूचक द्वारा पहचाना नहीं गया—अभियुक्तों के कब्जे से बरामद किए गए आग्यनेयास्त्रों को न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया—अभियोजन याचीगण के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने में विफल रहा—दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.—Mr. H.K. Mahto, For the Petitioners; Mr. S.S. Prasad, For the State.

आदेश

यह पुनरीक्षण आवेदन जी॰ आर॰ सं॰ 3156 वर्ष 1994 में न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची द्वारा पारित दिनांक 29.7.1998 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अभिपुष्ट करते हुए दांडिक अपील सं॰ 92 वर्ष 1998 में तत्कालीन तृतीय अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 24.5.1999 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याचीगण को आयुध अधिनियम की धाराओं 25 (1B)/26 और 35 के अधीन अपराधों के लिए दोषी पाए जाने पर तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने और 200/- रुपए जुर्माना का भुगतान करने का दंडादेश दिया गया था।

2. अभियोजन का मामला यह है कि जब पुलिस गश्त लगा रही थी, उन्होंने टिकली टोला मोड़ के निकट तीन व्यक्तियों को वेस्पा स्कूटर के साथ खड़े देखा और जैसे ही उन्होंने पुलिस को अपनी ओर आते देखा, वे भागने लगे। समस्त तीनों व्यक्तियों को पीछा करके गिरफ्तार किया गया था जिन्होंने अपना नाम राजन मुंडा, अर्जुन मुंडा और चरकू पहान बताया। तलाशी लिए जाने पर, राजन मुंडा और अर्जुन मुंडा से देशी पिस्तौल बरामद किए गए थे, जबकि चरकू पहान के कब्जा से अपराध में फँसाने वाली कोई वस्तु बरामद नहीं की गयी थी। इस पर, गोंडा पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी फूलन नाथ (अ॰ सा॰ 2) ने मामला दर्ज किया जिसे गोंडा (बरियातू) पी॰ एस॰ केस सं॰ 134 वर्ष 1994 के रूप में आयुध अधिनियम की धाराओं 25 (1B)/26/35 के अधीन दर्ज किया गया था।

3. आरोप-पत्र दाखिल किए जाने पर, जब याचीगण को विचारण के लिए लाया गया था, उन्होंने निर्दोषिता का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया।

4. विचारण के क्रम में, अभियोजन ने आरोप सिद्ध करने के लिए चार गवाहों का परीक्षण किया। उनमें से अ॰ सा॰ 2 फूलन नाथ सूचक है, जबकि अ॰ सा॰ 3 जयराम सिंह अन्वेषण अधिकारी है, अ॰ सा॰ 1 शिलकौतुष बखला आयुध विशेषज्ञ है और अ॰ सा॰ 4 डोरथी लकरा औपचारिक गवाह है जिसने मंजूरी आदेश (प्रदर्श 6) सिद्ध किया है।

5. विचारण न्यायालय ने यह पाने पर कि अभियोजन अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम हुआ है, दोषसिद्धि और दंडादेश दर्ज किया। उस आदेश को अपीलीय न्यायालय में चुनौती दी गयी थी और अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट किया।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं वस्तुतः पाता हूँ कि अभियोजन का मामला यह है कि जब तीन व्यक्ति किसी स्थान पर खड़े थे, उन्होंने पुलिस को अपनी ओर आते देखकर भागने का प्रयास किया किंतु उन्हें गिरफ्तार किया गया था और तलाशी लिए

जाने पर राजन मुंडा और अर्जुन मुंडा के कब्जा से देशी पिस्तौल बरामद किया गया था जबकि चरकू पहान के कब्जा से कुछ भी बरामद नहीं किया गया था। अभिकथन के समर्थन में अभियोजन द्वारा अ॰ सा॰ 2 सूचक का परीक्षण किया गया था जिसने राजन मुंडा और अर्जुन मुंडा से आग्नेयास्त्रों की बरामदगी के बारे में अभिसाक्ष्य तो दिया किंतु कठघरे में उनको पहचानने में विफल रहा। ऐसा ही मामला अ॰ सा॰ 3 का है। इसके अतिरिक्त, आग्नेयास्त्रों, जिन्हें राजन मुंडा और अर्जुन मुंडा के कब्जे से बरामद किया गया कहा गया है, को अवर न्यायालय के समक्ष कभी प्रस्तुत नहीं किया गया था। इन परिस्थितियों के अधीन, विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के लिए याचीगण को दोषी अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं था, बल्कि अभियोजन को याचीगण के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने में न्यायोचित नहीं था, बल्कि अभियोजन को याचीगण के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने में पक्के तौर पर विफल कहा जा सकता है।

7. अत:, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.7.1998 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अभिपुष्ट करते हुए अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 24.5.1999 के निर्णय और आदेश को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

8. परिणामस्वरुप, याचीगण को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। तद्नुसार, समस्त तीनों याचीगण को उनके जमानत बंधपत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

9. परिणामस्वरुप, यह पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

बाबूसर बेसरा

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 128 of 2003. Decided on 16th December, 2011.

सत्र केस सं॰ 40 वर्ष 2001/78 वर्ष 2001 में तृतीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 18.12.2002 और 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 304, भाग II—हत्या की कोटि में नहीं आने वाला आपराधिक मानव वध–लोहे की छड़ द्वारा मस्तक पर वार–घटना के पहले झगड़ा हुआ–मामला दर्ज करने के संबंध में अनियमितता अथवा विरोधाभास नहीं है–सूचक और एक अन्य अ॰ सा॰ ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया–अपीलार्थी द्वारा मृतक पर लोहे की छड़ द्वारा प्रहार कारित करने के बिंदु पर कोई तात्विक विरोधाभास नहीं है–अपील खारिज।

(पैराएँ 11, 12 एवं 13)

अधिवक्तागण.–M/s Gaurav, Aashish Tiwary, For the Appellant; Ms. Niki Sinha, For the State.

डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्ति.–यह अपील सत्र मामला सं॰ 40 वर्ष 2001/78 वर्ष 2001, मसलिया टोगरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 66/1999 के तत्सम, में विद्वान तृतीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 18.12.2002 और 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. अभियोजन मामला, जैसा रुपलाल किस्कू (अ॰ सा॰ 1) के फर्दबयान से प्रतीत होता है, यह है कि भीम मुरमू के घर के निर्माण में लगे समय के बिंदु पर सूचक और अपीलार्थी बाबूसर बेसरा के बीच झगड़ा हुआ। अभिकथित किया गया है कि शिवधन किस्कू (सूचक का पिता) हल्ला सुनने के बाद घटनास्थल पर आया। जब मृतक ने शोरगुल के विरुद्ध आपत्ति किया, अपीलार्थी ने लोहा का छड़ निकाला और शिवधन किस्कू के मस्तक पर वार किया जिसने उपहति के चलते दम तोड़ दिया।

3. मामला दर्ज किए जाने के बाद अन्वेषण आगे बढ़ा और अन्वेषण पूरा होने के बाद एकमात्र अपीलार्थी बाबूसर बेसरा के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अभियोजन ने आरोप सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर दस गवाहों का परीक्षण किया था और प्रदर्श की सूची के मुताबिक दस्तावेजों को सिद्ध किया था।

4. अ॰ सा॰ 1 के रूप में सूचक का परीक्षण किया गया है। उसने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना की तिथि पर रात्रि लगभग 10 बजे 'नवन पूजा' (उत्सव) के अवसर पर उन्होंने मदिरा सेवन किया था और उत्सव का आनंद ले रहे थे। इस दौरान सूचक और अपीलार्थी बाबूसर बेसरा के बीच झगड़ा हुआ।

हल्ला सुनकर, मृतक शिवधन किस्कू घटनास्थल पर आया और उस पर अपीलार्थी द्वारा लोहे की छड़ से प्रहार किया गया था जिसके परिणामस्वरुप, उसके मस्तक पर उपहतियाँ आयी और गिर पड़ा। मृतक को अस्पताल ले जाया गया पर वह बच नहीं पाया।

सूचक का विवरण मैनो किस्कू (अ॰ सा॰ 2), जोगेन्द्र किस्कू (अ॰ सा॰ 3), बिभुधन किस्कू (अ॰ सा॰ 5) के साक्ष्य से समर्थन पाता है।

गवाहों अर्थात् मुतोई मुरमू (अ॰ सा॰ 6), छबि मुरमू (अ॰ सा॰ 7), नुंजन मुरमू (अ॰ सा॰ 8) ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

5. भीम मुरमू (अ॰ सा॰ 4) सूचक और अपीलार्थी के साथ उपस्थित था जब वे उत्सव का आनंद ले रहे थे। उसने भी इस तथ्य का समर्थन किया है कि सूचक कह रहा था कि इस गवाह के घर का निर्माण एक वर्ष के भीतर पूरा किया गया था किंतु अपीलार्थी इससे सहमत नहीं हुआ जिसके चलते उनके बीच कहासुनी हुई। तत्पश्चात्, यह गवाह घर चला गया और तीन-चार घंटे बाद वह घटना के बारे में जान सका था जिसमें मृतक ने अपीलार्थी के हाथों उपहतियाँ पायी थी। उसने अनुश्रुत गवाह के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया किंतु घटना की उत्पत्ति का समर्थन किया।

6. राज नारायण प्रसाद (अ॰ सा॰ 9) अन्वेषण अधिकारी है और उसने अपने द्वारा किए गए अन्वेषण का समर्थन किया है। उसने प्राथमिकी और अन्य दस्तावेजों को सिद्ध किया है। अभिसाक्ष्य दिया गया था कि आरंभ में मामला भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 323, 307 के अधीन दर्ज किया गया था किंतु मृतक की मृत्यु के बाद भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गयी थी।

7. डॉ॰ सीताराम साह (अ॰ सा॰ 10) ने दिनांक 29.11.1999 को शिवधन किस्कू के मृत शरीर का ऑटोप्सी किया था और डॉक्टर के अनुसार खोपड़ी के फ्रंटल और पेराइटल हड्डी में फ्रैक्चर पायी गयी थी ब्रेन और मेम्ब्रेन विदीर्ण थे। उक्त उपहति के परिणामस्वरुप आघात और हेमरेज के कारण मृत्यु कारित हुई और शव परीक्षण तक मृत्यु से बीता समय 36 घंटा था।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर निर्णय का विरोध किया है कि किसी भी स्वतंत्र गवाह ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। गवाह अर्थात् मीनो किस्कू (अ॰ सा॰ 2) सूचक की पत्नी है जबकि गवाहगण अर्थात् जोगेंद्र किस्कू (अ॰ सा॰ 3) और विभुधन किस्कू (अ॰ सा॰ 5) सूचक के भाई हैं। वे अत्यन्त हितबद्ध गवाह हैं और प्राथमिकी घटना के स्थल और समय पर अ॰ सा॰ 3 और 5 की उपस्थिति उपदर्शित नहीं करती थी।

भीम मुरमू (अ॰ सा॰ 4) ने प्रहार की घटना का समर्थन नहीं किया है कि यद्यपि सूचक के अनुसार घटना इस गवाह की उपस्थिति में हुई थी।

9. गवाहों के बयानों में विरोधाभास है। सूचक ने फर्दबयान में प्रकट किया है कि इसे दिनांक 28.11.1999 को दर्ज किया गया था किंतु औपचारिक प्राथमिकी उपदर्शित करती है कि सूचक दिनांक 23.11.1999 को पुलिस के पास दर्ज की गयी थी। प्रदर्श 2 आगे उपदर्शित करता है कि दिनांक 23.11.1999 को सूचक द्वारा लिखित रिपोर्ट भी दर्ज किया गया था। मामले के संस्थापन के संबंध में भी विरोधाभास है।

10. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय का समर्थन किया है और निवेदन किया है कि मामला सूचक द्वारा दर्ज लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज किया गया था और रुपलाल किस्कू का फर्दबयान उसके पिता शिवधन की मृत्यु के बाद अस्पताल में दर्ज किया गया था। औपचारिक प्राथमिकी भी इस बिंदु पर संगति में है कि मामला लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज किया गया था। समस्त गवाहों ने अभियोजन मामले का पूर्णत: समर्थन किया है और विद्वान सत्र न्यायाधीश ने हत्या की कोटि में नहीं आने वाले आपराधिक मानव वध के अपराध के लिए उसको दोषी अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्त को सही प्रकार से लाभ दिया है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दंडादेश देते हुए नरम रुख अपनाया है और, इसलिए, आक्षेपित निर्णय संपोषित किए जाने का दायी है।

11. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का सावधानीपूर्वक विचारण करने से यह विवादित नहीं किया गया है कि मृतक की मृत्यु उसके सिर पर कारित उपहतियों के कारण हुई थी और शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श 4) प्रदर्शित करके इसे सिद्ध किया गया है। अन्वेषण अधिकारी (अ॰ सा॰ 9) ने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्ट किया है कि दिनांक 22.11.1999 को सूचक घायल के साथ पुलिस थाना आया था और लिखित रिपोर्ट दर्ज किया था जिसके आधार पर यह मामला दर्ज किया गया था। तद्नुसार, तत्कालीन प्रभारी अधिकारी के हस्ताक्षर वाली औपचारिक प्राथमिकी (प्रदर्श 2/1) तैयार किया गया था और उपचार के लिए घायल को अस्पताल भेजा गया था।

पैरा 14 में वह कहता है कि शिवधन किस्कू की मृत्यु के बाद उसने फर्दबयान प्राप्त किया और तब उसने धारा 302 जोड़ने के लिए अध्यपेक्षा दाखिल किया था जिसे तद्नुसार अनुज्ञात किया गया था।

अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य की दृष्टि में, मैं नहीं पाता हूँ कि मामला दर्ज किए जाने के संबंध में कोई भी अनियमितता अथवा विरोधाभास है।

12. अब अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आते हुए, यह प्रकट करता है कि सूचक और मीनो किस्कू (अ॰ सा॰ 2) ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। अ॰ सा॰ 3 और 5 ने भी घटना स्थल पर अपनी उपस्थिति को सिद्ध किया है जिस पर इस तथ्य पर विचार करते हुए संदेह नहीं किया जा सकता है कि घटना की तिथि पर गाँव में 'नवन पूजा' नामक उत्सव था और गाँव वाले उत्सव का आनंद ले रहे थे और मदिरा सेवन कर रहे थे। मृतक पर अपीलार्थी द्वारा लोहे की छड़ से प्रहार कारित करने के बिंदु पर तात्विक विरोधाभास अभिलेख पर नहीं आया है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सही प्रकार से अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया है और दंडादेश देते हुए नरम रुख अपनाया है।

13. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसे खारिज करता हूँ। अपीलार्थी की जमानत रद्द की जाती है और इस आदेश की तिथि से एक माह के भीतर दंड भुगतने के लिए दोषसिद्ध करने वाले न्यायालय/सक्सेसर के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश उसे दिया जाता है। यदि अपीलार्थी ऊपर उपदर्शित अवधि के भीतर आत्मसमर्पण करने में विफल रहता है। न्यायालय जमानत राशि के समपहरण की कार्यवाही करेगा और अपीलार्थी की उपस्थिति सुरक्षित करने के लिए प्रपीड़क कदम भी उठाएगा।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मुर्शीद आलम

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 05 of 2009. Decided on 20th December, 2011.

दांडिक अपील सं॰ 147 वर्ष 2008 में श्री सुनील कुमार सिंह, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ I, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.2.2009 के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973–धारा 378—चेक का अनादर–इस आधार पर दोषमुक्ति कि चेक के अनादर की जानकारी के 30 दिनों के भीतर अभियुक्त को मांग नोटिस नहीं दी गयी थी–अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया गया है कि कब बैंक रिटर्न मेमो को परिवादी की जानकारी में लाया गया था–मांग नोटिस 30 दिनों की सांविधिक अवधि के काफी परे भेजा गया था–दोषमुक्ति का आदेश अभिपुष्ट। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.–(2007) 7 SCC 522—Applied.

अधिवक्तागण.–M/s. Ayush Aditya, Rahul Gupta, Binod Kumar, Mukesh Kumar, For the Appellant; M/s Vishal, Kumar Tiwari, Pravin Kumar, Atul Kr., For the Respondents.

आदेश

दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. यह अपील दांडिक अपील सं॰ 147/08 में श्री सुनील कुमार सिंह, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ I, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.2.2009 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसमें इसके बाद एन॰ आई॰ अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन सी॰ पी॰ केस सं॰ 1686/05, टी॰ आर॰ सं॰ 1055/2008 में श्री संतोष कुमार, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 26.5.2008 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध प्रत्यर्थी अभियुक्त द्वारा दाखिल अपील में दोषसिद्धि के उक्त निर्णय और दंडादेश को अपीलीय न्यायालय द्वारा इस आधार पर अपास्त कर दिया गया था कि चेकों के अनादर की जानकारी के 30 दिनों के भीतर अभियुक्त को मांग नोटिस नहीं दी गयी थी।

3. संक्षेप में परिवादी का मामला यह है कि परिवादी कच्चे चमड़े का व्यापारी है और अनेक ग्राहकों को कच्चा चमड़ा की आपूर्ति करता है। दिनांक 10.2.2005 को अभियुक्त कच्चे चमड़े की आपूर्ति के लिए परिवादी के पास गया और तद्नुसार, कई लाख रुपयों के मूल्य के कच्चा चमड़ा की आपूर्ति अभियुक्त

को की गयी थी। अभियुक्त ने ए॰ बी॰ एन॰ ए॰ एम॰ आर॰ ओ॰ बैंक, कोलकाता के 49,000/- रुपयों के प्रत्येक दो चेकों–सं॰ 517185 दिनांक 15.4.2005 और सं॰ 768130 दिनांक 16.4.2005 को 98,000/- रुपयों की कुल राशि के लिए परिवादी के पक्ष में जारी किया। उक्त चेकों को बैंक में जमा किया गया था जिनका अपर्याप्त निधि के कारण अनादर कर दिया गया था। परिवादी ने अनेक अवसरों पर अभियुक्त से भुगतान करने के लिए अनुरोध किया और अंतत: परिवादी ने अभियुक्त को मांग का कानूनी नोटिस जारी किया, किंतु जब उक्त भुगतान नहीं किया गया था, अवर न्यायालय में परिवाद दाखिल किया गया था।

4. विचारण के क्रम में, केवल परिवादी की ओर से साक्ष्य दिया गया था। अभियुक्त द्वारा बचाव में साक्ष्य नहीं दिया गया था। अवर न्यायालय में दिए गए साक्ष्य पर वर्तमान मामले में विस्तारपूर्वक विवरण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि एकमात्र आधार, जिस पर अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया है, यह है कि परिवादी द्वारा चेकों के अनादर के 30 दिनों की सांविधिक अवधि के भीतर अभियुक्त को मांग का कानूनी नोटिस नहीं दिया गया था।

5. इस संबंध में इंगित किया जा सकता है कि प्रश्नगत चेकों को परिवादी द्वारा सिद्ध किया गया है जिन्हें प्रदर्श 1 और 1/1 के रूप में चिन्हित किया गया है। तद्नुसार, ए॰ बी॰ एम॰ ए॰ एम॰ आर॰ ओ॰ बैंक द्वारा दो रिटर्न मेमो को जारी किया गया था जिनमें से एक दिनांक 31.8.2005 का और दूसरा दिनांक 3.9.2005 का था और चेकों का अनादर दर्शाते हुए उन दोनों को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया को संबोधित किया गया था, जिसमें चेकों को जमा किया गया था। बैंक के रिटर्न मेमो को प्रदर्श 2 और 2/1 के रूप में चिन्हित किया गया था। परिवादी ने प्रदर्श 3 को भी सिद्ध किया है जो मांग कानूनी नोटिस है जिसमें पैराग्राफ 4 में परिवादी ने निम्नलिखित कथन किया है:–

> *"4. fd vki eky dh fMyhojh yu e lQy jg vkj lkFk gh pdk dk vuknj djok fn;kA pdk d vuknj dh tkudkjh ej eofDdy }kjk Øe'k% fnukd 9.9.05 vkj 12.9.05 dk çkIr dh x;h FkhA (;|fi ej eofDdy }kjk fnukd 18.9.05 dk bl çkIr fd;k x;k Fkk)A*

6. प्रदर्श 4 रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेजे गए कानूनी नोटिस की डाक रसीद है जो दर्शाती है कि नोटिस वस्तुत: नवंबर, 2005 में भेजी गयी थी। यद्यपि इसकी तिथि अत्यन्त अस्पष्ट हो गयी है किंतु परिवादी, जिसका सी॰ डब्ल्यू॰ 3 के रूप में विचारण न्यायालय में परीक्षण किया गया था, ने स्पष्टत: अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उक्त मांग नोटिस दिनांक 7.11.2005 के रजिस्टर्ड स्लिप सं॰ 229 के तहत रजिस्टर्ड डाक के माध्यम से अभियुक्त को भेजी गयी थी जो उसके पहचाने जाने पर प्रदर्श 4 के रूप में चिन्हित किया गया था।

7. कथन किया जा सकता है कि मामले के न्याय निर्णयन पर विचारण न्यायालय ने सी॰ पी॰ केस सं॰ 1686/05/टी॰ आर॰ सं॰ 1055/2008 में पारित दिनांक 26.5.2008 के निर्णय द्वारा एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए प्रत्यर्थी अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादेशित किया। प्रत्यर्थी अभियुक्त द्वारा अपील में उक्त निर्णय को चुनौती दी गयी थी जिसे दांडिक अपील सं॰ 147 वर्ष 2008 में अपीलीय न्यायालय द्वारा अंतत: सुना और अनुज्ञात किया गया था और विचारण न्यायालय का निर्णय अपास्त कर दिया गया था और अभियुक्त को एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध से केवल इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया था कि 30 दिनों की सांविधिक अवधि के भीतर अभियुक्त को कानूनी नोटिस नहीं भेजा गया था।

8. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय को आश्वस्त करने का प्रयास किया कि प्रदर्श 3 में, जो अभियुक्त को भेजी गयी कानूनी नोटिस है, यह आया है कि चेकों के अनादर की जानकारी परिवादी द्वारा दिनांक 9.9.2005 और 12.9.2005 को प्राप्त की गयी थी, किंतु उन्हें वस्तुत:

दिनांक 18.9.2005 को प्राप्त किया गया था और मांग नोटिस 30 दिनों की सांविधिक अवधि के भीतर दिनांक 4.10.2005, जो कानूनी नोटिस की तिथि है, को परिवादी को दी गयी थी जैसा प्रदर्श 3 से प्रकट है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय पूर्णत: अवैध है और अपास्त किए जाने योग्य है।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि डाक रसीद, जिसे स्वयं परिवादी द्वारा प्रदर्श 4 के रूप में सिद्ध किया गया है, स्पष्टत: दर्शाता है कि नोटिस वस्तुत: दिनांक 7.11.2005 को परिवादी को भेजी गयी थी और परिवादी ने भी अ॰ सा॰ 3 के रूप में अपने साक्ष्य में स्पष्टत: कथन किया है कि उक्त नोटिस दिनांक 7.11.2005 को भेजी गयी थी। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यदि जानकारी की तिथि को दिनांक 18.9.2005 माना जाता है, जैसा कानूनी नोटिस (प्रदर्श 3) में दिया गया है, नोटिस की तिथि 30 दिनों के आधिक्य में है और इस प्रकार अभियुक्त के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनाया जा सकता है और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में अवैधता नहीं है।

10. प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स राहुल बिल्डर्स बनाम मेसर्स अरिहंत फर्टिलाइजर एण्ड केमिकल एवं एक अन्य, 2007 (7) Supreme 522,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें निम्नलिखित अधिकथित किया गया है:–

> *"10. ..... tc rd vfèkfu;e dh èkkjk 138 e lyXu ijUrd (b) d vu:i ukfVl rkehy ugh fd;k tkrk g] ifjokn ;kfpdk ik"k.kh; ugh gkxhA l ln u mDr çkoèkku vfèkfu;fer djr g, lpr :i l dfri; 'krk dk vfèkjkfir fd;kA 'krk e l ,d pd dh jkf'k d Hkxrku dh ekx dju okyk ukfVl dk rkehyk Fkk tl okD;k'k ^^èku dh mDr jkf'k d Hkxrku** d ç;kx l Li"V gA ,lh ukfVl Hkxrku ugh fd, x, pd dk okil fd, tku d lcèk e cd l lpuk dh çkfIr dh frfFk l 30 fnuk d Hkhrj tkjh djuh gkxhA lfofèk nkfMd çkoèkkuk dh ç;kT;rk ifjdfYir djrh gA nkfMd çkoèkku dk vFk dBkjrkiod yxkuk gkxk(bldh ijkHkk0; 'kr ukfVl dk rkehyk gA** (tkj fn;k x;k)*

11. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि चेकों के अनादर की तिथियों के संबंध में एकमात्र साक्ष्य, जिसे अभिलेख पर लाया गया है, प्रदर्श 2 है जो दिनांक 31.8.2005 का चेक रिटर्न मेमो है और प्रदर्श 2/1 है जो दिनांक 3.9.2005 का चेक रिटर्न मेमो है। अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया गया है कि कब इन बैंक रिटर्न मेमो को परिवादी की जानकारी में लाया गया था। किंतु, परिवादी ने स्वयं प्रदर्श 3 कानूनी नोटिस में कथन किया है कि इन्हें क्रमश: दिनांक 9.9.05 और 12.9.05 को उसके द्वारा प्राप्त किया गया था। जानकारी की इन तिथियों से, यह स्पष्ट है कि मांग नोटिस 30 दिनों की सांविधिक अवधि के काफी परे भेजी गयी थी, क्योंकि स्वीकृत रूप से इसे दिनांक 7.11.2005 को भेजा गया था।

12. किंतु, यदि अत्यन्त उदारतापूर्वक चेकों के अनादर की जानकारी की तिथि दिनांक 18.9.2005 माना भी जाता है, जैसा दिनांक 4.10.2005 के नोटिस (प्रदर्श 3) में दिया गया है (यद्यपि विचारण न्यायालय में इसका कोई साक्ष्य अभिलेख पर नहीं लाया गया है।), नोटिस जिसे दिनांक 7.11.2005 को पोस्ट किया गया था, स्पष्टत: जानकारी की उक्त तिथि से 30 दिनों की सांविधिक अवधि बीतने के बाद ही भेजी गयी थी।

13. तद्नुसार, मैं पाता तथा अभिनिर्धारित करता हूँ कि परिवादी 30 दिनों की सांविधिक अवधि के भीतर अभियुक्त को मांग नोटिस भेजने में विफल रहा और मामला **मेसर्स राहुल बिल्डर्स (ऊपर)** में

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि से पूर्णत: आच्छादित है। तद्नुसार, अभियुक्त को एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था। विचारण न्यायालय ने उक्त अपराध के लिए प्रत्यर्थी अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादेशित करने में स्पष्टत: विधि में गलती किया जिस गलती को सही प्रकार से अभियुक्त को दोषमुक्त करके अपीलीय न्यायालय द्वारा परिशुद्ध किया गया था।

14. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय में इस अपील में हस्तक्षेप करने योग्य कोई अवैधता नहीं पाता हूँ। इस अपील में गुणागुण नहीं है, जो तद्नुसार विफल होती है और एतद् द्वारा इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

झारखंड राज्य (3 में)

छत्तर उर्फ छत्रपति मंडल एवं एक अन्य (461 में)

अनिल राय (466 में)

जीतन मरांडी (509 में)

cuke

मनोज रजवार एवं अन्य (3 में)

झारखंड राज्य (461, 466, 509 में)

Death Reference Nos. 3 of 2001with Criminal Appeal (DB) Nos. 461, 466 with 509 of 2011. Decided on 15th December, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 170 वर्ष 2008 में श्री इंद्रदेव मिश्रा, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गिरीडीह द्वारा निर्दिष्ट दिनांक 24 जून, 2011 के पत्र सं॰ 173 के तहत निर्देश के मामले में। (3 में)

सत्र विचारण सं॰ 170 वर्ष 2008 में श्री इंद्रदेव मिश्रा, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गिरीडीह द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 22.6.2011 और 23.6.2011 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध। (461, 466, 509 में)

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/149, 307/149, 342 एवं 120B सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27 और दांडिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 17—19 व्यक्तियों की हत्या और 12 व्यक्तियों को उपहति—मृत्यु दंडादेश—किसी संदेह के परे अपीलार्थीगण/अन्य दोषियों की पहचान करने का कष्ट अभियोजन ने नहीं किया है—घटनास्थल पर गवाहों की उपस्थिति के बारे में गंभीर संदेह—अभियोजन द्वारा मुख्य गवाहों का परीक्षण नहीं किया गया—अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ दिया गया—मृत्यु निर्देश खारिज—अपीलें अनुज्ञात। (पैराएँ 8, 9, 11 से 15)

निर्णयज विधि.—(2002) 6 SCC 81; (2010) 6 SCC 1 : **2008 (3) BLJ 58 (SC)**—Distinguished.

अधिवक्तागण.—M/s P.P.N. Roy, P.A.N. Roy, Pragati Pd. (in 461) M/s B.M. Tripathy, A.K. Sahani, N.K. Jaiswal (in 466), M/s S.K. Murari, Rajan Raj, Rohit (in 509), For the Appellants; M/s R. Mukhopadhyay, Amresh Kumar (in all), For the State.

न्यायालय द्वारा—इन दांडिक अपीलों को सत्र विचारण सं॰ 170 वर्ष 2008 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 22 जून, 2011 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल

किया गया है जिसके द्वारा अपीलार्थीगण छत्तर उर्फ छत्रपति मंडल, मनोज रजवार, अनिल राम और जीतन मरांडी को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 148, 302/149, 307/149, 342, 379/149 और 120B के अधीन; आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन और दांडिक विधि संशोधन अधिनियम (सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम) की धारा 17 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 148 के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को दो वर्षों, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 342 के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को एक वर्ष, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को तीन वर्ष; भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/149 के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को सात वर्षों; आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को सात वर्षों और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपराध के लिए प्रत्येक को छह माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया। अभियुक्त–अपीलार्थीगण को आगे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 के अधीन अपराधों के लिए मृत्यु दंड भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. उक्त नामित समस्त अभियुक्तगण अपीलार्थीगण को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश को संपुष्टिकरण के लिए राज्य द्वारा मृत्यु निर्देश दाखिल किया गया है जिसे मृत्यु निर्देश सं॰ 3/2011 के रूप में दर्ज किया गया है जबकि आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध उक्त अपीलें अभियुक्त अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल की गयी है।

3. संक्षेप में, अभियोजन मामला निम्नलिखित है:–

अ॰ सा॰ 17 पूरन किस्कू, पुलिसकर्मी, जो झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल मरांडी के छोटे भाई श्री नुनु लाल मरांडी के अंगरक्षक के रूप में प्रतिस्थापित था, ने दिनांक 27.10.2007 को प्रातः 3.30 बजे पुलिस के समक्ष निम्नलिखित प्रभाव का फर्दबयान दर्ज किया:–

एम॰ सी॰ सी॰ गतिविधियों के विरुद्ध विरोध के कारण श्री नुनुलाल मरांडी का परिवार एम॰ सी॰ सी॰ उग्रवादियों के हिटलिस्ट में था। चिलकारी गाँव में दिनांक 26.10.2007 को झारखंड विकास मोर्चा के कार्यकर्ताओं और स्थानीय नागरिकों द्वारा फुटबॉल टूर्नामेंट का आयोजन किया गया था। पुरस्कार वितरण समारोह के बाद, सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था, जिसमें श्री मरांडी मुख्य अतिथि थे। पुरस्कार वितरण समारोह के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था जिसमें श्री मरांडी मुख्य अतिथि थे। सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने के लिए जिलों के सारे भागों से और बिहार के पड़ोसी जिलों से लगभग 3000-4000 व्यक्ति वहाँ एकत्रित हुए थे जिसमें श्री मरांडी भी उपस्थित थे। दोपहर लगभग 12.15 बजे श्री मरांडी द्वारा कार्यक्रम का उद्घाटन किया गया था। उस समय, पुलिसकर्मी की पोशाक में मंच के निकट 12 सशस्त्र कर्मी उपस्थित थे जिनके बारे में सूचक ने सोचा कि वे सुरक्षा प्रयोजनों से वहाँ प्रतिस्थापित सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ कर्मी थे। एक घंटा बाद, वे सशस्त्र व्यक्ति उस जगह से चले गए। सांस्कृतिक कार्यक्रम मध्यरात्रि 00.30 बजे तक जारी रहा। अचानक ग्रामीणों की पोशाक में ग्रीन रूम के बगल से 40-50 व्यक्ति मंच के निकट आए और मंच से काबाईन से गोली चलाने लगे। उस समय पर कोई पुलिसकर्मी वहाँ उपस्थित नहीं था। आगे अभिकथित किया गया है कि आग्नेयास्त्र से उपहतियाँ पाकर 8-10 व्यक्ति मंच पर गिर गए। माओवादियों में से एक मंच पर आया और माइक से श्री नुनु लाल मरांडी के नाम का एलान किया किंतु श्री मरांडी गंभीर स्थिति देखते हुए अपना कोट छोड़कर उस स्थान से भाग गए और अपनी जान बचायी। माओवादी पुनः गोली चलाने लगे जिस कारण सूचक ने अपने बायें हाथ पर एक आग्नेयास्त्र उपहति पायी। तब सूचक ने स्वयं को मंच के नीचे छुपा लिया। माओवादी समूह एक दूसरे को चिराज जी, परेश जी, विवेक यादव, सुनील, जीतन, बिशुन रजवार, अलबर्ट, लखन, दीपक, गागा आदि कहकर बुला–बतिया रहे थे।

आगे अभिकथित किया गया है कि उन सबों ने एम॰ सी॰ सी॰ जिंदाबाद, सशस्त्र क्रांति जिंदाबाद, बाबूलाल मरांडी मुर्दाबाद जैसा नारा लगाया और चकई पुलिस थाना की अधिकारिता की ओर उत्तरपूर्व की ओर चले गए। प्रातः लगभग 2.45 बजे जब पुलिसकर्मी और सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ कर्मी घटनास्थल पर पहुँचे, 17 व्यक्तियों को मृत पाया गया था। श्री मरांडी को भतीजा अनूप मरांडी और एक अज्ञात

व्यक्ति सहित 17 व्यक्तियों को मृत पाया गया था। श्री मरांडी के भतीजा अनूप मरांडी के नाम और एक अज्ञात व्यक्ति सहित 17 व्यक्तियों के नामों को प्राथमिकी में उल्लिखित किया गया है। आगे अभिकथित किया गया है कि 12 व्यक्तियों के शरीरों पर आग्नेयास्त्र उपहति पाया गया था। आगे अभिकथित किया गया है कि अपराधी श्री मरांडी के निजी अंगरक्षक का लाइसेंस शुदा डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक ले गए थे। (प्राथमिकी दर्ज किए जाने के बाद, दो अन्य व्यक्तियों ने आग्नेयास्त्र उपहति के कारण दम तोड़ दिया। इस प्रकार, कुल 19 व्यक्तियों की मृत्यु हुई जबकि 12 व्यक्ति आग्नेयास्त्र द्वारा घायल हो गए थे)

उक्त फर्दबयान (प्रदर्श 25) के आधार पर औपचारिक प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, अन्वेषण जारी रहा, आरोप-पत्र दाखिल किया गया था, संज्ञान लिया गया था और मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था।

4. अभियुक्त अपीलार्थीगण ने निर्दोषिता का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया। उनका बचाव अभियोजन मामले से पूरा इनकार का था। उन्होंने झूठा आलिप्त किए जाने का अभिवचन भी किया।

5. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उनके बयानों को दर्ज किया गया था।

6. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। अन्य बातों के साथ साथ उन्होंने निवेदन किया कि गवाहों के दो समूहों के बीच स्पष्ट सुभिन्नता और भिन्नता थी। गवाहों का एक समूह (इसके बाद समूह ए॰ गवाहों के रूप में निर्दिष्ट) वे गवाह हैं जिन्हें एक या दूसरे अभियुक्त अपीलार्थीगण की शिनाख्त करता हुआ कहा जाता है। गवाहों का दूसरा समूह (इसके बाद समूह बी॰ गवाह के रूप में निर्दिष्ट) घायल गवाहों का है जिन्होंने किसी भी अभियुक्त अपीलार्थीगण को नहीं पहचाना है। आगे निवेदन किया गया है कि समूह ए॰ गवाह दूरस्थ स्थानों अर्थात् घटनास्थल से लगभग 30-40 किलोमीटर दूर के निवासी है जबकि समूह बी॰ गवाह निकट के स्थानों के निवासी है। यह भी आश्चर्यजनक है कि घायल गवाहों में से किसी ने किसी अपीलार्थी को नहीं पहचाना है और कैसे समस्त समूह ए॰ गवाह, जो घायल नहीं थे, ने एक या दूसरे अभियुक्त अपीलार्थीगण को पहचाना है। यह भी आश्चर्यजनक है कि कैसे समूह ए॰ गवाहों में सबका, जिन्होंने कहा कि वे घटना के बाद भाग गए थे, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन उनके अभिकथित बयानों के दर्ज करने के लिए अभियोजन द्वारा दिनांक 27.10.2007 अर्थात् घटना के ठीक दो दिन बाद पता लगा लिया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि श्री मरांडी जो मुख्य अतिथि थे और जिनके भतीजा अनूप मरांडी (झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल मरांडी का पुत्र) की हत्या कर दी गयी थी, ने न तो पुलिस के समक्ष बयान दिया था और न ही न्यायालय में अभिसाक्ष्य देने आए थे यद्यपि स्वीकृत रूप से वह घटनास्थल पर उपस्थित थे और गोलीबारी शुरू होने के बाद उनकी कुर्सी को धक्का देकर सूचक द्वारा उन्हें बचा लिया गया था। इसके अतिरिक्त, श्री मरांडी अन्वेषण के दौरान पुलिस के साथ थे। आगे निवेदन किया गया है कि यह भी आश्चर्यजनक है कि कैसे सूचक, जो स्वयं पुलिसकर्मी है, घटनास्थल पर उपस्थित बताए गए उक्त 12 सशस्त्र सुरक्षा कर्मियों की पहचान अभिनिश्चित नहीं कर सका था।

आगे निवेदन किया गया है कि विचारण न्यायालय ने मुख्यत: इस आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया है कि समूह ए॰ गवाहों ने न्यायिक दंडाधिकारी (अ॰ सा॰ 20) द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दर्ज अपने-अपने बयानों में एक या दूसरे अभियुक्त अपीलार्थीगण के नाम को प्रकट किया है और न्यायालय में उनके बयानों द्वारा इसे संपुष्ट किया गया है। किंतु समूह बी॰ गवाहों द्वारा ऐसे बयानों को संपुष्ट नहीं किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि किसी किशुन रजवार के विरुद्ध अभियोजन मामला समरुप था किंतु उसे दोषमुक्त कर दिया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि यद्यपि प्राथमिकी दिनांक 27.10.2007 को दर्ज की गयी थी किंतु अ॰ सा॰ 8 और 9 (समूह ए॰ गवाह) द्वारा दिनांक

28.8.2009 को अर्थात् लगभग एक वर्ष 10 माह बाद न्यायालय में पहली बार अपीलार्थीगण को पहचाना गया था।

यह भी निवेदन किया गया है कि साक्ष्य में आया है कि सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए प्रवेश टिकट था किंतु यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि समूह ए॰ गवाहों में से किसी के पास अपनी उपस्थिति सिद्ध करने के लिए टिकट था। इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजकों अथवा इससे जुड़े अन्य व्यक्तियों में से किसी का परीक्षण नहीं किया गया था। श्री मरांडी के निजी अंगरक्षक का भी परीक्षण नहीं किया गया था जिससे, अभियोजन के मुताबिक लाइसेंसशुदा बंदूक छीन ली गयी थी। यह भी इंगित किया गया था कि समूह ए॰ गवाहों में से कुछ उग्रवादी बताए जाते हैं जिन्होंने सरकार के समक्ष आत्मसमर्पण किया। उनका दांडिक पूर्ववृत्त भी था।

7. दूसरी ओर, विद्वान एस॰ सी॰ II श्री आर॰ मुखोपाध्याय और राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री अमरेश कुमार ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और निवेदन किया कि अभियोजन अभियुक्त अपीलार्थीगण के विरुद्ध समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम हुआ है। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि इस मामले में आग्नेयास्त्रों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी में 19 निर्दोष व्यक्तियों की निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी गयी थी और लगभग 12 व्यक्तियों को आग्नेयास्त्र की उपहतियाँ आयी थी और इसलिए मृत्युदंड पूर्णतः न्यायोचित है।

8. हम अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों में बल पाते हैं कि निम्नलिखित कारणों से अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियुक्त अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है:–

समूह ए॰ गवाह अ॰ सा॰ 1, 8, 9, 10, 11 और 16 है जिन्होंने एक या दूसरे अपीलार्थीगण को उन व्यक्तियों के रूप में पहचाना है, जिन्होंने भीड़ पर अंधाधुंध गोलीबारी की थी। इन गवाहों ने भिन्न कथा सुनाया है। उन्होंने कहा कि सांस्कृतिक कार्यक्रम के दौरान एक व्यक्ति अर्थात् रमेश मंडल मंच पर आया, अपने चेहरे से कवर हटाया और माइक के माध्यम से लोगों को संबोधित किया कि उग्रवादी समूह का सरोकार केवल श्री नुनुलाल मरांडी के साथ था और अन्य व्यक्तियों के साथ उनकी कोई दुश्मनी नहीं है। तत्पश्चात् अंधाधुंध गोलीबारी शुरू हुई और घटना स्थल पर शोरगुल हो रहा था। जबकि घायल समूह बी॰ गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 12, 13, 14, 15, 17, 21, 23, 24, 25 ने उक्त कहानी के पहले भाग का समर्थन नहीं किया था कि एक व्यक्ति मंच पर आया और माइक के माध्यम से लोगों को संबोधित किया जैसा समूह ए॰ गवाहों द्वारा कहा गया है। घायल समूह बी॰ गवाहों ने कहा कि वे सांस्कृतिक कार्यक्रम देख रहे थे जिसके दौरान उग्रवादियों द्वारा अचानक अंधाधुंध गोलीबारी शुरू की गयी जिसमें अनेक व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी और उनके सहित अनेक व्यक्तियों के आग्नेयास्त्र उपहतियाँ आयी। समूह बी॰ गवाहों में से किसी ने विनिर्दिष्टतः किसी अभियुक्त अपीलार्थीगण अथवा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं पहचाना है। इन गवाहों ने न्यायालय में अभियुक्त अपीलार्थीगण को नहीं पहचाना है। अ॰ सा॰ 2 ने अभिसाक्ष्य दिया कि वह उग्रवादियों को पहचानने की अवस्था में नहीं है। यह आश्चर्यजनक है कि कैसे समूह ए॰ गवाहों में से किसी ने, जिन्होंने एक या दूसरे अपीलार्थीगण को पहचाना था अंधाधुंध गोलीबारी और शोरगुल में कोई उपहति नहीं पाया था यदि वे सांस्कृतिक कार्यक्रम देख रहे व्यक्तियों के बीच थे। यह भी आश्चर्यजनक है कि समूह बी॰ गवाहों में से किसी ने, जिन्होंने आग्नेयास्त्र उपहतियाँ पायी थी, अपीलार्थीगण अथवा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं पहचाना था। समूह बी॰ गवाह अ॰ सा॰ 17 पूरन किस्कू, जो सूचक और श्री मरांडी का पुलिस अंगरक्षक है, के सम्मिलित करता है। उसने अन्य बातों के साथ कहा कि जब गोलीबारी शुरू हुई थी, उसने श्री मरांडी की कुर्सी को धकेल दिया जिससे श्री मरांडी बच गए किंतु उसने अपने साक्ष्य में अथवा न्यायालय में अपीलार्थीगण में से किसी को नहीं पहचाना था। इस

प्रकार, अभियुक्त अपीलार्थीगण के पहचान के बिंदु पर समूह ए॰ और समूह बी॰ गवाहों के बीच स्पष्ट भिन्नता और सुभिन्नता है।

यह भी आश्चर्यजनक है कि श्री मरांडी, जो इस मामले के अत्यन्त महत्वपूर्ण गवाह थे और जिनके भतीजा अनूप मरांडी की हत्या भी कर दी गयी थी, ने पुलिस के समक्ष अथवा न्यायालय के समक्ष कोई बयान नहीं दिया था। किसी अन्य व्यक्तियों जो, स्वाभाविक गवाह थे जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजकों अथवा एंकरों, जेनरेटर ऑपरेटरों, कलाकारों, आदि जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम से जुड़े अन्य व्यक्तियों का इस मामले में परीक्षण नहीं किया गया था। यह गौर किया जा सकता है कि समूह बी॰ गवाह निकट के स्थानों के निवासी थे, जबकि समूह ए॰ गवाह दूरस्थ स्थानों अर्थात् लगभग 30-40 किलोमीटर दूर के निवासी थे। यह प्रतीत होता है कि समूह ए॰ गवाहों में से कुछ उग्रवादी समूह के भाग/सदस्य थे और उन्होंने अभियुक्त अपीलार्थीगण को पहचानने का दावा किया। अ॰ सा॰ 19, 26, 27 और 28 पक्षद्रोही गवाह हैं। अ॰ सा॰ 3, 4, 5, 6, 7, 18 और 22 डॉक्टर हैं जिन्होंने मृतकों का शव परीक्षण किया और घायल गवाहों का भी परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 20 न्यायिक दंडाधिकारी हैं जिन्होंने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन समूह ए॰ गवाहों के बयानों को दर्ज किया। अ॰ सा॰ 29 और 30 इस मामले के अन्वेषण अधिकारी हैं।

9. अपीलार्थीगण ने घटना को विवादित नहीं किया है किंतु उनका मामला यह है कि उन्हें समूह ए॰ गवाहों जिनकी घटनास्थल पर उपस्थिति संदेहास्पद है, के माध्यम से इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने मुख्यत: न्यायिक दंडाधिकारी (अ॰ सा॰ 20) के समक्ष दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दर्ज समूह ए॰ गवाहों के बयानों और न्यायालय के समक्ष उनके बयानों के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया है किंतु, हमारे मत में, किसी संपुष्टि की अनुपस्थिति में समूह ए॰ गवाहों के बयानों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वे घटना के चश्मदीद गवाह थे। अभियोजन ने किसी संदेह के बिना अभियुक्त अपीलार्थीगण की पहचान करवाने का कष्ट नहीं किया है।

10. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने **कृष्ण मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2002)6 SCC 81** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफों 31, 32 और 33 पर विश्वास किया।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए संप्रेक्षणों के साथ सहमत होने में कोई मुश्किल नहीं है, किंतु उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से भिन्न हैं। उक्त मामले में, गवाह, जिन्होंने अभियुक्तगण को पहचाना था, उसी गाँव के थे अथवा घायल गवाह थे जो अवस्था वर्तमान मामले में नहीं है।

11. राज्य के अधिवक्ता ने **सिद्धार्थ वशिष्ठ उर्फ मनु शर्मा बनाम राज्य (दिल्ली का एन॰ सी॰ टी॰), (2010)6 SCC 1 [: 2008 (3) BLJ 58 (SC)],** के निर्णय पर भी विश्वास किया है।

पुन: इसका अधिमूल्यन करने में कोई मुश्किल नहीं है कि भले ही पहले कोई टी॰ आई॰ पी॰ नहीं कराया गया है, पर, न्यायालय कठघरे में की गयी पहचान को खरा होने के नाते सराहना कर सकता है किंतु वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, अभियोजन ने किसी संदेह के परे अपीलार्थीगण/अन्य दोषियों की पहचान करने का कष्ट नहीं किया है।

12. जैसा पहले ही ऊपर गौर किया गया है, घटनास्थल पर समूह ए॰ गवाहों की उपस्थिति के बारे में गंभीर संदेह है। अत:, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन उनके बयानों और न्यायालय में उनके अभिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि को मान्य ठहराना सुरक्षित नहीं होगा।

13. यह सत्य है कि अपराध, जिसमें 19 निर्दोष व्यक्तियों की निर्मम हत्या कर दी गयी थी और लगभग 12 व्यक्तियों को अंधाधुंध गोलीबारी द्वारा आग्नेयास्त्र उपहतियाँ आयी थी, यह उन व्यक्तियों की ओर से अत्यन्त क्रूर कृत्य था जिन्होंने इस अपराध को किया था किंतु राज्य/अभियोजन भी समान रूप से क्रूर है। यह एक या दूसरे अपीलार्थीगण के विरुद्ध अथवा किसी अन्य दोषी के विरुद्ध समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने के कर्तव्य में विफल रहा। हम इन संप्रेक्षणों को करने के लिए विवश हैं। यह ऐसे मामले में कार्यकलाप की स्थिति है जिसमें पूर्व मुख्यमंत्री का भाई टारगेट था और जिसके पुत्र की हत्या अन्य 18 निर्दोष व्यक्तियों के साथ कर दी गयी थी। राज्य उग्रवादियों द्वारा किए गए ऐसे अपराधों में अपना कर्तव्य पूरा करने में विफल हो रहा है। ऐसी घटनाएँ जारी हैं और राज्य की निष्क्रियता और उपेक्षा के कारण आगे बढ़ रही है और निर्दोष व्यक्ति पीड़ित हैं। अन्य आपराधिक मामलों में भी यही स्थिति है। हम केवल भगवान के न्याय की उम्मीद कर सकते हैं।

14. ऊपर गौर किए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारे पास अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि अभियोजन अपीलार्थीगण और/अथवा अन्य दोषियों के विरुद्ध समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा और उपेक्षा किया।

15. परिणामस्वरुप, आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, मृत्यु निर्देश सं॰ 3 वर्ष 2011 अस्वीकार किया जाता है और समस्त अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है। अपीलार्थीगण छत्तर उर्फ छत्रपति मंडल, मनोज रजवार, अनिल राम और जीतन मरांडी, जो जेल में है, को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि अन्य मामलों में उनकी जरूरत नहीं है।

किंतु, यह निर्णय किसी अन्य अभियुक्त के विचारण में पक्षों पर प्रतिकूलता कारित नहीं करेगा।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मेसर्स चंद्रा आयरन एण्ड स्टील प्रा॰ लि॰

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Acquittal Appeal No. 45 of 2005. Decided on 14th December, 2011.

सी॰/1 केस सं॰ 479 वर्ष 2001 (टी॰ आर॰ सं॰ 483 वर्ष 2005) में श्री॰ एस॰ के॰ दूबे, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 25.5.2005 के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धाराएँ 138 एवं 141—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–भुगतान रोकने के अनुदेश के कारण चेक की वापसी–व्यावसायिक संव्यवहार के क्रम में चेक जारी किया गया–साक्ष्य का कुछ भाग एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा दर्ज किया गया और साक्ष्य का शेष भाग अंतरिती न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया–संक्षिप्त कार्यवाही में ऐसी प्रक्रिया पूर्णतः अवैध है–मामला विचारण के लिए वापस भेजा नहीं जा सकता है क्योंकि इसका परिणाम अभियुक्त की अनावश्यक परेशानी में हो सकता है–अपील खारिज। (पैराएँ 11, 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.–2011 (4) JLJ 83 (SC)—Applied; 2004 (3) Crimes 231 (SC)—Relied on; AIR 1983 SC 308; 2010 (4) JCR 283 (Jhr)—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. S.L. Agrawal, For the Appellant; Mr. Amaresh Kumar, For the State; Mr. Sanjay Piperwal, For the Resp. nos. 2 & 3.

न्यायालय द्वारा–यह दोषमुक्ति अपील सी॰/1 केस सं॰ 479 वर्ष 2001 (टी॰ आर॰ सं॰ 483 वर्ष 2005) में श्री एस॰ के॰ दूबे, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 25.5.2005 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसके बाद 'एन॰ आई॰ एक्ट' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन मामले के न्याय निर्णयन पर विचार न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है और इसलिए उक्त अभियोग से प्रत्यर्थी अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया है। अपीलार्थी ने दोषमुक्ति के उक्त निर्णय के विरुद्ध इस दोषमुक्ति अपील को दाखिल किया है।

2. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक शपथपत्र यह दर्शाने के लिए दाखिल किया गया है कि इस अपील के लंबित रहने के दौरान दिनांक 23.12.2009 को प्रत्यर्थी सं॰ 2 रमेश कुमार पंसारी की मृत्यु हो गयी। उक्त अभियुक्त प्रत्यर्थी के मृत्यु प्रमाण पत्र को परिशिष्ट A के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। इसके प्रति कोई प्रत्युत्तर दाखिल नहीं किया गया है। तद्नुसार, यह अपील प्रत्यर्थी सं॰ 2 रमेश कुमार पंसारी के विरुद्ध उपशमनित हो गयी है।

3. परिवादी का मामला, जैसा परिवाद यचिका में बनाया गया है, यह है कि परिवादी कंपनी अधिनियम के अधीन निगमित कंपनी है और इसका निदेशक श्री बिनोद कुमार देबूका कंपनी का प्रतिनिधित्व करने और अभियुक्त के विरुद्ध मामला दाखिल करने के लिए प्राधिकृत था। परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि अक्टूबर, 1999 में किसी समय दोनों अभियुक्तगण परिवादी के कार्यालय गए और परिवादी के निदेशक को समझाया कि वे बाजार में अच्छी प्रतिष्ठा रखने वाली मेसर्स टाटानगर स्टील प्रोड्क्टस के पार्टनर हैं और उन्होंने अभियुक्तगण की ओर से नियमित भुगतान का आश्वासन देते हुए उनको लौह सामग्रियों की आपूर्ति करने के लिए परिवादी पर प्रभाव डाला। अभियुक्तगण के उक्त आश्वासन पर, परिवादी ने दिसंबर, 2000 तक अभियुक्तगण को लौह सामग्रियों की आपूर्ति की और उस समय तक अभियुक्तगण के विरुद्ध 6,44,320.50/- रुपयों की राशि बकाया थी। समय के एक बिंदु पर, अभियुक्तगण ने परिवादी को दिसंबर, 2000 में 60,750/- रुपयों की राशि का भुगतान किया किंतु फिर भी 5,83,560.50/- रुपयों की बकाया राशि परिवादी को दी जानी थी। दिनांक 3.3.2001 को दोनों अभियुक्तगण परिवादी के पास आए और अभिवचन किया कि वे वित्तीय मुश्किल में थे और वित्तीय संकट से उबरने के लिए उन्हें 1,00,000/- रुपयों के कर्ज की आवश्यकता थी जिसे भी अभियुक्त रमेश कुमार पंसारी के नाम से दिनांक 3.3.2001 के चेक के माध्यम से अभियुक्तगण को परिवादी द्वारा दिया गया था। तत्पश्चात दोनों अभियुक्तगण ने यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, एस॰ एस॰ आई॰ शाखा, जमशेदपुर पर आहरित 6,83,560.50/- रुपयों का चेक सं॰ 29406 दिनांक 8.3.2001 परिवादी के पक्ष में जारी किया। दिनांक 13.3.2001 को उक्त चेक बैंक में जमा किया गया था, किंतु दिनांक 15.3.2001 को बैंक द्वारा परिवादी को सूचित किया गया था कि अभियुक्तगण द्वारा भुगतान रोक दिया गया था। दिनांक 28.3.2001 को परिवादी द्वारा अभियुक्तगण को मांग की कानूनी नोटिस दी गयी थी जिसे दिनांक 29.3.2001 को सम्यक् रूप से उनपर तामील किया गया था। चूँकि नोटिस प्राप्त करने के बावजूद परिवादी को भुगतान नहीं किया गया था, उक्त परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी।

4. अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि परिवादी के प्राधिकृत निदेशक ने अवर न्यायालय में सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण कराया और मामले के समर्थन में चार अन्य व्यक्तियों का गवाह के रूप में परीक्षण भी किया है। अभियुक्तगण को जारी कानूनी नोटिस प्रदर्श 1 के रूप में सिद्ध की गयी

थी, उक्त नोटिस का उत्तर प्रदर्श 2 के रूप में सिद्ध किया गया था, प्रश्नगत चेक को प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया गया था, बैंक के रिटर्न मेमो को प्रदर्श 4 के रूप में सिद्ध किया गया था, नोटिस की डाक रसीदों को प्रदर्श 5 और 5/1 के रूप में सिद्ध किया गया था और देय अभिस्वीकृति को प्रदर्श 6 और 6/1 के रूप में सिद्ध किया गया था, बैंक खाता के विवरण को प्रदर्श 7 श्रृंखला के रूप में सिद्ध किया गया था जबकि प्रदर्श 8 कंपनी की ओर से मामला संचालित करने के लिए श्री बिनोद कुमार देबुका का प्राधिकरण है।

5. अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य के आधार पर अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया है कि परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 138 के अधीन मामला सिद्ध करने में इस कारण से सक्षम नहीं हुआ है कि परिवादी कर्ज के रूप में अभियुक्तगण को एक लाख रुपया अग्रिम दिए जाने को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। परिवादी इस दावा कि अभियुक्तगण को सामग्रियों की आपूर्ति की गयी थी, के समर्थन में अभियुक्तगण को दिए गए बीजक को अथवा बिलों को सिद्ध करने में विफल रहा था और इस प्रकार परिवादी यह सिद्ध करने में विफल रहा कि किसी विधिपूर्ण कर्ज को उन्मोचित करने में परिवादी को चेक जारी किया गया था और तद्नुसार, परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ था।

6. अभिलेख के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि साक्ष्य का कुछ भाग एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, जमशेदपुर द्वारा दर्ज किया गया था और तत्पश्चात न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय को अंतरित किया गया था और साक्ष्य का शेष भाग अंतरिती न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया था।

7. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय को यह निवेदन करते हुए चुनौती दिया है कि परिवादी यह सिद्ध करने में सक्षम रहा है कि परिवादी के पक्ष में चेक जारी किया गया था जिसे प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया गया है। उक्त चेक को विहित समय के भीतर बैंक में प्रस्तुत किया गया था और बैंक का रिटर्न मेमो भी परिवादी द्वारा सिद्ध किया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि परिवादी ने अभियुक्तगण को दी गयी कानूनी नोटिस को भी सिद्ध किया है जिसे अभियुक्तगण द्वारा प्राप्त किया गया था और अभियुक्तगण द्वारा इनकार के बाद विहित समय के भीतर परिवाद दाखिल किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि इन सामग्रियों को अभिलेख पर लाकर परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियुक्तगण के विरुद्ध मामला सिद्ध करने में सफल रहा था किंतु अवर न्यायालय में कार्यवाही तात्विक अवैधता से ग्रस्त है क्योंकि एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 138 के अधीन विचारण संक्षिप्त विचारण है और यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि दंडाधिकारी पूर्ववर्ती दंडाधिकारी द्वारा दर्ज साक्ष्य पर विश्वास करते हुए संक्षिप्त विचारण में अग्रसर नहीं हो सकता है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय में संपूर्ण कार्यवाही दूषित हो गयी थी और यह सुयोग्य मामला है जिसमें निर्णय अपास्त कर दिया जाना चाहिए और विधि के अनुरूप नए सिरे से न्याय निर्णयन के लिए मामला वापस भेज दिया जाना चाहिए। अपने प्रतिवाद के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने **नितिनभाई सेवतीलाल शाह एवं एक अन्य बनाम मनुभाई मंजीभाई पंचाल एवं एक अन्य, 2011 (4) JLJ SC 83,** के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया जिसमें निम्नलिखित अधिकथित किया गया है :

> *"14. vkKkid Hkk"kk] ftle èkkjk 326 (3) fy[kh x;h g] fdlh çdkj dk lng ugh NkMrh g fd tc fdlh ekey dk fopkj.k lf{kIr ekey d :i e fd;k tkrk g] nMkfèkdkjh tk ml nMkfèkdkjh] ftlu li.k lk{; vFkok bld fdlh Hkkx dk nt fd;k Fkk] dk mÙkjorh g] viu ioorh }kjk bl çdkj nt lk{; ij ÑR; ugh dj ldrk gA lf{kIr dk;okfg;k e] mÙkjorh U;k;kèkh'k vFkok nMkfèkdkjh dk ml pj.k] ftl ij mld ioorh u bl NkM fn;k Fkk] l fopkj.k d lkFk vxlj gku dk çkfèkdkj ugh gA D;k lfgrk dh èkkjk 326 dh mièkkjk (1) vkj (2) d çkoèkkuk*

dk lf{kIr fopkj.kk ij ç;kT; ugh cuk;k x;k g] bldk dkj.k ;g g fd lf{kIr fopkj.k e doy lk{; dk lkj nt djuk gkxkA U;k;ky; xokg d li.k c;ku dk nt ugh djrk gA vr% U;k;kèkh'k vFkok nMkfèkdkjh] ftlu lk{; dk ,lk lkj nt fd;k g] viu le{k fn, x, lk{; dk vfèkeY;u dju dh voLFkk e g vkj mÙkjorh U;k;kèkh'k vFkok nMkfèkdkjh doy viu ioorh }kjk nt lk{; d vkèkkj ij lk{; dk vfèkeY;u ugh dj ldrk gA lfgrk dh èkkjk 326 (3) viu ioorh }kjk nt lk{; d lkj ij ÑR; dju dh vuefr nMkfèkdkjh dk ugh nrh g ftldk Li"V dkj.k ;g g fd ;fn mÙkjorh U;k;kèkh'k dk viu ioorh }kjk nt lk{; d lkj ij fo'okl dju dh vuefr nh tkrh g] vfHk;Dr ij xHkhj çfrdyrk dkfjrk gkxh vkj oLrr% mÙkjorh nMkfèkdkjh d fy, Lo; ekey dk çHkkodkjh :i l fofuf'pr djuk vkj lkjoku U;k; djuk ef'dy gkxkA

15. xxx xxx xxx ;g lfuf'pr g fd i{kk dh lgefr dh dkb ek=kk fofèk d fdlh U;k;ky; dk vfèkdkfjrk çnku ugh dj ldrh g tgk bldk vfLrRo gh ugh g vkj u gh o vfèkdkfjrk oky U;k;ky; dk fufufgr dj ldr g tk ;g fofèk d vèkhu j[krh gA**

xxx xxx xxx

(tkj Mkyk x;k)

विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि के अनुरूप नए सिरे से न्याय निर्णयन के लिए मामला वापस अवर न्यायालय को भेज दिया और तद्नुसार, यही प्रक्रिया इस न्यायालय द्वारा भी अपनायी जानी चाहिए।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में अवर न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया है, जबकि **नितिन भाई सेवतीलाल शाह एवं एक अन्य (ऊपर)** मामले में दोषसिद्धि के विरुद्ध मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास गया था और तद्नुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि का निर्णय अपास्त कर दिया था और विधि के अनुरुप नए सिरे से न्याय निर्णयन के लिए मामला न्यायालय को वापस भेज दिया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में चूँकि न्याय निर्णयन के बाद अवर न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया है, अत: दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप का अवसर नहीं है।

9. यह निवेदन किया गया है कि अन्यथा भी परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला बनाने में सक्षम नहीं हुआ है क्योंकि, यद्यपि अभियुक्तगण अभिकथित रूप से फर्म के पार्टनर थे किंतु उक्त पार्टनरशिप फर्म को अभियुक्त नहीं बनाया गया है। यह भी निवेदन किया गया है कि इसके अतिरिक्त, परिवाद याचिका में, कोई प्रकथन नहीं था कि अभियुक्तगण फर्म के प्रभार में थे और फर्म के व्यवसाय के संचालन के लिए फर्म के प्रति जिम्मेदार थे और इन प्रकथनों की अनुपस्थिति में प्रत्यर्थी को अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता था। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **मोनाबेन केतनभाई शाह एवं एक अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, 2004 (3) Crimes 231 (SC)** के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 141 समस्त पार्टनरों को अपराध के लिए दायी नहीं बनाती है। दांडिक दायित्व उन पर डाला गया है जो अपराध किए जाते समय फर्म के प्रभार में थे और फर्म के व्यवसाय के संचालन के लिए फर्म के प्रति जिम्मेदार थे। इस निर्णय पर विश्वास करते हुए

विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवाद याचिका में आवश्यक प्रकथन की अनुपस्थिति में अभियुक्तगण का एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए विचारण नहीं किया जा सकता था।

10. विद्वान अधिवक्ता ने **शिवम फाइनेंस एंड लीजिंग कंपनी बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य, 2010 (4) JCR 283 (Jhr)** में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें **बाबू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 1983 SC 308,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए अभिनिर्धारित किया गया है कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में यदि दो दृष्टिकोण संभव है, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचे गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए यदि विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष युक्तियुक्त है। निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण को दोषमुक्त करने के लिए वैध कारण दिया है और इस प्रकार यदि विचारण न्यायालय के तर्क पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, दोषमुक्ति के निर्णय में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

11. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख के परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि अवर न्यायालय की कार्यवाही में तात्विक अवैधता है क्योंकि संक्षिप्त कार्यवाही में कुछ साक्ष्य एक दंडाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था और तत्पश्चात मामला एक अन्य दंडाधिकारी के न्यायालय को अंतरित किया गया था जहाँ अंतरिती दंडाधिकारी द्वारा शेष साक्ष्य दर्ज किया गया था जिन्होंने पूर्ववर्ती दंडाधिकारी द्वारा दर्ज साक्ष्य पर विश्वास किया था। उक्त प्रक्रिया पूर्णतः अवैध है और मामला **नितिनभाई सेवतीलाल शाह (ऊपर)** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से पूर्णतः आच्छादित है।

12. किंतु, परिवाद याचिका सहित अभिलेख पर लायी गयी सामग्रियों से मैं पाता हूँ कि यद्यपि अभियुक्तगण अभिकथित रूप से फर्म के पार्टनर थे, किंतु कोई प्रकथन नहीं है कि अभियुक्तगण फर्म के प्रभार में थे और फर्म के व्यवसाय के संचालन के लिए फर्म के प्रति जिम्मेदार थे। इन प्रकथनों की अनुपस्थिति में, प्रत्यर्थी को अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता था जैसा **मोनाबेन केतनभाई शाह (ऊपर)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। इस प्रकार, मेरा सुविचारित मत है कि यह मामले के नए सिरे से पुनर्विचारण के लिए अवर न्यायालय को वापस भेजे जाने लायक सुयोग्य मामला है, क्योंकि इसका परिणाम केवल अभियुक्त को अनावश्यक परेशान करने में होगा।

13. तद्नुसार, इस मामले के तथ्यों में, यद्यपि अवर न्यायालय की कार्यवाहियों में तात्विक अवैधता है, मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी अभियुक्त के पक्ष में दर्ज दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप के लिए यह सुयोग्य मामला नहीं है। इस प्रकार, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ जो परिणामस्वरुप खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

शादाब खान उर्फ बिट्टू खान एवं अन्य

cuke

मो॰ मिन्हाज आलम एवं अन्य

W.P. (C) No. 1989 of 2007. Decided on 21st September, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 41 नियम 27—अतिरिक्त साक्ष्य–आवेदन अनुज्ञात–अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने के लिए इप्सित दस्तावेज वाद का आधार है और निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है–यदि निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने हेतु अथवा किसी अन्य महत्वपूर्ण हेतु/कारण के लिए न्यायालय को किसी दस्तावेज की आवश्यकता है, यह ऐसे साक्ष्य अथवा दस्तावेज को प्रस्तुत करने अथवा गवाह का परीक्षण करने की अनुमति दे सकता है–आक्षेपित आदेश अभिपुष्ट।

(पैराएँ 12 से 15)

निर्णयज विधि.–AIR 1963 SC 1526; 1997 (1) PLJR 908; AIR 2001 SC 134; 2004 (3) JLJR 136—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. R. N. Sahay, For the Petitioners; Mr. P. N. Rai, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याचीगण ने अभिधान अपील सं॰ 100 वर्ष 1988 में विद्वान पंचम अपर जिला न्यायाधीश, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 8.2.2007 के आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना की है, जिसके द्वारा विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अतिरिक्त साक्ष्य के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन दाखिल प्रत्यर्थीगण की याचिका अनुज्ञात किया है।

2. याची की शिकायत यह है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 27 की आवश्यकता को अनदेखा करते हुए उक्त याचिका अनुज्ञात की गयी है। अपीलार्थीगण–याचीगण यह दर्शाने में विफल रहे कि सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बावजूद वह साक्ष्य उनकी जानकारी में नहीं था अथवा सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बाद विचारण न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। विद्वान अवर न्यायालय ने विधि की आवश्यकता को अनदेखा करते हुए याचीगण की याचिका अनुज्ञात किया है।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश अवैध है और पूर्णत: अधिकारितविहीन है। यह विचार में लिए बिना कि अपीलार्थीगण यह स्थापित करने में विफल रहे कि उन्होंने सम्यक् तत्परता का प्रयोग किया था, किंतु उक्त दस्तावेज, जिसे अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करना इप्सित किया गया है, उनकी जानकारी में नहीं था अथवा विचारण के क्रम में उनके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सका था, इसे पारित किया गया है।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण ने याचिका का विरोध किया है। निवेदन किया गया है कि अवर न्यायालय का आदेश तर्कपूर्ण, वैध और सकारण है। विद्वान अवर न्यायालय ने पाया है कि दस्तावेज प्रतिवादी सं॰ 1 जहूर मियाँ के कब्जे में था और उसने अपने जीवनकाल में इसे नहीं सौंपा था। उसकी मृत्यु के बाद, उक्त दस्तावेज उसके विधिक उत्तराधिकारियों से प्राप्त किया जा सका था और तत्पश्चात अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में उक्त दस्तावेज को प्रस्तुत करने की अनुमति इप्सित करते हुए विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के समक्ष आवेदन दाखिल किया गया था। उक्त दस्तावेज महत्वपूर्ण दस्तावेज है और, वस्तुत:, यह वाद का आधार है और न्याय के उद्देश्य से निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने के प्रयोजन से इसको प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। विद्वान अवर न्यायालय ने इस पर विचार किया है और सकारण आदेश द्वारा याचिका को अनुज्ञात किया है।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और निवेदनों एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार किया है। मैंने आक्षेपित आदेश का परिशीलन भी किया है।

6. आक्षेपित आदेश को मुख्यत: इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि आवश्यक कारण दर्ज किए बिना कि विचारण के दौरान अपीलार्थीगण द्वारा सम्यक् तत्परता का प्रयोग किया गया था किंतु सम्यक् तत्परता के बावजूद अवर न्यायालय के समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया जा सका था, आदेश पारित किया गया है।

7. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ एन॰ सहाय ने **कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम भारत सरकार एवं अन्य,** [2004 (3) JLJR 136], में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है और निवेदन किया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अपील के पक्षगण अतिरिक्त, साक्ष्य चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, प्रस्तुत करने के हकदार नहीं होंगे जब तक उन्होंने यह नहीं दर्शाया हो कि सम्यक् तत्परता के बावजूद वे ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत नहीं कर सके थे और समुचित निर्णय उद्घोषित करने के लिए न्यायालय को सक्षम बनाने हेतु ऐसे दस्तावेज की आवश्यकता है। उन्होंने **राम कुमार महतो एवं एक अन्य बनाम राम सुभग राय एवं अन्य,** [1997 (1) PLJR 908], में पटना उच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय को निर्दिष्ट किया है और निवेदन किया है कि जब यह दर्शाने के लिए अधिकरण के समक्ष बीमा पॉलिसी अथवा प्रमाण पत्र दाखिल करने का प्रयास नहीं किया गया था कि यह बीमा पॉलिसी द्वारा आच्छादित था, तो अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में बीमा प्रमाण पत्र को स्वीकार करने की प्रार्थना स्वीकार नहीं की गयी थी।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पी॰ एन॰ राय ने निवेदन किया कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से न्यायालय पूर्णत: संतुष्ट था कि अभिलेख पर अतिरिक्त साक्ष्य के जरिए प्रस्तुत किए जाने के लिए इप्सित दस्तावेज निर्णय उद्घोषित करने में इसको सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है। जब एक बार न्यायालय संतुष्ट होता है कि उक्त दस्तावेज वाद का आधार है और निर्णय उद्घोषित करने में इसको सक्षम बनाने के लिए अथवा किसी अन्य महत्वपूर्ण हेतु के लिए इसकी आवश्यकता है, सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XLI, नियम 27(1)(b) के अधीन अतिरिक्त साक्ष्य की अनुमति देना अपीलीय न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत है। उन्होंने **के॰ वेंकटरमैय्या बनाम सीताराम रेड्डी एवं अन्य, AIR 1963 Supreme Court 1526**,में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय पर विश्वास किया और इसे निर्दिष्ट किया जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि अपीलीय न्यायालय को न केवल 'निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने हेतु' ऐसे साक्ष्य की आवश्यकता होने पर अपितु ''किसी अन्य सारवान हेतु के लिए भी' अतिरिक्त साक्ष्य देने की अनुमति देने की शक्ति है। भले ही न्यायालय पाता है कि यह अभिलेख की अवस्था, जैसा है, यह पर निर्णय उद्घोषित करने में सक्षम है और इसलिए यह कठोरतापूर्वक नहीं कह सकता है कि निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने हेतु इसे अतिरिक्त साक्ष्य की जरूरत है। यदि यह फिर भी विचार करता है कि न्याय के हित में कुछ, जो छुपा हुआ है, को भरा जाना चाहिए ताकि यह अधिक संतोषजनक तरीके से अपना निर्णय उद्घोषित कर सके, ऐसा मामला संहिता के नियम 27(1)(b) के अधीन किसी अन्य महत्वपूर्ण हेतु के लिए अतिरिक्त साक्ष्य की अनुमति देने का मामला होगा। उन्होंने **महावीर सिंह एवं अन्य बनाम नरेश चंद्र एवं एक अन्य, AIR 2001 Supreme Court 134,** में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय को भी निर्दिष्ट किया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए किसी पक्ष को अनुमति देने हेतु शर्तों में से एक यह है कि निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने हेतु अथवा किसी अन्य सारवान कारण से किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने अथवा किसी गवाह का परीक्षण करने की आवश्यकता अपीलीय न्यायालय के लिए है। अभिव्यक्ति ''निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने हेतु'' ऐसी स्थिति अनुध्यात करती है जहाँ अपीलीय न्यायालय साक्ष्य, जैसा यह है, में कमी अथवा त्रुटि के कारण निर्णय उद्घोषित करने में स्वयं को अक्षम पाता है। निर्णय उद्घोषित करने की सक्षमता को इसको सुनाने वाले न्यायालय के विवेक के प्रति संतोषजनक निर्णय उद्घोषित करने की सक्षमता के रूप में समझना होगा।

9. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में उक्त दस्तावेज को वाद का आधार अभिनिर्धारित किया गया है और विद्वान अवर न्यायालय द्वारा निर्णय उद्घोषित करने के लिए यह आवश्यक है।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों और उनके द्वारा उद्धृत निर्णयज विधियों पर विचार करने पर, मैं पाता हूँ कि दस्तावेज, जिसे प्रस्तुत करना इप्सित किया गया है, को वाद का आधार अभिनिर्धारित किया गया है। प्रासंगिक समय पर दस्तावेज प्रतिवादी सं॰ 1 जहूर मियाँ के अभिरक्षा में था और उसकी

अभिरक्षा से इसे प्राप्त नहीं किया जा सका था जब वाद विचारण न्यायालय में लंबित था। जहूर मियाँ की मृत्यु के बाद अपीलार्थीगण उसके विधिक उत्तराधिकारियों से इसे प्राप्त कर सकते थे और उन्होंने अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में इसे उपाप्त करना इप्सित किया था। विद्वान न्यायालय ने लिखित कथन से यह भी पाया है कि प्रतिवादी सं॰ 1 से 18 ने वादीगण का यह मामला स्वीकार किया है कि वे जहूर मियां से वाद भूमि के खरीददार हैं और यह उनके लिए आश्चर्य की बात नहीं है। विद्वान अवर न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि यही दस्तावेज निर्णय उद्घोषित करने के लिए आवश्यक है।

11. विद्वान अवर न्यायालय ने विधि के प्रावधान और उसकी आवश्यकता पूरा होने पर सम्यक् रूप से विचार करने के बाद अभिलेख पर उक्त अतिरिक्त साक्ष्य लाने के लिए अपीलार्थीगण को अनुमति दिया है।

12. यह सुनिश्चित सिद्धांत है कि यदि न्यायालय को निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने के लिए अथवा किसी अन्य सारवान हेतु के लिए किसी दस्तावेज की आवश्यकता है, वह ऐसा साक्ष्य अथवा दस्तावेज प्रस्तुत करने अथवा गवाह का परीक्षण करने की अनुमति दे सकता है। उक्त शक्ति शर्तों, जैसा सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XLI, नियम 27 (1)(b) के अधीन आवश्यक है, को परिपूर्ण करने पर निर्भर नहीं है।

13. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय भी न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए पक्ष को अनुमति देने से प्रतिषिद्ध नहीं करते हैं। यदि समुचित और न्यायोचित निर्णय उद्घोषित करने के प्रयोजन से साक्ष्य की आवश्यकता है।

14. वर्तमान मामले में, विद्वान अवर न्यायालय ने विचार किया है और पाया है कि दस्तावेज, जिसे अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करना इप्सित किया गया है, वाद का आधार है और निर्णय उद्घोषित करने के लिए इसको सक्षम बनाने के लिए इसकी आवश्यकता है। उक्त संप्रेक्षण अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पक्ष को अनुमति देने के शर्तों में से एक को आकृष्ट करता है जैसा सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XLI के नियम 27 (1) (b) के अधीन परिकल्पित किया गया है।

15. मैं आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई गलती अथवा आधार नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

भाष्कर गुप्ता

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 26 of 2008. Decided on 8th December, 2011.

परिवाद केस सं॰ 605 वर्ष 2004 (टी॰ आर॰ सं॰ 731 वर्ष 2007) में श्री संतोष कुमार, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 17.9.2007 के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 578—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–चेक किसी वैधानिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण अथवा दायित्व के विरुद्ध परिवादी को जारी नहीं किया गया था–परिवादी का मामला कि उसने व्यवसाय में दस लाख रुपया निवेश किया था, परिवाद याचिका में नहीं है–प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने अपने विरुद्ध उपधारणा का खंडन किया है और परिवाद मामले में युक्तियुक्त संदेह सृजित किया है–परिवादी शुद्ध हृदय से न्यायालय के पास नहीं आया है–अपील खारिज। (पैराएँ 16 से 22)

निर्णयज विधि.–(1993) 3 SCC 35; (2008) 4 SCC 54; 2010(3) JCR 16 (SC)—Relied on; AIR 1974 SC 1936—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Appellant; A.P.P., For the State; M/s R.M. Singh, Sandhya Sahay, For the Resp. No. 2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति–यह दोषमुक्ति अपील परिवाद केस सं॰ 605 वर्ष 2004/विचारण सं॰ 731 वर्ष 2007 में श्री संतोष कुमार, न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 17.9.2007 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा अवर न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी ने एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन इस अभियुक्त के विरुद्ध समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अभिकथन सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है और तद्नुसार, उक्त आरोप से प्रत्यर्थी को दोषमुक्त कर दिया।

2. अवर न्यायालय में उसके द्वारा दाखिल परिवाद याचिका में बनाया गया अपीलार्थी परिवादी का मामला यह है कि परिवादी और अभियुक्त अच्छे मित्र थे और लोहे की कबाड़ी का व्यवसाय संयुक्त रूप से कर रहे थे और बाद में, उनके बीच फैसला किया गया था कि यदि अभियुक्त निवेशित शेयर राशि का भुगतान परिवादी को करेगा, परिवादी उसका संयुक्त व्यवसाय छोड़ देगा। तद्नुसार, अभियुक्त ने दिनांक 15.3.2004 को सात लाख रुपयों के लिए केनरा बैंक, हजारीबाग शाखा के चेक सं॰ 7198002 के माध्यम से परिवादी को उक्त राशि का भुगतान किया। उक्त चेक परिवादी द्वारा दिनांक 24.6.2004 को बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, किंतु इसे ''अपर्याप्त निधि'' प्रमाण पत्र के साथ बैंक द्वारा भुगतान किए बिना लौटा दिया गया था। तत्पश्चात, परिवादी ने अभियुक्त को 15 दिनों के भीतर राशि का भुगतान करने के अनुरोध के साथ मांग का कानूनी नोटिस भेजा और चूँकि अभियुक्त ने नोटिस की प्राप्ति की अभिस्वीकृति किए बिना राशि का भुगतान करने से इनकार कर दिया, दिनांक 24.7.2004 को उक्त परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी।

3. सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर परिवादी के परीक्षण पर और अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाते हुए अभियुक्त को आदेशिका जारी की गयी थी और विचारण के क्रम में दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था। अंतत:, मामले के न्याय-निर्णयन पर मामला पूर्वोक्तानुसार अभियुक्त की दोषमुक्ति में परिणत हुआ। अत:, यह अपील की गयी है।

4. विचारण के क्रम में, परिवादी ने सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण कराया जिसमें उसने अपने मामले के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है और चेक को सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया है; चेक को वापस लौटाने का बैंक का मेमो भी प्रदर्श 2 के रूप में सिद्ध किया गया है; कानूनी नोटिस प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया गया है; रजिस्टर्ड डाक के माध्यम से नोटिस भेजे जाने की डाक रसीद को प्रदर्श 4 के रूप में सिद्ध किया गया है और इसकी अभिस्वीकृति को प्रदर्श 5 के रूप में सिद्ध किया गया है जिस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर को प्रदर्श 5/1 के रूप में सिद्ध किया गया है।

5. इस गवाह के प्रति परीक्षण से, यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने स्वीकार किया है कि उसने दिनांक 14.3.2004 को अभियुक्त से व्यवसाय पृथक कर लिया था और अगले दिन उसे चेक दिया गया था। उसने कथन किया है कि चेक राशि के अतिरिक्त कोई अन्य बकाया नहीं था और व्यवसाय के पृथक्करण के बारे में किसी अन्य व्यक्ति को जानकारी नहीं थी। यद्यपि इस गवाह ने अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया है कि इस मामले को दाखिल किए जाने के पहले परिवादी ने अभियुक्त के विरुद्ध एक अन्य परिवाद मामला दाखिल किया था, किंतु उसने इनकार किया है कि उक्त परिवाद मामले में उसने कथन किया है कि 2,50,000/- रुपया पाने पर उसने अभियुक्त से अपना व्यवसाय पृथक कर लिया था और कोई अन्य बकाया नहीं था। उसने इससे भी इनकार किया है कि एक अन्य परिवाद मामले में, अपने

साक्ष्य के क्रम में उसने कथन किया है कि 2,50,000/- रुपया पाने के बाद उसने फर्म से स्वयं को पृथक कर लिया था और कोई अन्य बकाया नहीं था। किंतु उसने उक्त मामले में अभिसाक्ष्य देना स्वीकार किया है कि उसने अभियुक्त से फर्म से अलग होते हुए छह चेकों को प्राप्त किया था और तत्पश्चात, अभियुक्त के व्यवसाय के साथ उसका कोई सरोकार नहीं था।

6. परिवादी ने सी॰ डब्ल्यू॰ 2 अर्थात् इंदर चंद जायसवाल और सी॰ डब्ल्यू॰ 3 अर्थात् विजय कृष्ण त्रिपाठी हस्तलेखन विशेषज्ञ का भी परीक्षण किया है और बचाव पक्ष ने भी एक अन्य हस्तलेखन विशेषज्ञ अर्थात चंद्रशेखर जौरीहार का परीक्षण ब॰ सा॰ 1 के रूप में किया है, किंतु विचारण न्यायालय द्वारा वैध कारण से इन दोनों हस्तलेखन विशेषज्ञ के साक्ष्य पर अविश्वास किया गया है, जिन पर चर्चा करने की जरूरत नहीं है और न ही इस अपील में तर्क के क्रम में इन पर जोर दिया गया है।

7. यहाँ यह कथन किया जा सकता है कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी अभियुक्त का बचाव यह है कि प्रश्नगत चेक किसी विधित: प्रवर्तनीय कर्ज अथवा दायित्व के विरुद्ध परिवादी को जारी नहीं किया गया था। अभियुक्त का आगे बचाव यह है कि व्यवसाय पृथक करते हुए अभियुक्त ने परिवादी को कुल 2,50,000/- रुपयों की राशि का छह चेक दिया था जिनका भी अनादर किया गया था और परिवादी द्वारा परिवाद मामला सं॰ 604 वर्ष 2004 उसी तिथि पर अर्थात् दिनांक 24.7.2004 को दाखिल किया गया था। उक्त परिवाद मामला में परिवादी का मामला विनिर्दिष्टत: यह है कि परिवादी ने अभियुक्त के इस आश्वासन पर संयुक्त व्यवसाय छोड़ दिया था कि उसे 2,50,000/- रुपयों की निवेशित राशि का भुगतान किया जाएगा और 2,50,000/- रुपयों की कुल राशि के छह चेक परिवादी को दिए गए थे। स्वयं आक्षेपित निर्णय से प्रतीत होता है कि उक्त परिवाद मामला सं॰ 604 वर्ष 2004 में अभियुक्त को दोषी पाया गया था और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन आरोप के लिए दोषसिद्ध किया गया था। जिसके विरुद्ध सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया गया था जिसे खारिज कर दिया गया था और मामला उच्च न्यायालय में लंबित है।

8. परिवादी के मामला का खंडन करने के लिए अभियुक्त ने परिवाद मामला सं॰ 604 वर्ष 2004 जिसे प्रदर्श 'A' के तौर पर चिन्हित किया गया है, की प्रमाणित प्रतियाँ अभिलेख पर लाया है तथा साथ ही परिवाद मामला 604 वर्ष 2004 में परिवादी भास्कर गुप्ता का अभिसाक्ष्य भी अभिलेख पर लाया गया है जिसे प्रदर्श 'B' के रूप में चिन्हित किया गया है। प्रदर्श 'A' में अंतर्विष्ट परिवाद याचिका स्पष्टत: दर्शाती है कि परिवादी ने परिवाद याचिका में विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि परिवादी ने अभियुक्त के इस आश्वासन पर संयुक्त व्यवसाय छोड़ दिया कि उसे उसकी निवेशित 2,50,000/- रुपयों की राशि का भुगतान कर दिया जाएगा, जिस पर अभियुक्त द्वारा परिवादी को छह चेक जारी किए गए थे जिन्हें बैंक में प्रस्तुत किया गया था और इनका अनादर किया गया था और विधिक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, न्यायालय में उक्त परिवाद याचिका उसी दिन दाखिल की गयी थी जिस दिन वर्तमान परिवाद दाखिल किया गया था। उक्त परिवाद केस सं॰ 604 वर्ष 2004 में परिवादी के अभिसाक्ष्य के परिशीलन से प्रकट है कि परिवादी ने उक्त परिवाद मामले में यह कथन करते हुए अपने मामले का समर्थन किया था कि वे परिवादी द्वारा निवेशित 2,50,000/- रुपयों की राशि वापस पाने पर अपने व्यवसाय को पृथक करने के लिए सहमत हुए थे, जिसे परिवादी ने छह चेकों के जरिए अभियुक्त से प्राप्त किया था। किंतु, अपने प्रतिपरीक्षण के लिए सहमत हुए थे जिसे परिवादी ने छह चेकों के जरिए अभियुक्त से प्राप्त किया था। किंतु, अपने प्रति परीक्षण में इस गवाह ने कथन किया है कि उसने उक्त व्यवसाय में दस लाख रुपयों

का निवेश किया था और अभियुक्त ने भी दस लाख रुपयों का निवेश किया था। अपने प्रति परीक्षण में उसने पुन: स्वीकार किया है कि व्यवसाय का कोई लेखा नहीं रखा गया था और यह सिद्ध करने के लिए उसके पास दस्तावेज नहीं है कि उसने व्यवसाय में दस लाख रुपया निवेशित किया था।

9. किंतु, वर्तमान मामले में परिवाद याचिका में कहीं नहीं कथन किया गया है कि परिवादी ने उक्त व्यवसाय में दस लाख रुपया निवेश किया था और न ही परिवादी ने ऐसा कोई मामला निर्मित किया है। अपने अभिसाक्ष्य में भी परिवादी सी॰ डब्ल्यू॰ 1 भाष्कर गुप्ता ने मुख्य परीक्षण में कहीं नहीं कथन किया है कि उसने दस लाख रुपया का निवेश किया था किंतु, अपने प्रति परीक्षण में, इस गवाह ने कहा है कि उसने दस लाख रुपयों का निवेश किया था, परन्तु आयकर विभाग को इस निवेश को प्रकट नहीं किया गया था यद्यपि वह आयकर भुगतान करनेवाला है। उसने यह भी कथित किया है कि उसे कोई जानकारी नहीं थी कि फर्म रजिस्टर्ड था या नहीं।

10. इस प्रकार, अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य के परिशीलन से प्रकट है कि वर्तमान परिवाद केस सं॰ 605 वर्ष 2004 में परिवादी ने कथन किया था कि दोनों पक्षों ने अपना व्यवसाय पृथक करने का फैसला किया यदि अभियुक्त उसको निवेशित शेयर राशि का भुगतान करता है और तद्नुसार, अभियुक्त ने दिनांक 15.3.2004 को प्रश्नगत चेक के माध्यम से उसको सात लाख रुपयों का भुगतान किया। एक अन्य मामले अर्थात् परिवाद मामला सं॰ 604 वर्ष 2004 में परिवादी ने मामला बनाया है कि परिवादी ने अभियुक्त के इस आश्वासन पर संयुक्त व्यवसाय छोड़ दिया कि उसे उसकी निवेशित 2,50,000/- रुपयों की राशि का भुगतान कर दिया जाएगा। इन मामलों में किसी में भी, परिवादी द्वारा यह कथन नहीं किया गया है कि उसने व्यवसाय में अपने हिस्से के रूप में दस लाख रुपयों का निवेश किया था जिस तथ्य को उसने केवल अपने प्रति परीक्षण में प्रकट किया था।

11. अवर न्यायालय ने निम्नलिखित कारणों से परिवादी के दस लाख रुपयों के निवेश करने के मामले पर अविश्वास किया है:–

> *^^ifjoknh d dl l0 604 o"k 2004 d vulkj mlu viuh fuof'kr jkf'k 2,50,000/- #i;k ik;k Fkk] rn}kjk ftldk vFk g fd nkuk lk>nkjk dh dy jkf'k 5,00,000/- #i;k Fkh fdr ;fn bl ekey e ifjoknh dk fooj.k lR; ekuk tkrk g] nkuk Hkkxhnkjk dh dy fuof'kr jkf'k 20,00,000/- #i;k gkxhA ;g dguk vuko';d g fd 20,00,000/- #i;k d lkFk 0;olk; dh ;ktuk d ç;ktu l lYl VDl d le{k jftLV'ku vkj ch0 ,l0 Vh0] lh0 ,l0 Vh0 l[;k çklr djuk vko';d g vkj ,l jftLV'ku d fcuk ,lk 0;olk; voèk g vkj nMuh; Hkh gA ifjoknh d vulkj mld lk{; d ijk 19 e mlu vk;dj foHkkx dk mDr jkf'k çdV ugh fd;k Fkk tk vk;dj vfèkfu;e d vèkhu Hkh vijkèk gA bl fcn d U;k; fu.k;u d ç;ktu l ;g dFku djuk çklfxd çrhr gkrk g fd 0;olk; d vfLrRo d lcèk e dkxtkr dk ,d Hkh VdMk] dkb [kkrk] dkb jftLVj] dkb uxn iLrd vFkok l0;ogkj dkxtkr ;g n'kku d fy, bl U;k;ky; d le{k ugh nkf[ky fd;k x;k g fd 20,00,000/- #i;k d fuo'k d fy, i{kk d chp oLrr% dkb l0;ogkj FkkA ,u0 vkb0 vfèkfu;e d vulkj] ^^fofèkr% çoruh;** dk vFk g ^^dkb jkf'k ftld fy, ifjoknh dk fofèkd çfØ;k d ekè;e l bldh çkfIr çofrr djoku dk vfèkdkj gA** oreku ekey e] tc Lo; ifjoknh u dFku fd;k g fd vk;dj foHkkx d le{k dkb çdVhdj.k ugh fd;k x;k Fkk tk mld fy, vkKkid Fkk] rk ;g ugh dgk tk ldrk g fd dt fofèkr% çoruh; FkkA***

12. यहाँ यह कथन किया जा सकता है कि यद्यपि अवर न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है कि वस्तुत: नगदीकरण के लिए चेक को बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और अपर्याप्त निधि के कारण यह बाउंस हो गया क्योंकि बैंक रिटर्न मेमो पर कोई आधिकारिक चिन्ह अथवा मुहर नहीं था।

13. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दोषमुक्ति का आक्षेपित आदेश पूर्णत: अवैध है, क्योंकि परिवादी अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम हुआ था कि दिनांक 15.3.2004 को अभियुक्त द्वारा परिवादी के पक्ष में सात लाख रुपयों का चेक जारी किया गया था जिसे परिवादी द्वारा समय के भीतर अर्थात् दिनांक 24.6.2004 को बैंक में प्रस्तुत किया गया था और इसे 'अपर्याप्त निधि' प्रमाण पत्र के साथ बैंक द्वारा भुगतान किए बिना वापस लौटा दिया गया था। तत्पश्चात्, अनुबंधित समय के भीतर, अभियुक्त को मांग नोटिस दिया गया था और चूँकि अभियुक्त ने परिवादी को भुगतान करने से इनकार कर दिया, विहित समय के भीतर दिनांक 24.7.2004 को परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 118 और धारा 139 के अधीन परिवादी के पक्ष में उपधारणा है और यह सुयोग्य मामला है जिसमें अभियुक्त को अवर न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध एवं दंडादेशित किया जाना चाहिए था।

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिवादी अवर न्यायालय में अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा था क्योंकि अभियुक्त के विरुद्ध परिवादी द्वारा दाखिल एक मामले में परिवादी का मामला यह था कि उसने 2,50,000/- रुपयों का अपना संपूर्ण बकाया प्राप्त करने के बाद व्यवसाय पृथक कर लिया था जबकि वर्तमान मामले में, परिवादी ने यह मामला बनाया है कि उसने सात लाख रुपया, जिसे उसके द्वारा निवेशित किया गया था, का अपना हिस्सा लेने के बाद अपना व्यवसाय पृथक कर लिया था। विचारण के दौरान, परिवादी ने कथन किया है कि उसने वस्तुत: अपने हिस्से के रूप में दस लाख रुपयों का निवेश किया था और अभियुक्त ने भी अपने हिस्से के रूप में दस लाख रुपयों का निवेश किया था किंतु परिवादी द्वारा दाखिल परिवाद याचिका में इस तथ्य का कथन नहीं किया गया है। परिवादी द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि उसने आयकर विभाग को उक्त निवेश प्रकट नहीं किया था और अपने प्रतिपरीक्षण में आगे स्वीकार किया है कि कोई खाता पुस्तक नहीं रखा गया था और अपना मामला कि उसने व्यवसाय में दस लाख रुपया निवेशित किया था, सिद्ध करने के लिए उसके पास दस्तावेज नहीं था।

15. तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी अभियुक्त अपने विरुद्ध उपधारणा खंडित करने की जिम्मेवारी का निर्वहन करने में सक्षम हुआ है और परिवाद मामला में युक्तियुक्त संदेह सृजित किया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि जहाँ साक्ष्य के दो दृष्टिकोण संभव हो, उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने **हल्लू एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, AIR 1974 SC 1936,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और यह अपील खारिज किए जाने योग्य है।

16. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी अभियुक्त अपने विरुद्ध उपधारणा को खंडित करने में सक्षम रहा है और परिवाद मामले में युक्तियुक्त संदेह सृजित किया है। बल्कि यह ऐसा मामला है जिसमें परिवादी स्वयं शुद्ध हृदय से न्यायालय के पास नहीं आया है। परिवादी का मामला कि उसने व्यवसाय में दस लाख रुपयों का निवेश

किया था, उसकी परिवाद याचिका में नहीं है। उसने अपने प्रतिपरीक्षण में केवल यह स्वीकार किया है कि उसने व्यवसाय में दस लाख रुपयों का निवेश किया था, किंतु पुनः उसने कथन किया था कि अपना मामला सिद्ध करने के लिए उसके पास कोई दस्तावेज नहीं है।

17. मेरे सुविचारित मत में, प्रत्यर्थी अभियुक्त परिवाद याचिका और परिवाद मामला सं॰ 604 वर्ष 2004 में परिवादी का अभिसाक्ष्य सिद्ध करके परिवादी के मामले को भंजित करने में सक्षम हुआ है जो स्पष्टतः दर्शाता है कि वर्तमान मामले में और उक्त परिवाद मामला सं॰ 604 वर्ष 2004 में जिन्हें एक ही तिथि पर दाखिल किया गया था, परिवादी का आधार बिल्कुल विपरीत था और दोनों मामलों में परिवादी के मामले की नींव कि उसने उक्त व्यवसाय में दस लाख रुपयों का निवेश किया था, परिवादी द्वारा छुपाया गया था।

18. भारत बैरल एवं ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारेलाल, (1993)3 SCC 35, में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि को निम्नलिखित रूप से अधिकथित किया है:–

*"12. vud fu.k;k d vufpru ij] t lk ;gk Åij xkj fd;k x;k g] fofèk dh voLFkk tk lkeu vkrh g ;g g fd tc ,d ckj ikfeljh ukV dk fu"iknu Lohdkj fd;k tkrk g] èkkjk 118(a) d vèkhu mièkkj.kk mnHkr gkxh fd ;g çfrQy }kjk lefFkr gA ,lh mièkkj.kk [kMuh; gA çfroknh lHkk0; cpko iLrr dj çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dj ldrk gA ;fn ;g n'kkr g, fd çfrQy dk vfLrRo vufèklHkk0; vFkok lngkLin Fkk vFkok ;g voèk Fkk] çfroknh çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuofgr djr g, fl) fd;k x;k g] rk ftEenkjh okn dh gk tk,xh tk bl ;FkkFk d :i e fl) dju d fy, ckè; gkxk vkj fl) dju dh foQyrk ijØkE; fy[kr d vkèkkj ij vurk"k çnku dju d fy, ml xjgdnkj cuk,xkA çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dju d fy, çfroknh d mij Hkkj çR;{k gk ldrk g vFkok mu ifjfLFkfr;k] ftu ij og fo'okl djrk g] dk fun'k djr g, vfèklHkk0; rk dh cgyrk dk vfHky[k ij ykdj fd;k tk ldrk gA ,lh fLFkfr e] okn ekey e fn, x, okn d lk{; lfgr leLr lk{; ij fo'okl dju d fy, fofèk d vèkhu gdnkj gA ;fn çfroknh çfrQy dh vfLrRoghurk n'kkdj çek.k dh vkjfHkd ftEeokjh dk fuogu dju e foQy jgrk g] rk okn lno gh viu i{k e èkkjk 118(a) d vèkhu mnHkr gkrh mièkkj.kk d ykHk dk gdnkj vfHkfuèkkfjr fd;k tk,xkA U;k;ky; çR;{k lk{; ndj çfrQy d vfLrRo dk vuuekfnr dju d fy, çfroknh ij tkj ugh Mky ldrk g D;kfd udkjkRed lk{; dk vfLrRo u rk lHko g vkj u gh vuè;kr fd;k x;k g vkj ;fn bl fn;k Hkh tkrk g] bl lng d lkFk n[kuk gkxkA çfrQy d fn, tku l budkj çdVr dkb cpko çrhr ugh gkrk gA okn ij fl) dju dh ftEenkjh Mkyu dk ykHk yu d fy, dN Hkh] tk vfèklHkk0; g] dk vfHky[k ij ykuk gh gkxkA mièkkj.kk dk vfl) dju d fy,] çfroknh dk vfHky[k ij ,l rF;k vkj ifjfLFkfr;k dk ykuk gh gkxk ftl ij fopkj dju ij U;k;ky; ;k rk fo'okl dj ldrk g fd çfrQy vfLrRoghu Fkk vFkok bldh vfLrRoghurk bruh vfèklHkk0; Fkh fd food'khy U;fDr] ekey dh ifjfLFkfr;k d vèkhu bl vfHkopu ij ÑR; dj ldrk g fd ;g vfLrRo e ugh FkkA***

****

(tkj fn;k x;k)

19. कृष्ण जनार्दन भट्ट बनाम दत्तात्रेय जी हेगड़े, (2008)4 SCC 54, में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुनः पूर्वोक्त निर्णय पर विश्वास किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

"34. bld vfrfjDr] tcfd vfHk;ktu dk leLr ;fDr;Dr lng d ij vfHk;Dr dk nk"k fl) djuk gkxk] vfHk;Dr dh vkj l cpko fl) dju d fy, çek.k dk Lrj ^vfèkHkko;rkvk dh cgyrk gA vfèkHkko;rkvk dh cgyrk dk fu"d"k u doy i{kk }kjk vfHky[k ij yk;h x;h lkefx;k l fudkyk tk ldrk g cfYd mu ifjfLFkfr;k dk fun'k djd Hkh fudkyk tk ldrk g ftu ij og fo'okl djrk gA*

***********"।

20. रंगरप्पा बनाम श्री मोहन, 2010 (3) JCR 16 (SC) में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोनों पूर्वोल्लिखित निर्णयों को अनुमोदित करते हुए उद्धृत किया गया है। उक्त अधिकथित विधि इस मामले के तथ्यों पर पूरी तरह प्रयोज्य है।

21. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी अभियुक्त अवर न्यायालय में विचारण के दौरान परक्राम्य लिखत अधिनियम के अधीन उपधारणा को खंडित करते हुए युक्तियुक्त बचाव करने में सक्षम हुआ है और परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। तद्नुसार, अभियुक्त को सही प्रकार से अवर न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया है। आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

22. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और एतद् द्वारा इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

राजेश कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 393 of 2011. Decided on 2nd December, 2011.

(क) भारत का संविधान–अनुच्छेद 32/226—अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति के समरुप है जैसा अनुच्छेद 32 में अंतर्विष्ट है–उच्च न्यायालय नियुक्ति की प्रक्रिया का न्यायिक पुनर्विलोकन कर सकता है। (पैरा 16)

(ख) भारत का संविधान–अनुच्छेद 14 एवं 16—जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर नियुक्ति–चयन प्रक्रिया के बीच में चयन का मापदंड परिवर्तित नहीं किया जा सकता है–प्रत्यर्थी के लिए जगह बनाने की दृष्टि से परिवर्तित मापदंड अनुच्छेद 14 एवं 16 का उल्लंघन करता है। (पैराएँ 19 से 24)

निर्णयज विधि.–(2001) 10 SCC 51;(2008) 3 SCC 512; (2009)7 SCC 1; (2003) 4 SCC 712; (2006) 11 SCC 731—Relied on; (2011) 4 SCC 1—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s R. Krishna, Navin Kumar, For the Petitioner; M/s Anil Kumar Sinha, Anoop Kumar Mehta, For the Respondents.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.—वर्तमान रिट आवेदन में याची ने झारखंड राज्य खनिज विकास निगम (इसके बाद जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के रूप में निर्दिष्ट) के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति को अभिखंडित करने के लिए अधिकार पृच्छा की प्रकृति में समुचित रिट, निर्देश अथवा आदेश जारी करने की प्रार्थना की है।

2. यह कथन किया गया है कि कोयला, लोहा, आदि जैसे अनेक खनिजों के खनन में लगा हुआ जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ झारखंड राज्य का प्रमुख संगठन है। आगे कथन किया गया है कि झारखंड राज्य ने जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के महत्व पर विचार करते हुए उन व्यक्तियों, जिन्हें खान योजना और ऑपरेशन के क्षेत्र में विशेषज्ञता है, में से प्रबंध निदेशक के पद पर विशेषज्ञ पेशेवर की नियुक्ति करने का निर्णय लिया। पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, प्रतिनियुक्ति पर अथवा संविदात्मक आधार पर जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए विज्ञापन जारी किया। उक्त विज्ञापन (परिशिष्ट 1) अवर सचिव, खान एवं भूगर्भशास्त्र विभाग, झारखंड राज्य के हस्ताक्षर के अधीन दैनिक समाचारपत्र में जारी किया गया था। विज्ञापन में, पद के लिए निम्नलिखित आवश्यक अर्हता को विहित किया गया था:—

^^çfrf"Br lLFkku l ,e0 ch0 ,0 d lkFk bftfu;fjx@foKku e çFke J.kh Lukrd fMxhA

*ftEenkj gfl;r e [kku@[kfut fodkl d {k= e de l de 15 o"kk dk mPprj çcèkdh; vuHkoA***

3. यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त विज्ञापन के अनुसरण में विभिन्न व्यक्तियों ने आवेदन दिया और दिनांक 26.10.2009 को चयन कमिटि द्वारा उनका साक्षात्कार लिया गया था। तत्पश्चात्, जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 3 का नाम और किसी अभिजीत घोष को अनुशंसित किया गया था। आगे परिशिष्ट–2 से प्रतीत होता है कि उक्त पद पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 का नाम प्रस्तावित किया और मुख्य सचिव के माध्यम से पूर्वोक्त प्रस्ताव पर माननीय मुख्यमंत्री का अनुमोदन इप्सित किया। आगे परिशिष्ट–2 प्रकट करता है कि माननीय मुख्यमंत्री ने पाया कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 के पास एम॰ बी॰ ए॰ डिग्री नहीं है, अत:, उन्होंने प्रश्न पूछा कि क्या प्रत्यर्थी सं॰ 2 का पूर्वोक्त प्रस्ताव विधि के अनुरूप है? परिशिष्ट 2 आगे प्रकट करता है कि उक्त प्रश्न का उत्तर कभी नहीं दिया गया था।

4. तब प्रत्यर्थीगण के प्रतिशपथ पत्र से प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्य सरकार ने जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ के श्रेणी अथवा इसके ऊपर कार्यरत केंद्रीय लोक क्षेत्र उपक्रम (इसके बाद सी॰ पी॰ एस॰ यू॰ के रूप में निर्दिष्ट) के अधिकारियों के बीच में से तीन वर्षों की अवधि के लिए प्रतिनियुक्ति के आधार पर जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के रिक्त पद को भरने का निर्णय किया है। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने कोल लिमिटेड/सेन्ट्रल कोलड फिल्ड्स लि॰/नेयेली लिग्नाईट कॉरपोरेशन लि॰/नेशनल मिनरल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड के अध्यक्ष–सह–प्रबंध निदेशकों को उन अधिकारियों, जो जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ के श्रेणी में अथवा इसके ऊपर कार्यरत थे, के नामों को भेजने का अनुरोध करते हुए पत्र भेजा। पूर्वोक्त पत्रों को परिशिष्ट ई श्रृंखला के रूप में प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है। उक्त पत्रों में राज्य सरकार द्वारा ऐसा निर्णय करने का उद्देश्य उल्लिखित किया गया है जिसे त्वरित निर्देश के लिए यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:—

^^e mYy[k dj ldrk g fd >kj[kM jkT; [kfut fodkl fuxe (t0 ,l0 ,e0 Mh0 lh0) >kj[kM jkT; d Hkhrj [kkuk vkj [kfutk d fodkl d {k= e

dk;jr fof'k"V ljdkjh miØe gA vkx] ;g fldu dk;yk [kku vkijV djrk g vkj bl vud dk;yk Cykdk vFkkr jckèk] irjkr] tx'oj vkj [kkl tx'oj vkj vud vU; [kkuk dk vkofVr fd;k x;k gA bld vfrjDr bldk ykg v;Ld [kkuk e fnypLih gftld fy, jk"Vh; [kfut fodkl fuxe (,u0 ,e0 MhO lhO) d lkFk l;Dr opj d fy, çLrko fn;k tk jgk gA

*ge i'koj :i l l{ke] tkudkj] bekunkj vkj mRlkgh 0;fDr dh ryk'k g tk fuxe dk of) vkj miyfCèk dh Qpkb;k ij y tk ldA***

5. उक्त पत्रों में, प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने स्पष्टत: कथन किया कि केवल सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी के अधिकारियों पर प्राथमिकत: विचार किया जाएगा, किंतु जी॰ एम॰ श्रेणी के अधिकारियों पर भी विचार किया जाएगा यदि वे पूर्वोक्त गुण और अर्हता रखते हैं।

6. आगे यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त पत्रों के अनुसरण में कुल मिलाकर छह व्यक्तियों का नाम अनुशंसित किया गया था, दो राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (इसमें इसके उपरांत एन॰ एम॰ डी॰ सी॰ के तौर पर निर्दिष्ट) द्वारा और चार सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा। यहाँ प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र में परिशिष्ट R-3/G के रूप में संलग्न प्रत्यर्थी सं॰ 3 के अनुशंसा पत्र का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। उक्त परिशिष्ट 2 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अनुशंसा के समय प्रत्यर्थी सं॰ 3 एन॰ एम॰ डी॰ सी॰ में उप जी॰ एम॰ (खान) की श्रेणी में पद धारण कर रहा था। यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त अनुशंसा की प्राप्ति पर कार्मिक एवं प्रशासनिक विभाग के प्रधान सचिव की अध्यक्षता के अधीन परिशिष्ट–F द्वारा चयन कमिटि गठित की गयी थी। तब यह प्रतीत होता है कि तत्पश्चात सरकार ने चयन का मापदंड परिवर्तित कर दिया था। परिवर्तित मापदंड के मुताबिक खान योजना, विकास और ऑपरेशन के क्षेत्र में कम से कम 10 वर्षों अथवा अधिक का उच्चतर प्रबंधकीय अनुभव रखने वाले उम्मीदवार विचार किए जाने के लिए पात्र है। इसने आगे स्पष्ट किया कि उच्चतर प्रबंधकीय अनुभव का अर्थ अधीक्षक अभियन्ता/डी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके समतुल्य की हैसियत होगी।

7. आगे यह प्रतीत होता है कि परिवर्तित मापदंड के आधार पर चयन कमिटि ने दिनांक 31.7.2007 को उम्मीदवारों का साक्षात्कार किया और प्रत्यर्थी सं॰ 3 का नाम क्रमांक 1 पर दर्शाते हुए तीन उम्मीदवारों के नामों की अनुशंसा की। तत्पश्चात, विभाग ने झारखंड के महामहिम राज्यपाल का अनुमोदन लिया और तब परिशिष्ट–H द्वारा तीन वर्षों की अवधि के लिए प्रबंध निदेशक, जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्त किया।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेन्द्र कृष्णा ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 की पूर्वोक्त नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती दिया है कि एन॰ एम॰ डी॰ सी॰ के अध्यक्ष–सह–प्रबंध निदेशक द्वारा की गयी अनुशंसा प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा जारी पत्र के अनुकूल नहीं है क्योंकि अनुशंसा की तिथि पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी में अधिकारी नहीं था। आगे निवेदन किया गया है कि चयन प्रक्रिया आरंभ होने के बाद नियुक्ति के लिए मापदंड परिवर्तित करने की छूट राज्य सरकार को नहीं है। वह निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थीगण की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र के परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि विभिन्न उम्मीदवारों का नामांकन प्राप्त करने के बाद चयन मापदंड परिवर्तित किया गया है। वह निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 का पक्षपात करने की दृष्टि से पूर्वोक्त मापदंड परिवर्तित किया गया है जो शक्ति का छद्म प्रयोग है, अत:, यह भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 का उल्लंघन करता है। निवेदन किया गया है कि यदि विभिन्न नाम निर्देशितियों के नामों को प्राप्त करने के बाद परिशिष्ट–E में यथा विहित

अर्हता परिवर्तित की गयी थी, तब अन्य अधिकारियों जो डी॰ जी॰ एम॰ श्रेणी में है के नामों को आमंत्रित करते हुए एक अन्य अनुरोध पत्र को भेजना राज्य सरकार के लिए अनिवार्य है ताकि प्रबंध निदेशक के पद पर उपयुक्त उम्मीदवार का चयन किया जा सके। वह निवेदन करते हैं कि सी॰ पी॰ एस॰ यू॰ के अधिकारियों जो जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी में है के बीच में से पद को भरने का उद्देश्य जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ की बेहतरी के लिए है। यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थीगण ने जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के हित को अनदेखा किया और प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए जगह बनाने की दृष्टि से नियुक्ति का मापदंड परिवर्तित कर दिया। निवेदन किया गया है कि चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 का उल्लंघन करती है, अत: पूर्वोक्त नियुक्ति के अभिखंडन के लिए यह न्यायालय उपयुक्त रिट जारी कर सकता है।

9. झारखंड राज्य के लिए उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता श्री अनिल कुमार सिन्हा ने निवेदन किया है कि याची ने ''अधिकार-पृच्छा'' रिट के लिए प्रार्थना किया है। वह आगे निवेदन करते हैं कि ''अधिकार-पृच्छा'' रिट केवल तभी जारी किया जा सकता है जब नियुक्ति सांविधिक नियमों के विपरीत है। निवेदन किया गया है कि याची ने यह दर्शाने के लिए कि जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्त करते हुए किसी सांविधिक नियम का उल्लंघन किया गया है, अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया है। उन्होंने निवेदन किया कि भले ही चयन प्रक्रिया में कुछ प्रक्रियात्मक अनियमितताएँ की गयी थी, तब भी ''अधिकार-पृच्छा'' रिट जारी करने के लिए प्रासंगिक हो सकती है किंतु उस आधार पर ''अधिकार पृच्छा'' रिट जारी नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निवेदन किया कि चूँकि याची व्यथित व्यक्ति नहीं है, अत: उसके कहने पर ''उत्प्रेषण'' रिट जारी नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, वह निवेदन करते हैं कि वर्तमान रिट आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

10. प्रत्यर्थी सं॰ 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनूप कुमार मेहता ने विद्वान महाधिवक्ता के तर्क को अपनाया है जहाँ तक रिट आवेदक की पोषणीयता का संबंध है। उन्होंने निवेदन किया कि परिवर्तित मापदंड के मुताबिक प्रत्यर्थी सं॰ 3 जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित है। अत:, उन्होंने निवेदन किया कि उक्त पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति में अवैधता नहीं है। अत: यह रिट आवेदन खारिज किए जाने का दायी है।

11. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजेन्द्र कृष्ण द्वारा निवेदन किया गया है कि **जनहित याचिका केंद्र एवं एक अन्य बनाम भारत संघ एवं एक अन्य, (2011)4 SCC 1** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ''अधिकार-पृच्छा'' रिट जारी करने के लिए न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार किया था। उन्होंने निवेदन किया कि पूर्वोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि ''अधिकार पृच्छा'' रिट जारी करने के प्रयोजन से सरकार के निर्णय का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की छूट न्यायालयों को है, यदि इसके निर्णय की वैधता को इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि अपनायी गयी प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं थी। निवेदन किया गया है कि ''अधिकार पृच्छा'' रिट इप्सित करने के अतिरिक्त याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति को अभिखंडित करने के लिए अन्य समुचित रिट अथवा आदेश जारी करने के लिए भी प्रार्थना किया है। उन्होंने निवेदन किया कि सरकार के निर्णय को पुनर्विलोकित करते हुए यदि न्यायालय संतुष्ट है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति का तरीका निष्पक्ष, न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं है, तब यह घोषणा का रिट जारी कर सकता है। उन्होंने निवेदन किया, जैसा ऊपर कहा गया है, कि राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए जगह बनाने के लिए नियुक्ति का मापदंड परिवर्तित कर दिया और तद्द्वारा जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के हित को अनदेखा किया, अत: प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति की प्रक्रिया निष्पक्ष न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं है। तद्नुसार, वह निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में घोषणा का रिट जारी किया जा सकता है जैसा **जनहित याचिका केद्र एवं एक अन्य मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है।

12. आरंभ में, मैं रिट आवेदन की पोषणीयता के बिंदु पर पक्षों के अधिवक्ता द्वारा किए गए अनेक निवेदनों पर विचार करना समुचित समझता हूँ। यह सत्य है कि **गुजरात उच्च न्यायालय एवं एक अन्य बनाम गुजरात किसान मजदूर पंचायत एवं अन्य, (2003)4 SCC 712,** और **बी॰ श्रीनिवास रेड्डी बनाम कर्नाटक नगरीय जल आपूर्ति एवं निकासी बोर्ड कर्मचारी संघ एवं अन्य, (2006)11 SCC 731** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिकार पृच्छा रिट जारी नहीं किया जा सकता है यदि अभिकथित उल्लंघन सांविधिक प्रकृति का नहीं है। किंतु **जनहित याचिका केंद्र एवं एक अन्य मामले (ऊपर)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकार पृच्छा रिट का विस्तार बढ़ा दिया है। बेहतर अधिमूल्यन के लिए उक्त निर्णय का पैराग्राफ 64 यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

*^^vkj0 d0 tu d ekey e Hkh bl U;k;ky; u ijk 73e lçf{kr fd;k fd U;kf;d iufoykdu dk ljkdkj bl l g fd D;k inèkkjh fu;fDr d fy, vgrk j[krk Fkk vkj D;k fu;fDr dju dk rjhdk viuk;h x;h çfØ;k fu"i{k] U;k;kfpr vkj ;fDr;Dr FkhA ge nkgjkr g fd fd, x, puko d fy, ljdkj U;k;ky;k d çfr mÙkjnk;h ugh g fdr ljdkj viu fu.k;k dh fofèki.krk@oèkrk d lcèk e U;k;ky;k d çfr mÙkjnk;h g tc ; U;kf;d iufoykdu vfèkdkfjrk d vèkhu vk{kfir gA ge bl fcn ij ikekf.kd fu.k;k dh l[;k c<kuk ugh pkgr gA***

13. पूर्वोक्त मामले में पैराग्राफ 53 पर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ''अधिकार पृच्छा'' रिट ईप्सित करने के अतिरिक्त यदि याची ने सर्वोच्च न्यायालय से किसी अन्य रिट, निर्देश अथ्वा आदेश जारी करने के लिए प्रार्थना किया है, तब सर्वोच्च न्यायालय को संतुष्ट होने पर घोषणा का रिट जारी करने से कोई रोक नहीं सकता है।

14. एन॰ कन्नडासन बनाम अजय खोसे, (2009)7 SCC 1, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ सं॰ 129 पर अभिनिर्धारित किया है कि ''अधिकार पृच्छा रिट तब जारी किया जा सकता है जब लोक पद के धारक को संवैधानिक अथवा सांविधिक प्रावधान का उल्लंघन करते हुए नियुक्त किया गया है।''

उसी निर्णय में पैराग्राफ 149 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि:–

*^^bld vfrfjDr] bl ekey e ?kk"k.kk dk fjV bfllr fd;k x;k FkkA dekj ine çlkn e bl U;k;ky; u ?kk"k.kk dk fjV tkjh fd;k Fkk ;|fi vfèkdkj iPNk fjV bfllr fd;k x;k FkkA ;g ?kk"k.kk djr g, fd mle dk vihykFkh mPp U;k;ky; d U;k;kèkh'k d :i e fu;Dr fd, tku d fy, vfgr ugh Fkk] mldk fu;Dr ugh dju dk fun'k nr g, ikfj.kkfed vkn'k Hkh tkjh fd;k x;k FkkA***

पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ सं॰ 163 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:–

"163. gekjh ppk dk lkj fuEufyf[kr g%&

(i) ;|fi U;kf;d iufoykdu dh lhfer ç;kT;rk g fdr bl çÑfr d ekey e ;g mPprj U;k;ikfydk d ij ugh gA

*(ii) mPprj U;k;ky; u doy vfèkdkj iPNk fjV tkjh dj ldr g cfYd vfèkdkj iPNk dh çÑfr dk Hkh fjV tkjh dj ldr gA ;g ?kk"k.kk dk fjV tkjh dju dk Hkh gdnkj g tk blh ç;k tu d çkIr djxk-------***

15. वर्तमान मामले में, याची ने अभिकथित किया कि नियुक्ति के लिए राज्य सरकार द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं है, अत: यह भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14

और 16 का उल्लंघन करती है। अत:, राज्य सरकार के पूर्वोक्त निर्णय का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की छूट इस न्यायालय को है। अत:, यदि पुनर्विलोकन करने पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर आता है कि उक्त नियुक्ति निष्पक्ष नहीं है, तब घोषणा का रिट जारी करने की छूट इसे है क्योंकि याची ने ''अधिकार पृच्छा'' रिट इप्सित करने के अतिरिक्त किसी अन्य समुचित रिट, निर्देश अथवा आदेश जारी करने के लिए भी प्रार्थना किया है।

16. यह सुनिश्चित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की शक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन माननीय सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति के समरुप है। चूँकि **जनहित याचिका केंद्र (ऊपर)** के मामले में जनहित याचिका ग्रहण करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन घोषणात्मक रिट जारी किया है क्योंकि निगरानी आयुक्त के पद पर श्री पी॰ जे॰ थॉमस की नियुक्ति की प्रक्रिया निष्पक्ष नहीं थी, अत:, मेरे दृष्टिकोण में यह रिट आवेदन भी पोषणीय है और प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति के निर्णय का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की छूट इस न्यायालय को है और यदि संतुष्ट है, यह घोषणा का रिट जारी कर सकता है।

17. अब, मैं अगले प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर होता हूँ कि क्या जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 को नियुक्त करने के लिए राज्य सरकार द्वारा अपनायी गयी चयन प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायोचित और युक्तियुक्त है?

18. जैसा ऊपर गौर किया गया है, वर्तमान मामले में परिशिष्ट-1 में अंतर्विष्ट विज्ञापन के आधार पर चयन कमिटि द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 3 पर विचार किया गया था यद्यपि प्रत्यर्थी सं॰ 3 एम॰ बी॰ ए॰ की अर्हता नहीं रखता है। यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन माननीय मुख्यमंत्री द्वारा पूछा गया था कि ''क्या प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति का प्रस्ताव विधि के अनुरूप है।'' विभाग द्वारा उक्त प्रश्न का उत्तर कभी नहीं दिया गया था।

19. प्रत्यर्थी सं॰ 1 और 2 द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र प्रकट करता है झारखंड राज्य में राष्ट्रपति शासन प्रख्यापित किया गया था और, तत्पश्चात, विज्ञापन के अनुसरण में नियुक्ति प्रक्रिया जारी नहीं रही थी, यद्यपि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उक्त नियुक्ति प्रक्रिया रद्द कर दी गयी थी। यह प्रतीत होता है कि झारखंड राज्य ने झारखंड के महामहिम राज्यपाल के परामर्शदाता की सलाह से जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी में कार्यरत सी॰ पी॰ एस॰ यू॰ के अधिकारियों की सेवाएँ प्रतिनियुक्ति के आधार पर इप्सित करते हुए जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद को भरने का निर्णय किया है क्योंकि सरकार की दृष्टि में ऐसा अधिकारी निगम को वृद्धि और प्राप्ति की ऊँचाइयों पर ले जा सकता है। तद्नुसार, प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने अधिकारियों, जो जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी में कार्यरत थे, के नामों के भेजने के लिए कोल इंडिया लि॰/सेंट्रल कोल फील्ड्स लि॰/न्येली लिग्नाइट निगम लि॰/एन॰ एम॰ डी॰ सी॰ के अध्यक्षों-सह-प्रबंध निदेशकों को अनुरोध पत्र भेजा था। परिशिष्ट R-3/G के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि एन॰ एम॰ डी॰ सी॰ के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 3 का नाम अनुशंसित किया गया था यद्यपि वह एन॰ एम॰ डी॰ सी॰ में उप महाप्रबंधक (खान) का पद धारण कर रहा था। इस प्रकार, वह पूर्वोक्त पत्र में नियत मापदंड के मुताबिक विचार किए जाने के लिए अर्हित नहीं था। यह उल्लेखनीय है कि उक्त अनुशंसा दिनांक 12.7.2010 को की गयी थी। प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र में कथित किया गया है कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 30.7.2010 को उम्मीदवार के चयन का मापदंड/अर्हता परिवर्तित किया गया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 से अनुशंसा की प्राप्ति के बाद उम्मीदवार का मापदंड/अर्हता परिवर्तित किया गया था। यह उल्लेख करना भी असंगत नहीं होगा कि मापदंड शब्दों ''उच्चतर प्रबंधकीय अनुभव'' को परिवर्तित करते हुए इसे अधीक्षक अभियंता/डी॰ जी॰ एम॰ अथवा समतुल्य की हैसियत के अर्थ के रूप

में स्पष्ट किया गया है। यह स्पष्टत: दर्शाता है कि उक्त मापदंड परिवर्तित किया गया था ताकि यह प्रत्यर्थी सं॰ 3 की अर्हता के अनुकूल हो सके। उल्लेखनीय है कि मापदंड परिवर्तित करने के बाद प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने अधिकारियों, जो अधीक्षण अभियन्ता/डी॰ जी॰ एम॰ अथवा समतुल्य की श्रेणी में पदस्थापित हैं, के नामों को भेजने के विभिन्न सी॰ पी॰ एस॰ यू॰ के अध्यक्षों को अनुरोध पत्र नहीं लिखा था। यह स्पष्टत: दर्शाता है कि विभाग ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 के साथ स्पर्धा करने के लिए अन्य समान रूप से अर्हित अधिकारियों को अवसर नहीं दिया था, अत: राज्य सरकार के प्राधिकारियों द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करती है।

20. जैसा ऊपर कहा गया है, राज्य सरकार ने इस दृष्टि से कि वह निगम को वृद्धि और प्राप्ति की ऊँचाईयों पर ले जाएगा, पेशेवर रूप से सक्षम, जानकार, ईमानदार और उत्साही व्यक्ति को नियुक्त करने का निर्णय किया। इस प्रकार, उक्त निर्णय जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ की बेहतरी के लिए राज्य सरकार द्वारा लिया गया था। किंतु वर्तमान मामले में, नियुक्ति का मापदंड प्रत्यर्थी सं॰ 3 के हित में परिवर्तित कर दिया गया है जो मेरे दृष्टिकोण में निष्पक्ष, न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं है। यदि उद्देश्य जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ की बेहतरी है, तब राज्य सरकार/खान विभाग और/अथवा चयन कमिटि को विचार में लेना चाहिए था कि जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के लिए अच्छा क्या है एवं न कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए क्या अच्छा है। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए जगह बनाने की दृष्टि से पूर्वोक्त सिद्धांत से विपथन किया था जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है।

21. महाराष्ट्र पथ परिवहन निगम बनाम राजेन्द्र भीमराव मांडवे, 2001(10) SCC 51, मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ''खेल के नियम तद्द्वारा जिसका अर्थ है, चयन प्रक्रिया आरंभ होने के बाद अथवा मध्य में संबंधित प्राधिकारी द्वारा चयन का मापदंड परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।'' **के॰ मंजुश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, 2008 (3) SCC 512,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया है।

22. जैसा ऊपर गौर किया गया है, वर्तमान मामले में, नियुक्ति की प्रक्रिया तब आरंभ हुई जब विभिन्न सी॰ पी॰ एस॰ यू॰ के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक को पत्र भेजा गया था। उक्त पत्र में, विनिर्दिष्टत: उल्लिखित किया गया है कि जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर नियुक्ति उन अधिकारियों, जो जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी में है, के बीच से की जाएगी। किंतु विभिन्न सी॰ पी॰ एस॰ यू॰ के अध्यक्षों से नामांकन प्राप्त करने के बाद चयन प्रक्रिया के मध्य में मापदंड चयन कमिटि की बैठक के ठीक पहले परिवर्तित कर दिया गया है। यह दर्शाता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 के लिए जगह बनाने की दृष्टि से उक्त मापदंड को परिवर्तित किया गया है क्योंकि वह जी॰ एम॰/सी॰ जी॰ एम॰ अथवा इसके ऊपर की श्रेणी में कार्यरत अधिकारी नहीं था। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि चयन का मापदंड पूर्वोक्त दो निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित विधि के विरुद्ध है।

23. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, संपूर्ण चयन प्रक्रिया के पुनर्विलोकन पर, मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी सं॰ 3 की नियुक्ति के लिए राज्य सरकार द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया निष्पक्ष, न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं थी। उक्त प्रक्रिया न केवल माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध है बल्कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 अैर 16 का उल्लंघन भी करता है। अत:, मैं संतुष्ट हूँ कि यह सुयोग्य मामला है जिसमें घोषणा का रिट जारी किया जा सकता है।

24. तद्नुसार, मैं घोषित करता हूँ कि जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रत्यर्थी

सं॰ 3 की नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 का उल्लंघन है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित विधि के विरुद्ध है।

25. अत:, मैं यह रिट आवेदन अनुज्ञात करता हूँ। परिणामस्वरुप, जे॰ एस॰ एम॰ डी॰ सी॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 (अरुण कुमार शुक्ला) की नियुक्ति अभिखंडित की जाती है। किंतु पक्षगण अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

मुकेश कुमार गुप्ता उर्फ मुकेश साव उर्फ गुप्ता

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 227 of 2003. Decided on 19th December, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 116 वर्ष 1999 में श्री संदीप शर्मा, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट III, चतरा द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय और आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–स्वतंत्र गवाहों द्वारा अभियोजन मामले का समर्थन–आँखों देखी साक्ष्य द्वारा चिकित्सीय साक्ष्य की संपुष्टि–आइ॰ ओ॰ का अपरीक्षण अथवा रक्तरंजित मिट्टी के रासायनिक रिपोर्ट अथवा प्रहार के हथियार का अप्रस्तुतीकरण परिणामहीन है और अपीलार्थी के मामले पर प्रतिकूलता कारित नहीं करता है–मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन नहीं आएगा–अपील खारिज।

(पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Laljee Sahay, Arun Kumar Sinha, Mritunjay Choudhary, For the Appellant; Mr. Krishna Shankar, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 116 वर्ष 1999 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट III, चतरा द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय और आदेश से उद्भूत होती है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उसे कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि अ॰ सा॰ 5 सेवल साव ने दिनांक 26.8.1998 को यह कथन करते हुए पुलिस के समक्ष रिपोर्ट दर्ज किया कि जब उसकी 35 वर्षीया बहु निर्मला देवी सुबह हैंड पंप से पानी भरने गयी थी, अपीलार्थी ने अचानक उसके पेट पर चाकू से प्रहार किया और इसे निकाल कर भाग गया। निर्मला देवी को अस्पताल ले जाया गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। आगे अभिकथित किया गया है कि अपीलार्थी ने पक्षों के बीच विवाद के कारण धमकी दी थी।

3. अपीलार्थी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री लालजी सहाय ने निवेदन किया कि इस मामले में किसी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है; और कि रक्तरंजित मिट्टी और अभिकथित हथियार को रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा नहीं गया था और उनको न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। आई॰ ओ॰ का परीक्षण भी नहीं किया गया था। अपराध किए जाने के अभिकथित समय पर अपीलार्थी कच्ची उम्र का था। अधिकाधिक यह मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग I के अधीन आएगा जिसके लिए अपीलार्थी लगभग 13 वर्षों से जेल में बना हुआ है।

4. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय और दंडादेश का समर्थन किया है। निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी दुश्मनी के कारण छुरा से उपहति करने के लिए छुरा के साथ प्रतीक्षा कर रहा था। डॉक्टर के साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया गया है। अत: आई॰ ओ॰ का अपरीक्षण और रक्तरंजित मिट्टी अथवा छूरा को रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा नहीं जाना अथवा इसको न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया जाना अपीलार्थी का मददगार नहीं है क्योंकि उस पर कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई है।

5. हम राज्य के अधिवक्ता के निवेदन में बल पाते हैं कि यह मामला धारा 304, भाग I के अधीन नहीं आएगा। साक्ष्य में आया है कि जब मृतका हैंडपंप से पानी भरने गयी, अपीलार्थी ने अचानक उसके पेट में छुरा का वार किया और तब इसे निकाल लिया और भाग गया। यह भी अभिकथित किया गया है कि उसने पक्षों के बीच दुश्मनी के कारण धमकी दी थी।

6. अ॰ सा॰ 1 स्वतंत्र चश्मदीद गवाह है। यद्यपि अ॰ सा॰ 2, 3, 4, 5, 6 और 7 मृतका के संबंधी हैं, किंतु वे चश्मदीद गवाह हैं और उन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। आँखों देखी साक्ष्य द्वारा चिकित्सीय साक्ष्य को संपुष्ट किया गया है। डॉक्टर (अ॰ सा॰ 9) ने पेट पर कटा हुआ पंचर जख्म पाया है। कटे हुए जख्म द्वारा पेट के अन्य भाग पर भी उपहति पायी गयी थी। डॉक्टर ने मत दिया कि उपहति छुरा जैसे तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी और यही मृत्यु का कारण था। तथ्यों और परिस्थितियों में, आई॰ ओ॰ का अपरीक्षण अथवा रक्तरंजित मिट्टी अथवा प्रहार के हथियार के रासायनिक रिपोर्ट का अप्रस्तुतीकरण परिणामहीन है और अपीलार्थी के मामले पर प्रतिकूलता कारित नहीं किया है।

7. हमारे मत में, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम हुआ है और आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं बनाया गया है। परिणामस्वरुप, हम विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और दंडादेश को अभिपुष्ट करते हैं और अपील खारिज करते हैं।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

तुलाराम नायक

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 891 of 2009. Decided on 13th December, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409, 420 एवं 120B—कोयला खदान भविष्य निधि एवं विविध भविष्य निधि अधिनियम, 1948— धारा 11A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—भविष्य निधि राशि को कपटपूर्वक निकाला जाना–उन्मोचन आवेदन अस्वीकार किया जाना–संपूर्ण अन्वेषण में याची के किसी कृत्य को दर्शाते हुए ऐसा कुछ नहीं है जिसे अभियुक्तगण द्वारा रचे गए षडयंत्र को अग्रसर करने में किया गया कहा जा सकता है–राशि मंजूर करने का कृत्य सद्विश्वास में किया गया–ज्यों ही याची को राशि के कूटरचित निकासी से संबंधित स्कैंडल की जानकारी हुई पुलिस को तुरन्त सूचना दी गयी–अभिकथित अपराध में याची की सह-अपराधिता दर्शानेवाली सामग्री नहीं है–याची मामले से उन्मोचित।

(पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. R.S. Majumdar, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

यह रिट आवेदन बाघमारा (मधुबन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 99 वर्ष 2007 (जी॰ आर॰ सं॰ 1417 वर्ष 2007) के संबंध में सबडिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30.7.2009 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन खारिज कर दिया गया था।

2. इस आवेदन को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि जब सूचक, विजय कुमार, महेशपुर कोलियरी का कर्मचारी, दिनांक 13.4.2007 को जी॰ पी॰ एफ॰ कार्यालय, धनबाद यह पता करने गया कि भविष्य निधि खाते में कितनी राशि जमा है, उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसकी 3,46,000 रुपयों की सीमा तक की संपूर्ण भविष्य निधि राशि और उसके सहयोगी शशांक प्रसाद की 5,57,000/- रुपयों की राशि उन दोनों को सेवानिवृत्त दर्शाकर किसी के द्वारा निकाल ली गयी थी। अत:, उसने सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ कार्यालय के कर्मचारीगण/अधिकारीगण बैंक अधिकारियों, आदि सहित अनेक अभियुक्तगण की अंतर्ग्रस्तता पर संदेह करते हुए स्थानीय पुलिस के पास लिखित रिपोर्ट दाखिल किया। उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409, 420, 120B के अधीन बाघमारा (मधुबन) पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 99 वर्ष 2007 के रूप में मामला दर्ज किया गया था।

3. अन्वेषण के दौरान पता लगा था कि समरुप तरीके से बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के अन्य कर्मचारियों की भविष्य निधि की राशि पहले ही अभियुक्तगण द्वारा निकाल ली गयी थी।

4. अन्वेषण के क्रम में पता चला था कि अभियुक्तगण में से कुछ अर्थात गंगाधर रवानी, तारा पदो मंडल, बंशीलाल साहू, महेशपुर कोलियरी के भविष्य निधि खंड का लिपिक और संजय कुमार सिंह ने षडयंत्र रचकर सुरेश सिंह, शशांक कुमार, सूचक विजय कुमार और जोधन महतो के जी॰ पी॰ एफ॰ खाते से राशि की निकासी से संबंधित आवेदनों को उन व्यक्तियों के कूटरचित हस्ताक्षरों को करके प्रसंस्कृत करवाया था और तब इसे भारत कोकिंग कोल लिमिटेड के महेशपुर कोलियरी के पदधाारी के कूटरचित हस्ताक्षर के अधीन क्षेत्रीय आयुक्त, कोयला खदान भविष्य निधि के कार्यालय को अग्रसरित करवाया। इस पर गंगाधर रवानी ने सुरेश सिंह और शशांक कुमार के पहचानपत्र के ऊपर फोटोग्राफ लगाकर सुरेश सिंह और शशांक कुमार के रूप में अपना हस्ताक्षर किया और सुरेश सिंह और शशांक कुमार के नाम में बैंक में खाता खुलवाया। इसी प्रकार, तारा पदों मंडल और संजय सिंह ने प्रासंगिक दस्तावेजों पर अपना फोटोग्राफ लगाकर और हस्ताक्षर कर विजय कुमार और जोधन महतो के नाम में बैंक में खाता खुलवाया बाद में, उन्होंने राशि निकाल ली जब याची, क्षेत्रीय कमिश्नर, कोयला खदान भविष्य निधि द्वारा मंजूर किए जाने के बाद उन खातों में इसे जमा किया गया था। कूटरचित दस्तावेजों के आधार पर कपटपूर्वक उक्त नामित उन व्यक्तियों के भविष्य निधि खाते से धन निकालने के लिए पूर्वोक्त अभियुक्तगण द्वारा अपनायी गयी आपराधिक कार्य प्रणाली का पता अन्वेषण अधिकारी द्वारा तब लगाया जा सका था जब पहचान पत्र, खाता खोलने के फॉर्मों और राशियों की निकासी से संबंधित आवेदनों को जब्त किया गया था। अन्वेषण के दौरान पूर्वोक्त व्यक्तियों ने अन्वेषण अधिकारी के समक्ष संस्वीकार किया कि समस्त आवेदन, जिन्हें भारत कोकिंग कोल लिमिटेड के पदधारियों द्वारा क्षेत्रीय आयुक्त, कोयला खदान भविष्य निधि को अग्रसारित किया गया था, कूटरचित थे।

5. इस पर, उन चार व्यक्तियों के विरुद्ध और कोयला खदान भविष्य निधि कार्यालय के लिपिकों में से कुछ के विरुद्ध भी आरोप-पत्र दाखिल किया गया था किंतु बाद में याची के विरुद्ध भी आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। जिस पर समस्त अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 409, 467, 468, 471 और 120B के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया गया था। तत्पश्चात् आरोप विरचित किए जाने के चरण पर, याची के उन्मोचित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन याची की ओर से आवेदन इस आधार पर दाखिल किया गया था कि अभिकथित अपराध में याची की सह-अपराधिता दर्शाते हुए कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है। किंतु, विद्वान दंडाधिकारी द्वारा दिनांक 30.7.2009 के अपने आदेश के तहत उस प्रार्थना को उसमें यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि याची के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है और जब विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष उक्त आदेश को चुनौती दी गयी थी, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने विद्वान दंडाधिकारी के आदेश को अभिपुष्ट किया और तद्द्वारा पुनरीक्षण आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था।

उससे व्यथित होकर, यह आवेदन दाखिल किया गया है।

6. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अन्वेषण के क्रम में संग्रहित सामग्रियों से यह प्रकाश में आया कि गंगाधर रवानी, तारा पदो मंडल, बंशीधर साह और सुरेश सिंह, शशांक सिंह, विजय कुमार और जोधन महतो के भविष्य निधि खाते से राशि की निकासी से संबंधित दस्तावेजों की कूटरचना के जनक थे और तब इसे भारत कोकिंग कोल लिमिटेड के कार्यालय से क्षेत्रीय आयुक्त, कोयला खदान भविष्य निधि के कार्यालय को अग्रसारित करवाया और उन आवेदनों पर सद्भावपूर्वक कार्रवाई करते हुए याची ने राशि मंजूर किया और इसको संबंधित बैंकों को भेजा जहाँ से उन अभियुक्तगण ने सुरेश सिंह और शशांक सिंह के नाम से कूटरचित खातों को खुलवाकर इसे निकाल लिया और इसका दुर्विनियोग किया, फिर भी याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया है, तथापि यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है कि याची कभी भी षडयंत्र का पक्ष था, संभवतः इस कारण से कि याची ने क्षेत्रीय आयुक्त, कोयला खदान भविष्य निधि होने के नाते राशि मंजूर किया था किंतु वह कृत्य इस याची को अभियोग के साथ नहीं जोड़ता है क्योंकि उक्त कृत्य सद्भावर्पूक किया गया था जो इस तथ्य से स्थापित होता है कि ज्योंही याची को पता चला कि रिष्टि करके अभियुक्तगण में से कुछ ने वस्तुतः कोलियरी मजदूरों के जी॰ पी॰ एफ॰ खाते से राशि निकाल लिया था, याची ने सूचक द्वारा इस मामले को दर्ज किए जाने के पहले मामला दर्ज किया जिसे दिनांक 10.5.2007 को बाघमारा (मधुबन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 99 वर्ष 2007 के रूप में दर्ज किया गया था और इसलिए याची को आवेदनों जिन्हें कूटरचित कहा गया है पर की राशि को मंजूर करने में सद्विश्वास में कृत्य करता कहा जा सकता है और तद्द्वारा कोयला खदान भविष्य निधि और विविध भविष्य निधि अधिनियम, 1948 की धारा 11A में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में उसे अभियोजित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसमें अनुबंधित किया गया है कि किसी चीज, जिसे सद्विश्वास में किया गया है अथवा जो इस अधिनियम के अधीन अथवा उसके अधीन विरचित किसी योजना के अधीन किए जाने के लिए आशयित है, के संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई वाद अथवा विधिक कार्यवाही नहीं की जाएगी और, इसलिए, इस स्थिति के अधीन, अवर न्यायालय को याची को मामले से उन्मोचित कर देना चाहिए था क्योंकि अभिकथित अपराध में याची की सह-अपराधिता दर्शाने वाली कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है किंतु, अवर न्यायालय ने याची को उन्मोचित करने से इनकार कर दिया है। अतः, उक्त कथित परिस्थितियों में अवर न्यायालय ने निश्चय ही अवैधता की है और इसलिए विद्वान दंडाधिकारी द्वारा और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

7. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर, यह वस्तुतः प्रतीत होता है कि अन्वेषण के दौरान संग्रहित सामग्रियाँ प्रकट करती है कि गंगाधर रवानी, तारा पदो मंडल, बंशीधर साह और कुछ अन्य व्यक्तियों ने एक दूसरे से मिलकर षडयंत्र रचकर सुरेश सिंह, शशांक कुमार, विजय कुमार सिंह और जोधन महतो के जी॰ पी॰ एफ॰ खाते से राशि निकालने के लिए कूटरचित आवेदनों/पहचान पत्र पर गंगाधर रवानी, तारापदो मंडल और संजय सिंह का चित्र लगाकर और तब कूटरचित हस्ताक्षर कर आवेदनों को भारत कोकिंग कोल लिमिटेड के कार्यालय से क्षेत्रीय आयुक्त कोयला खदान भविष्य निधि के कार्यालय को अग्रसरित करवाया और उन्होंने (गंगाधर रवानी, तारा पदो मंडल और संजय सिंह) ने उन व्यक्तियों के नाम से भी खाता खुलवाया जिनके खातों से उनका कूटरचित हस्ताक्षर करके धन निकाला जब याची द्वारा मंजूर किए जाने पर राशि उन व्यक्तियों के बैंक खातों में अंतरित की गयी थी। शायद इस कारण से कि राशि मंजूर की गयी थी, इस याची को अभियुक्त बनाया गया है यद्यपि संपूर्ण अन्वेषण में याची के किसी कृत्य को दर्शाते हुए कुछ भी नहीं है जिसे अभियुक्तगण द्वारा रचे गए षडयंत्र को अग्रसर करने में किया गया कहा जा सकता है। इस संबंध में राज्य की ओर से कुछ भी इंगित नहीं किया जा सका था।

8. केस डायरी के परिशीलन पर, वहाँ याची के किसी कृत्य को दर्शाते हुए बिल्कुल कुछ भी प्रतीत नहीं होता है कि जिसे अपराध किए जाने को अग्रसर करने में किया गया कृत्य कहा जा सकता है। उसकी अनुपस्थिति में कूटरचित आवेदनों पर भी राशि मंजूर करने के कृत्य को सद्विश्वास में किया गया कृत्य कहा जा सकता है जो इस तथ्य से स्थापित होता है कि ज्योंही याची को कुछ दुष्ट व्यक्तियों द्वारा कोलियरी मजदूरों की भविष्य निधि से राशि के कूटरचित निकासी से संबंधित स्कैंडल के बारे में जानकारी हुई, वर्तमान मामला दर्ज किए जाने के पहले संबंधित पुलिस थाना को सूचना दी गयी थी।

9. इन परिस्थितियों के अधीन, मैं अभिकथित अपराध में याची की सह-अपराधिता दर्शाते हुए कोई भी सामग्री नहीं पाता हूँ और, इसलिए, यह विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि याची को अभियोजित करने की अनुमति दी जाती है।

10. इन परिस्थितियों के अधीन, बाघमारा (मधुबन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 99 वर्ष 2007 (जी॰ आर॰ सं॰ 1417 वर्ष 2007) में सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 30.7.2009 का आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, याची को मामले से उन्मोचित किया जाता है।

परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सैयद मोहम्मद सरफुल्ला

cuke

प्राचार्य, दिल्ली पब्लिक स्कूल, धनबाद एवं अन्य

L.P.A. No. 136 of 2011. Decided on 4th January, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 100A—अपील पर वर्जना–उच्च न्यायालय में अंतरा न्यायालय अपील पोषणीय नहीं है–आक्षेपित आदेश अनवधानता के कारण है जहाँ तक यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी उच्च न्यायालय आदेश के विरुद्ध अंतरा न्यायालय अपील पोषणीय है भले ही इसे अपीलीय डिक्री अथवा आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है–अपील खारिज। (पैराएँ 2, 5 एवं 6)

निर्णयज विधि.–(2010) 9 SCC 84; 2009(1) JCR 120 (SC)—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Appellant; M/s Anoop Kr. Mehta, Ashutosh Anand, For the Respondents.

आदेश

इस एल॰ पी॰ ए॰ की पोषणीयता के प्रश्न पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. यह एल॰ पी॰ ए॰ अपील केस (एस॰ बी॰) सं॰ 11 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 3.3.2011 के आदेश के विरुद्ध है, अत: प्रत्यर्थीगण ने उसी उच्च न्यायालय के समक्ष आगे की गयी इस अपील की पोषणीयता के बारे में आपत्ति इस आधार पर उठाया है कि अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध एल॰ पी॰ ए॰ दाखिल नहीं होता है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **गीता देवी एवं अन्य बनाम पूरन राम रायगर एवं एक अन्य, (2010)9 SCC 84,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। उक्त निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 100A की अंत:स्थापन के बाद उच्च न्यायालय नियमावली अथवा लेटर्स पेटेन्ट में किसी भी विपरीत चीज के बावजूद उच्च न्यायालय में अंतरा न्यायालय अपील पोषणीय नहीं है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 141 वर्ष 2010** में **सचिदानंद लाल उर्फ सचिदानंद शाह बनाम बिहार राज्य (अब झारखंड), 2009 (1) JCR 120 (SC),** मामले में निर्णय पर विश्वास करते हुए अभिनिर्धारित किया कि अंतरा–न्यायालय अपील पोषणीय है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने सचिदानंद लाल उर्फ सचिदानंद शाह मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय पर विश्वास किया।

4. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है।

5. सचिदानंद शाह उर्फ सचिदानंद लाल के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पहले एकल पीठ की अपीलीय डिक्री वर्ष 2000 के पहले की थी क्योंकि स्वयं खंडपीठ ने दिनांक 1.3.2000 को एल॰ पी॰ ए॰ खारिज कर दिया था। जबकि सिविल प्रक्रिया संहिता उसके बाद संशोधित की गयी थी और धारा 100A अंत:स्थापित की गयी थी जो दिनांक 1.7.2002 को प्रभाव में आयी। सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 100A कहती है कि–**किसी उच्च न्यायालय के लिए किसी लेटर्स पेटेन्ट में या विधि का बल रखने वाली किसी अन्य लिखत में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी अपील डिक्री या आदेश की अपील की सुनवाई और उसका विनिश्चय उच्च न्यायालय के किसी एकल न्यायाधीश द्वारा किया जाता है वहां ऐसी अपील में ऐसे एकल न्यायाधीश के निर्णय और डिक्री की आगे कोई अपील नहीं होगी।**

6. अत:, **गीता देवी एवं अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निष्कर्ष की दृष्टि में, **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 141 वर्ष 2010** में पारित दिनांक 1.9.2010 का संक्षिप्त आदेश विधि के प्रश्न को विनिश्चित करते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है और यदि इसने विधि का प्रश्न विनिश्चित किया है, तब यह **गीता देवी एवं अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत जाता है और इसलिए, दिनांक 1.9.2010 का संक्षिप्त आदेश अनवधानता के कारण है जहाँ तक यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्च न्यायालय के किसी आदेश के विरुद्ध अंतरा–न्यायालय अपील पोषणीय है भले ही इसे अपीलीय डिक्री अथवा आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में यह एल॰ पी॰ ए॰ अपीलीय आदेश के विरुद्ध एल॰ पी॰ ए॰ होने के कारण पोषणीय नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

एटवा मुंडा

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 1763 of 2003. Decided on 23rd January, 2012.

मुरहू पी॰ एस॰ केस सं॰ 46 वर्ष 2000, जी॰ आर॰ केस सं॰ 536 वर्ष 2000 के तत्सम से उद्भूत होने वाले सत्र विचारण सं॰ 177 वर्ष 2001 में विद्वान प्रथम अपर न्यायिक आयुक्त, खूँटी द्वारा पारित दिनांक 28.11.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–मृतक की पुत्री और अपीलार्थी के बीच प्रेम प्रसंग–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अभियोजन साक्षियों द्वारा दिए गए बयानों और न्यायालय में उनके साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास है–चश्मदीद गवाहों का साक्ष्य महत्वपूर्ण विरोधाभासों से पीड़ित है–अभियोजन गवाहों के साक्ष्य में ऐसे महत्वपूर्ण विरोधाभासों की दृष्टि में दोषसिद्धि को मान्य ठहराना सुरक्षित नहीं होगा–अपीलार्थी को संदेह का लाभ देते हुए आक्षेपित निर्णय अपास्त किया गया। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Akhouri Anjani Kumar, For the Appellant; None, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करने वाले और आजीवन कारावास का दंडादेश देने वाले निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि 19/20.10.2000 की मध्यवर्ती रात्रि में सूचक शाल्गी मुंडेंन (अ॰ सा॰ 10) सोने गयी थी। सुबह में उसका सबसे छोटा पुत्र रोने लगा था जिस पर वह गयी और अपने पति राउतू मुंडा (मृतक) को नहीं पाया। उसने सोचा कि वह दैनिक कर्म से निबटने गया होगा किंतु जब वह प्रातः 6.30 बजे तक नहीं लौटा, उसने उसको खोजना शुरू किया जिस दौरान उसे पता चला कि गाँव से लगभग 300 मीटर दूर चट्टान पर उसके पति का मृत शरीर पड़ा हुआ था। सूचक वहाँ गयी और देखा कि तेज धार वाले हथियार से उसके पति की हत्या कर दी गयी थी। प्राथमिकी में यह कथन भी किया गया था कि सूचक अथवा मृतक की किसी से दुश्मनी नहीं थी किंतु यह प्रतीत होता है कि किसी अज्ञात व्यक्ति ने उसको घर से बुलाकर उसकी हत्या कर दी है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अखौरी अंजनी कुमार ने अनेक आधारों पर निर्णय का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दिए गए गवाहों के बयान और न्यायालय के समक्ष दिए गए साक्ष्य के बीच महत्वपूर्ण विरोधाभास है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय के समक्ष दिए गए बयानों में भी महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं। अतः, उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाए और कि वह 11 वर्षों से अधिक से कारागार में बना हुआ है।

4. राज्य के लिए कोई नहीं उपस्थित हुआ।

5. अ॰ सा॰ 1 डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण किया। उन्होंने मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर अनेक कटी हुई उपहतियों को पाया जिन्हें तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित किया गया था जो मृत्यु

का कारण थी। अ॰ सा॰ 2 और 3 मृत्यु समीक्षा गवाह हैं। अ॰ सा॰ 4, 8 और 9 को चश्मदीद गवाह कहा गया है। अ॰ सा॰ 10 जो सूचक है सहित अ॰ सा॰ 5, 6 और 7 अनुश्रुत गवाह हैं। अ॰ सा॰ 11 आई॰ ओ॰ है। अ॰ सा॰ 12 दंडाधिकारी है जिन्होंने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अ॰ सा॰ 8 और 9 का बयान दर्ज किया।

6. अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद यह प्रतीत होता है की अपीलार्थी और मृतक की पुत्री बुधनी कुमारी अ॰ सा॰ 8 के बीच और अ॰ सा॰ 4 सनिका मुंडा और अ॰ सा॰ 9 चिरलू कुमारी के बीच प्रेम प्रसंग था। इन दोनों युगलों को मृतक द्वारा रात में साथ-साथ देखा गया था जिसने अपीलार्थी पर टांगी से प्रहार करने का प्रयास किया किंतु अपीलार्थी ने इसे छीन लिया और मृतक पर प्रहार किया। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अ॰ सा॰ 8 और 9 द्वारा दिए गए बयानों और न्यायालय में उनके साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास है। अ॰ सा॰ 8 बुधनी कुमारी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अपने बयान में कहा कि अपीलार्थी ने मृतक पर प्रहार किया था जबकि अ॰ सा॰ 9 ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अपने बयान में ऐसे प्रहार के बारे में कुछ भी नहीं कहा था। न्ययालय में अ॰ सा॰ 8 और 9 ने केवल इतना कहा कि अपीलार्थी ने मृतक की हत्या की थी किंतु प्रति-परीक्षण में उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने घटना देखी नहीं थी। इसी प्रकार, अ॰ सा॰ 4 सनिका मुंडा जिसे भी चश्मदीद गवाह बताया जाता है के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं। उसने अपने मुख्य परीक्षण और अपने प्रति परीक्षण में स्वयं का ही खंडन किया है।

7. अभियोजन गवाहों के साक्ष्य में ऐसे महत्वपूर्ण विरोधाभासों की दृष्टि में दोषसिद्धि को मान्य ठहराना सुरक्षित नहीं होगा। हमारे मत में, अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए।

8. तद्नुसार, दिनांक 28.11.2001 का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

शाखा प्रबंधक, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं एक अन्य

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य

Cr. Misc. No. 18460 of 2000. Decided on 23rd January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406 एवं 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—न्यास का दांडिक भंग और छल—संज्ञान—याचीगण ने कपटपूर्वक अथवा गैर ईमानदार रूप से सेवा देने के लिए परिवादी को कभी प्रेरित नहीं किया—धारा 420 के अधीन अपराध करने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है—न्यास के दांडिक भंग का कोई मामला नहीं बनता है क्योंकि याचीगण के विरुद्ध स्वयं अपने उपयोग के लिए गैर ईमानदार रूप से धन परिवर्तित करने का अभिकथन नहीं है—धाराओं 420 एवं 406 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने में अवर न्यायालय ने अवैधता की—दांडिक कार्यवाही अपास्त—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.—(2000) 4 SCC 168—Applied.

अधिवक्तागण.—M/s Rajesh Kumar, Amit Kumar, For the Petitioner; Mr. S.K. Dubey, For the State; None, For the Opp. Party No.2; Mr. K.P. Deo, For the Opp. Party No.3.

आदेश

यह पुनरीक्षण आवेदन दिनांक 26.6.2000 के आदेश सहित परिवाद केस सं॰ पी॰ सी॰ आर॰ 210 वर्ष 2000 की समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन तत्कालीन सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, दुमका ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन अपराधों के लिए संज्ञान लिया।

2. पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर वस्तुत: प्रतीत होता है कि परिवादी शैलेन्द्र कुमार चौधरी, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने परिवाद दाखिल किया जिसे परिवाद केस सं॰ 210 वर्ष 2000 के रूप में दर्ज किया गया था जिसमें कथन किया गया है कि वह स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, जिसे पी॰ डब्ल्यू॰ डी॰, दुमका के भवन में चलाया जा रहा था, जो डीजल जेनरेटर सेट (3.5 के॰ वी॰ ए॰) की सेवा 1800/- रुपया प्रतिमाह के भुगतान पर देता था। बाद में, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, मुख्य शाखा, दुमका का कार्यालय स्वयं अपने भवन में चला गया और इसने 63 के॰ वी॰ ए॰ का डीजल जेनरेटर सेट खरीद लिया। इसके संस्थापन पर इसको चलाने और रख-रखाव के लिए निविदा आमंत्रित की गयी थी। परिवादी ने अपना निविदा कागज दाखिल किया और सफल हुआ और उसे काम दिया गया जिसके निबंधनों और शर्तों के मुताबिक उसे ऊर्जा अनापूर्ति की स्थिति में जेनरेटर चलाना था और इसके बदले उसे 10,000/- रुपयों का भुगतान किया जाना था किंतु परिवादी को मुख्य मरम्मती काम का व्यय अपवर्जित करके फुएल, लुब्रीकैंट, ग्रीज आदि के लिए व्यय उपगत करना था।

3. कालक्रम में डीजल की कीमत बढ़ा दी गयी। इसके अलवा, रख-रखाव का खर्च भी बढ़ गया था और इसलिए परिवादी द्वारा जेनरेटर सेट चलाने के लिए रख-रखाव खर्च और अन्य व्यय की वृद्धि के लिए अनुरोध किया गया था। इस पर, शाखा प्रबंधक ने उससे कहा कि रख-रखाव खर्च बढ़ाने के लिए मामला उच्चतर अधिकारियों के पास भेज दिया गया है। ऐसे आश्वासन पर, प्रतिवादी विपुल राशि निवेशित करके सेवा देते रहा किंतु शाखा प्रबंधक के नया करार कभी नहीं किया और तद्द्वारा परिवादी को काफी नुकसान पहुँचाया। इन अभिकथनों पर अभिकथित किया गया था कि याचीगण ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन दंडनीय अपराधों को किया है। ऐसे परिवाद पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन दिनांक 26.6.2000 के आदेश के तहत संज्ञान लिया गया था।

4. पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन, वस्तुत: प्रश्न यह उठता है कि क्या परिवाद में किए गए अभिकथन छल अथवा दुर्विनियोग का अपराध गठित करते है?

5. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 में छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:—

> *415. **Ny-**&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkk0; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA***

6. पूर्वोक्त प्रावधान के कोरे परिशीलन पर वस्तुत:, यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए।

(I) >Bk vFkok Hkked 0;in'ku djd vFkok fdlh vU; dkjokb vFkok yki }kjk fdlh 0;fDr dk çofpr djukA

(ii) fdlh lifÙk dk nu d fy, vFkok fdlh vU; 0;fDr }kjk bl viu ikl j[ku d fy, lgefr nu d fy, ml 0;fDr dk diVi.k vFkok xj bekunkj mRçj.k vFkok vk'k;iod ml 0;fDr dk dkb pht dju vFkok ugh dju d fy, çfjr djuk tk og ugh djrk vFkok dju dk yki ugh djrk ;fn ml bl rjg çofpr ugh fd;k tkrk vkj tk ÑR; vFkok yki ml 0;fDr d 'kjhj] food] çfr"Bk vFkok lifÙk dk udlku vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dkfjr fd, tku dh lHkkouk gA

7. इस चरण पर, मैं **हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य (2000)4 SCC 168,** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"14. bl èkkjk d iBu ij Li"V g fd ifjHkk"kk e ÑR;k d nk iFkd oxk dk fn;k x;k g ftUg çofpr 0;fDr dk dju d fy, mRçfjr fd;k tk ldrk gA çFker% ml fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk nu d fy, diViod vFkok xjbekunkj :i l mRçfjr fd;k tk ldrk gA èkkjk e fn, x, ÑR;k dk nljk ox fdlh pht dk djuk vFkok ugh djuk g tk çofpr 0;fDr djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k tkrkA ekeyk d çFke ox e mRçj.k diVi.k vFkok xjbekunkj gkuk pkfg,A ÑR;k d nlj ox e mRçj.k vk'k;i.k gkuk pkfg, fdr diVi.k vFkok xjbekunkj ughA

*15. ç'u fofuf'pr djr g, è;ku e j[kuk gkxk fd lfonk d Hkx ek= vkj Ny d vijkèk d chp lfHkUurk l{e gA ;g mRçj.k d le; vfHk;Dr d vk'k; ij fuHkj djrk g ftldk fu.k; mld ckn d i'pkrorh vkpj.k }kjk fd;k tk ldrk g fdr ;g i'pkrorh vkpj.k ,dek= ijh{kk ugh gA lfonk dk Hkx ek= Ny d fy, nkfMd vfHk;ktu dk tUe ugh n ldrk g tc rd l0;ogkj d vkjHk e gh vFkkr tc vijkèk fd;k x;k crk;k x;k g] diVi.k vFkok xj&bekunkj vk'k; n'kk;k ugh tkrk gA vr% vk'k; vijkèk dk lkj gA fdlh 0;fDr dk Ny dk nk"kh vfHkfuèkkfjr dju d fy, ;g n'kkuk vko';d g fd oknk djr le; mldk diVi.k vFkok xjbekunkj vk'k; FkkA ckn e viuk oknk ijk dju e mldh foQyrk ek= dk vkjHk e gh vFkkr tc mlu oknk fd;k Fkk] mldk ,k lg&vkijkfèkd vk'k; mièkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA***

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि लागू करने पर यह कहा जा सकता है कि याचीगण के विरुद्ध परिवादी को अपनी सेवा देने के लिए कपटपूर्वक अथवा गैरईमानदार रूप से उत्प्रेरित करने का अभिकथन कभी नहीं किया गया है। अत:, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध करने का प्रश्न उद्‌भूत ही नहीं होता है।

9. इसी प्रकार से, न्यास के दांडिक भंग का मामला नहीं बनता है क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अवयवों को संतुष्ट करने के लिए स्वयं अपने उपयोग के लिए गैरईमानदार रूप से धन परिवर्तित करने का अभिकथन याचीगण के विरुद्ध नहीं है।

10. इन परिस्थितियों के अधीन, विद्वान अवर न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420 और 406 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने की अवैधता की और इसलिए दिनांक 26.6.2000 के आदेश

सहित परिवाद केस सं॰ पी॰ सी॰ आर॰ 210 वर्ष 2000 में समस्त दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

11. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k

कृपानंदन प्रसाद एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(Cr.) No. 01 of 2012. Decided on 13th January, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 207 एवं 208—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—अभियुक्त को पुलिस कागजातों की आपूर्ति–दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 207 एवं 208 के अधीन दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 207 एवं 208 का अनुपालन करना दंडाधिकारी का कर्तव्य है–यदि दस्तावेज विशाल है, इसकी प्रति अभियुक्त को देने के बजाए उसे केवल निजी तौर पर अथवा न्यायालय में अधिवक्ता के माध्यम से इसका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी–अभियुक्तगण को अविलंब दस्तावेजों की आपूर्ति अथवा निरीक्षण करने की अनुमति के प्रावधानों का अनुपालन करने का निर्देश झारखंड राज्य के समस्त दंडाधिकारियों को जारी किया गया।

(पैराएँ 8 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s Hemant Kumar Shikarwar, For the Petitioners; J.C. to A.A.G., For the State.

आदेश

कार्यालय त्रुटियों को अनदेखा किया जाता है।

2. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

3. यह आघातमय है कि वर्ष 1988 के दांडिक मामले में दिनांक 14.12.2005 का उन्मोचन आदेश प्राप्त करने के लिए विस्तारपूर्वक तर्क करने के बाद भी, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, उन्होंने पहली बार यह परिवाद करते हुए आवेदन दाखिल किया कि उन्हें पुलिस कागजातों को नहीं दिया गया है और तत्पश्चात् वह विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदन देते रहे, विचारण न्यायालय द्वारा उनके आवेदनों को विनिश्चित नहीं किया है और उनको पुलिस कागजातों की आपूर्ति नहीं की गयी है।

4. याचीगण की शिकायत यह है कि उनको पुलिस पेपर्स की आपूर्ति नहीं की गयी है। यदि ऐसा है, तब विचारण न्यायालय अविलंब अभियुक्तगण को पुलिस पेपर्स की आपूर्ति सुनिश्चित करेगा और यदि अभियोजन पुलिस पेपर्स की आपूर्ति करने में विफल रहता है, मामला पुलिस महानिदेशक, झारखंड को रिपोर्ट किया जाए जो उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई कर सकते हैं जो अभियुक्त को अध्यपेक्षित दस्तावेजों की आपूर्ति करने में विफल रहे।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना किया कि मामला विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, II, धनबाद के न्यायालय से किसी अन्य न्यायालय को अंतरित किया जा सकता है।

6. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आरंभ में यह मामला सत्र न्यायालय, बोकारो

में लंबित था जिसे इस न्यायालय के आदेश द्वारा अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद के न्यायालय को अंतरित किया गया था जहाँ अब यह मामला लंबित है।

7. यह प्रतीत होता है कि न तो विचारण न्यायालय ने वर्ष 1998 में दर्ज दांडिक मामले में कार्यवाही करने का ख्याल किया है और न ही अभियोजन ने कोई दिलचस्पी दिखायी है।

8. दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराएँ 207 और 208 स्पष्टत: उन धाराओं में वर्णित दस्तावेजों की प्रति की आपूर्ति अभियुक्त को करने का प्रावधान बनाती है। किंतु, उक्त धारा में प्रावधानित किया गया है कि यदि दंडाधिकारी संतुष्ट है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 208 के खंड (v) में निर्दिष्ट ऐसा कोई दस्तावेज विशाल है, वह इसकी प्रति अभियुक्त को देने के बजाए निर्देश देगा कि उसे स्वयं निजी तौर पर अथवा न्यायालय में अधिवक्ता के माध्यम से इसका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी।

9. चाहे जो भी हो, दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 207 और 208 के अधीन दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 207 और 208 के प्रावधानों का अनुपालन करना दंडाधिकारी का कर्तव्य है।

10. चूँकि रिट याचीगण का मामला है कि उनके द्वारा मांगे जाने पर भी उन्हें पुलिस पेपर्स और अन्य ऐसे दस्तावेजों जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराएँ 207 अथवा 208 के अधीन आवश्यक है की आपूर्ति नहीं की गयी है जो प्रथम दृष्टया इस तथ्य की दृष्टि में अविश्वसनीय है कि याचीगण स्वयं पेशे से अधिवक्ता हैं और विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष अपने उन्मोचन के लिए तर्क भी किया है और वह चरण दंडाधिकारी द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 208 का अनुपालन किए जाने के बहुत बाद आता है। किंतु संपूर्ण झारखंड राज्य में समस्त दंडाधिकारी के न्यायालयों को अविलंब अभियुक्तगण को दस्तावेजों की प्रति की आपूर्ति अथवा इनके निरीक्षण की अनुमति जैसा भी मामला हो के लिए बने प्रावधानों का अनुपालन करने का निर्देश जारी करना समुचित है। यदि दस्तावेजों की आपूर्ति नहीं की जाती है, तब संबंधित दंडाधिकारी संबंधित आरक्षी अधीक्षक को सूचित कर सकता है।

11. इस मामले में, विचारण न्यायालय को आगे किसी विलंब के बिना शीघ्रातिशीघ्र विचारण करने का और दिनांक 30 जून, 2012 तक अथवा इसके पहले दांडिक मामले को विनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है।

12. इस आदेश की प्रति तुरन्त विचारण न्यायालय को भेजी जाए और किसी अन्य न्यायालय को मामला अंतरित करने की याचीगण की प्रार्थना विचारण में पहले ही कारित विलंब और पीठासीन अधिकारी के विरुद्ध किए गए अभिकथनों में कोई सार नहीं होने की दृष्टि में अस्वीकार की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

शिवचरण महतो उर्फ जलखू महतो (589 में)

पुशान गंजू एवं एक अन्य (51 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal (D.B.) Nos. 589 of 2002 with 51 of 2003. Decided on 22nd December, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 178 वर्ष 1997 में श्री रवीन्द्र प्रसाद रवि, अष्टम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 30.7.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 31.7.2002 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 201/34—हत्या–मृत शरीर का लापता हो जाना–प्राथमिकी दर्ज करने में हुए विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया–अभियोजन द्वारा संस्वीकृति सिद्ध नहीं की गयी–अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया–अपराध करने के लिए कोई हेतु दर्शाया नहीं गया–अपीलार्थीगण 15 वर्षों से कारागार में है–अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने योग्य हैं–आक्षेपित निर्णय अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Krishna Shankar, *Amicus Curiae,* For the Appellants; Mr. Ravi Prakash, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थीगण की ओर से इन मामलों में कोई भी उपस्थित नहीं हो रहा है। दोपहर बाद में इन अपीलों में न्यायालय की सहायता करने के लिए विद्वान पैनल अधिवक्ता श्री कृष्ण शंकर को न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया जाता है।

बाद में–दोनों अपीलें सत्र विचारण सं॰ 178 वर्ष 1997 में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/34 और 201 के अधीन अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करते हुए और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन कठोर आजीवन कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 सह–पठित धारा 34 के अधीन दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का उनमें से प्रत्येक को दंडादेश देते हुए अष्टम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 30.7.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 31.7.2002 के दंडादेश से उद्‌भूत होती है। दोनों दंडादेशों को साथ–साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि 50 वर्षीया ननकी देवी, जो सूचक रोहन महतो की पत्नी थी, 4-5 माह से अपने घर से गायब थी और समस्त प्रयासों के बावजूद उसका पता लगाया नहीं जा सका था। लगभग 20-22 दिन पहले अकल महतो, अ॰ सा॰ 1 और निर्मल महतो, अ॰ सा॰ 2 ने उसे सूचित किया कि उन्होंने ननकी देवी का अपीलार्थी पुशान गंजू के घर में पाया है। ननकी देवी ने निर्मल महतो को बताया कि अपीलार्थीगण जगेश्वर महतो और शिवचरण महतो ने 1,600/- रुपयों की राशि के लिए उसे अपीलार्थी पुशान गंजू को बेच दिया था। तत्पश्चात, सूचक ने गाँववालों को यह तथ्य बताया। गाँववालों ने अपीलार्थी शिवचरण महतो को ननकी देवी को लाने के लिए मजबूर किया। जिस पर शिव चरण महतो ने उसको लाने के लिए पाँच दिन के समय की प्रार्थना किया किंतु बाद में शिवचरण महतो ने यह कहते हुए उसे लाने से इनकार कर दिया कि वह सूचक की पत्नी को नहीं जानता है। तत्पश्चात् निर्मल महतो, बुचेसर महतो, महेश्वर महतो और सूचक रोहन महतो दिनांक 22.7.1996 को पुशान गंजू के घर गए किंतु घर में कोई नहीं था। आगे अभिकथित किया गया है कि बारी सिंह, अनंत सिंह और कैला सिंह ने सूचक और उक्त को सूचित किया कि पाँच माह पहले अपीलार्थीगण जगेश्वर महतो और शिवचरण महतो ननकी देवी को अपीलार्थी पुशान गंजू के घर लाए थे और ननकी देवी पुशान गंजू के घर में रह रही थी। दिनांक 16.9.1996 को अपीलार्थीगण उसे चारपाई पर इस बहाने ले गए कि वे उसके इलाज के लिए राँची जा रहे थे और लौटने पर पुशान गंजू से पूछताछ किया गया था जिसने कथन किया था कि ननकी देवी अस्पताल में भरती है। तब अभिकथित किया गया है कि सूचक को गाँववालों से पता चला कि अपीलार्थीगण ने उसकी पत्नी की हत्या कर दी है और उसके मृत शरीर को कहीं छुपा दिया था।

3. अन्वेषण के दौरान, अपीलार्थी जगेश्वर महतो के इकबालिया बयान के आधार पर ननकी देवी का मृत शरीर टुंगरी पहाड़ी से बरामद किया गया था जो साड़ी से बंधा हुआ था और खोह में रखा हुआ था।

4. विद्वान न्यायमित्र श्री कृष्ण शंकर ने निवेदन किया कि प्राथमिकी दर्ज करने में हुए विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और कि अभियोजन द्वारा संस्वीकृति सिद्ध नहीं की गयी है; और कि

अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण भी नहीं किया गया है; और कि इस मामले में परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है। उन्होंने यह भी इंगित किया कि अपीलार्थीगण अब तक लगभग 15 वर्षों से कारा में हैं।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री रवि राकेश ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. हमारे मत में, अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने के योग्य हैं। परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है। प्राथमिकी में कहा गया है कि गवाहों ने अपीलार्थीगण को मृतक को खाट पर ले जाते देखा था किंतु अपने साक्ष्य में उन्होंने कहा कि अपीलार्थी किसी महिला को खाट पर ले जा रहे थे। प्राथमिकी दर्ज करने में अत्यधिक विलंब हुआ है जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अपीलार्थी जगेश्वर महतो की अभिकथित संस्वीकृति सिद्ध नहीं की गयी है। इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है। अपराध करने के लिए कोई हेतु दर्शाया नहीं गया है। पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के और सावधानीपूर्वक अभिलेख का परिशीलन करने के बाद हमारे मत में अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने योग्य है।

परिणामस्वरुप, इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

संदीप कुमार रॉय

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 190 of 2011. Decided on 4th January, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—अनुच्छेद 226 पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने से उच्च न्यायालय को अपवर्जित नहीं करता है–किंतु, यह प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है कि पृथक रिट याचिका में एक न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को दी गयी चुनौती पर सुनवाई करने की अधिकारिता एकल न्यायाधीश को होगी जो विधि की स्थिति नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 4 से 6)

निर्णयज विधि.–AIR 1963 SC 1909—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tewari, For the Appellant; S.C. (Mines), For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) 246 वर्ष 2011 दाखिल किया था और सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 996 वर्ष 1998 में दिनांक 15 दिसंबर, 1998 को पारित आदेश, जिसे पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, के अभिखंडन का अनुतोष इप्सित किया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 26.4.2011 के आदेश के तहत यह संप्रेक्षित करने के बाद याची की रिट याचिका खारिज कर दिया कि याची का प्रतिवाद कि याची उस रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 996 वर्ष 1998 में पक्ष नहीं था, अतः वह अपील दाखिल नहीं कर सकता है, भ्रामक है और व्यथित पक्ष लेटर्स पेटेन्ट अपील दाखिल कर सकता है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **शिवदेव सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, AIR 1963 Supreme Court 1909,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया और निवेदन किया कि उस मामले में रिट याचिका विनिश्चित करते हुए रिट याचिका में पारित अंतिम आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के उसी माननीय न्यायाधीश द्वारा अपास्त कर दिया गया था और इसलिए उक्त निर्णय की दृष्टि में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका पोषणीय है और उसी उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश एकल न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर सकते थे।

4. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार किया है और **शिवदेव सिंह एवं अन्य (ऊपर)** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का परिशीलन किया है। **शिवदेव सिंह एवं अन्य** के मामले में अपीलार्थीगण द्वारा रिट याचिका दाखिल की गयी थी जो अवर प्राधिकारी के समक्ष पक्षगण थे जिसमें अंतिम आदेश परित किया गया था और रिट याचिका विनिश्चित की गयी थी और पूरे मामले को पुनः सुनने की प्रार्थना के साथ उसी रिट याचिका में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन दाखिल किया गया था। वही विद्वान एकल न्यायाधीश इस दृष्टिकोण के थे कि आवश्यक पक्षों को पक्षकार नहीं बनाया गया था और इसलिए मामले को पुनः सुनने की आवश्यकता है और पूर्व आदेश को अपास्त कर दिया। उस तथ्यपरक स्थिति में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पुनर्विलोकन की शक्ति, जो घोर अन्याय रोकने अथवा इसके द्वारा किए गए गंभीर और स्पष्ट गलतियों को सुधारने के लिए सर्वांगीण अधिकारिता के प्रत्येक न्यायालय में अंतर्निहित होती है, का प्रयोग करने से उच्च न्यायालय को अपवर्जित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 में कुछ भी नहीं है। तब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्टतः अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय के पूर्व आदेश ने उन लोगों के हित को प्रभावित किया है जिन्हें उनके समक्ष कार्यवाही में पक्षगण नहीं बनाया गया है। उनके कहने पर और उनके सुनवाई का अवसर देने के लिए खोसला, न्यायमूर्ति ने द्वितीय याचिका ग्रहण किया। ऐसा करते हुए उन्होंने मात्र वही किया जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत उनसे किए जाने की अपेक्षा करते थे।

5. उक्त कारण की दृष्टि में, उसी कार्यवाही, जिसे पहले ही विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विनिश्चित किया जा चुका था, में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दाखिल आवेदन ग्रहण किया गया था और वस्तुतः अंतिम आदेश, जिसे आवश्यक पक्षों को सुने बिना पारित किया गया था, वापस ले लिया गया था और रिट अधिकारिता में एकल न्यायाधीश द्वारा परित निर्णय/आदेश को चुनौती देने के लिए पृथक रिट याचिका दाखिल करने का मामला नहीं था। यदि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद स्वीकार किया जाएगा, तब यह अभिनिर्धारित करने के तुल्य होगा कि एकल न्यायाधीश को पृथक रिट याचिका में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को दी गयी चुनौती के सुनने की अधिकारिता होगा जो विधि की अवस्था नहीं है।

6. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाते हैं। अतः, एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

7. इस चरण पर, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना किया कि सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 996 वर्ष 1998 में दिनांक 15 दिसंबर, 1998 को पारित आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता रिट याची को दी जा सकती है।

8. यदि विधि अनुमति देती है, तब याची विधि के अनुरुप उस आदेश को चुनौती देने के लिए किसी अन्य उपचार का लाभ ले सकता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

सुरेन्द्र भुइयाँ

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 1142 of 2003. Decided on 4th January, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 393 वर्ष 2001 में श्री भवेश चंद्र झा, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 7.7.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कठोर कारावास के साथ 10,000/- रुपयों का जुर्माना अधिनिर्णीत–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला पूरी तरह संपुष्ट–अभिलेख पर अन्य सामग्री के साथ चश्मदीद गवाहों के विवरण ने भी पूर्ण समर्थन किया–अभियोजन मामले पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि भूमि विवाद के कारण उसके शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर आग्नेयास्त्र की उपहति कारित करके अपीलार्थी द्वारा सूचक के पति की हत्या की गयी थी–गवाहों के साक्ष्य में लघु विरोधाभास के आधार पर अभियोजन मामला अस्वीकार नहीं किया जा सकता है–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपने परीक्षण में अपीलार्थी ने अपने से पूछे गए प्रश्नों से इनकार किया–यह नहीं कहा जा सकता है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का बयान समुचित रूप से दर्ज नहीं किया गया था–अपील खारिज। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Nayak, For the Appellant; Mr. Ravi Prakash, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 393 वर्ष 2001 में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए और उसे आजीवन कठोर कारावास भुगतने और 10,000/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने और भुगतान के व्यतिक्रम में दो वर्षों का कारावास भुगतने के लिए दंडादेशित करते हुए श्री भवेश चंद्र झा, तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 7.7.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 17.12.2000 को प्रभारी–अधिकारी ने दोपहर एक बजे उसके घर पर गोपी भूइयाँ (मृतक) की पत्नी कल्पतिया देवी (अ॰ सा॰ 1) का इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज किया कि दिनांक 16.12.2000 को सायं लगभग 7 बजे जब वह अपने पति गोपी भूइयाँ और सबसे छोटी पुत्री लाली कुमारी (अ॰ सा॰ 2) के साथ अपने आंगन में थी, अचानक पिस्तौल से लैस अभियुक्तगण वहाँ आए और उसके पति पर गोली चलायी और भाग गए। गोली चलने की आवाज सुनकर दामाद गिरिजा भूइयाँ (अ॰ सा॰ 10), पुत्री मोतिया (अ॰ सा॰ 9) और मंजीत घर के अंदर से आए किंतु तब तक मृतक, जो खून से लथपथ था, की मृत्यु हो गयी। शोर करने पर निकट के स्थान के व्यक्ति वहाँ आये। आगे अभिकथित किया गया है कि भूमि विवाद के कारण सूचक के पति की हत्या कर दी गयी थी।

3. अपीलार्थी के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ नायक ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी को आयुध अधिनियम के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया है और इसके अतिरिक्त, मृतक के शरीर के भीतर कोई बुलेट अथवा पिलेट नहीं पाया गया था; और कि मृतक पर केवल एक उपहति थी; और कि सूचक ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि घटना सुबह हुई थी जबकि प्राथमिकी में उसने कहा कि यह शाम में हुई थी। उन्होंने

आगे निवेदन किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी के बयान में उसका बचाव विवरण दर्ज नहीं किया गया था।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि प्रकाश ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. प्राथमिकी में, सूचक अ॰ सा॰ 1 ने कहा कि घटना सायं लगभग 7 बजे हुई थी। अ॰ सा॰ 2, जो भी चश्मदीद गवाह है, ने कहा कि घटना शाम में हुई थी। अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य में लघु विरोधाभास के आधार पर अभियोजन मामला खारिज नहीं किया जा सकता है।

डॉक्टर (अ॰ सा॰ 11) ने कालेपन और जलेपन के साथ चेहरे पर आग्नेयास्त्र की उपहति पाया है और शव विच्छेदन करने पर जख्म के अंदर की हड्डी फ्रैक्चर पायी गयी थी और गोल छेद था। आगे शव विच्छेदन करने पर छेद ओरल कैविटी से जुड़ा था। ऊपरी मैंडिबल हड्डी, फ्रैक्चर पायी गयी थी और समूची दंत पंक्ति विकृत थी और निचले होठ पर विदीर्णता थी। उनके मत में मृत्यु आघात और हेमरेज कारित करने वाले आग्नेयास्त्र की उपहति के कारण थी। डॉक्टर ने आगे कहा कि उपहति निकट से देशी पिस्तौल से की जा सकती है।

चश्मदीद गवाहों अ॰ सा॰ 1 और 2 का विवरण डॉक्टर (अ॰ सा॰ 11) के साक्ष्य सहित अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों से पूर्णत: समर्थित होता है। अभियोजन मामले पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि भूमि विवाद के कारण उसके शरीर के महत्वपूर्ण अंग पर आग्नेयास्त्र उपहति कारित करके अपीलार्थी द्वारा सूचक के पति की हत्या की गयी थी।

दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दर्ज अपीलार्थी के बयान से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने अपने से पूछे गए प्रश्नों से इनकार किया और जब उससे पूछा गया कि क्या उसे बचाव में कुछ कहना है, उसने केवल हाँ कहा प्रतीत होता है कि तत्पश्चात उसने आगे कोई बयान नहीं दिया। ऐसी परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान समुचित रूप से दर्ज नहीं किया गया था।

6. हमारे मत में, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम रहा है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

परिणामस्वरुप, यह दांडिक अपील खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k

मेसर्स श्रीराम मल्टीकॉम प्रा॰ लि॰

cuke

मेसर्स बी॰ एन॰ होटल्स (प्रा॰) लि॰

Arbitration Application No.1 of 2011. Decided on 6th January, 2012.

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 11 (6)—मध्यस्थ की नियुक्ति–करार में माध्यस्थम खंड का अस्तित्व विवादित नहीं है–माध्यस्थम खंड सही रूप से शब्दांकित नहीं है किंतु माध्यस्थम के माध्यम से संविदा से उद्भूत होने वाले समस्त विवादों का समाधान कराने का पक्षों

का आशय स्पष्ट है–मुख्तारनामा और विकास करार का रद्दकरण भी केवल विकास करार के निबंधनाधीन आच्छादित विवाद है–आवेदन अनुज्ञात–उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. R.S. Mazumdar, For the Applicant; Mr. Sumeet Gadodia, For the Opp. Party.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह आवेदन माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अधीन दाखिल किया गया है। पक्षों के बीच दिनांक 8.8.2007 का विकास करार निष्पादित किया गया था जिसकी प्रति परिशिष्ट–1 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत की गयी है। करार के मुताबिक वर्तमान आवेदक द्वारा कुछ विकास कार्य किया जाना था और विकास कार्य करने के लिए अपीलार्थी को संपत्ति बंधक रखकर निधि उत्पन्न करने की स्वतंत्रता दी थी और उस प्रयोजन से अपीलार्थी के पक्ष में प्रत्यर्थी द्वारा मुख्तारनामा निष्पादित किया गया था। किंतु, पक्षों के बीच विवाद उद्भूत हुआ और तत्पश्चात आवेदक ने माध्यस्थम एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 9 के अधीन आवेदन दाखिल किया जिसमें विचारण न्यायलय द्वारा अंतरिम आदेश पारित किया गया था और उसके विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष माध्यस्थम अपील सं॰ 13 वर्ष 2011 दाखिल की गयी थी जिसे दिनांक 25 नवंबर, 2011 के आदेश द्वारा अनुज्ञात किया गया था।

3. चाहे जो भी हो, अपीलार्थी का प्रतिवाद है कि विकास करार (परिशिष्ट–1) के खंड 21 की दृष्टि में आवेदक ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी को सूचना दिया किंतु कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया गया था। अत: उसने यह आवेदन दिया है।

4. जवाब में, यह निवेदन किया गया था कि अभिकथित शक्ति जो प्रत्यर्थी अटॉर्नी द्वारा आवेदक को दी गई थी, उसे प्रत्यर्थीगण द्वारा रद्द कर दिया गया है और उक्त की दृष्टि में आवेदक–याची प्रत्यर्थीगण के मुख्तारनामा धारक के रूप में कृत्य नहीं कर सकता है। यह भी निवेदन किया गया है कि खंड 21 मध्यस्थ को सीमित विवाद निर्दिष्ट करनेवाला खंड है और केवल मुख्तारनामा एवं विकास करार के बने रहने के दौरान उक्त विवाद निर्दिष्ट किया जा सकता था। प्रत्यर्थीगण ने पहले ही विकास करार रद्द कर दिया है और, इसलिए, विकास करार के रद्दकरण के बाद मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है। यह निवेदन भी किया गया है कि माध्यस्थम खंड केवल यह कहता है कि करार के निबंधनों के संबंध में स्वामी और विकासकर्ता के बीच विवाद की स्थिति में केवल वही विवाद मध्यस्थ को भेजा जा सकता है और न कि माध्यस्थम करार के रद्दकरण अथवा मुख्तारनामा के रद्दकरण को अथवा विवाद को चुनौती देने के लिए जिसे माध्यस्थम आवेदन में उठाया गया है। उक्त कारणों की दृष्टि में मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और खंड 21 का परिशीलन किया है जो निम्नलिखित है:–

> *"21. fd fodkl dju d fy, bl djkj d fucèkuk d lcèk e Lokeh vkj fodkldrk d chp fdlh fookn dh fLFkfr e bl i{kk e l çR;d }kjk fu;Dr eè;LFkk }kjk U;k;fu.khr fd;k tk, ftldk fu.k; ckè;dkjh vkj fu'p;kRed gkxkA eè;LFkk d fu.k; l vlgefr dh fLFkfr e fu;Dr eè;LFkk dh lgefr l ,d dkeu eè;LFk vfre fu.k; d fy, fu;Dr fd;k tk,xk vkj leLr eè;LFkk dk cger fu.k; nkuk i{kk ij ckè;dkjh gkxkA***

6. इस खंड का अस्तित्व विवादित नहीं है और यह स्पष्टत: कहता है कि इस करार के निबंधनों और ''इसको विकसित करने के लिए'' के संबंध में किसी विवाद की स्थिति में इसे मध्यस्थ द्वारा न्यायनिर्णीत किया जाएगा। यह प्रतीत होता है कि माध्यस्थम खंड सही रूप से शब्दांकित नहीं है किंतु माध्यस्थम के माध्यम से संविदा से उद्भूत होने वाले समस्त विवादों का समाधान करवाने का पक्षों का आशय स्पष्ट है। मुख्तारनामा और विकास करार का रद्दकरण भी केवल विकास करार के निबंधनाधीन आच्छादित विवाद है।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, यह आवेदन अनुज्ञात किए जाने योग्य है और इसलिए अनुज्ञात किया जाता है। जैसा अनुरोध किया गया है, झारखंड उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश, माननीय न्यायाधीश विक्रमादित्य प्रसाद को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाता है जो मध्यस्थता कार्यवाहियों के लिए अपना पारिश्रमिक और व्यय नियत कर सकते हैं।

8. यह स्पष्ट किया जाता है कि पक्षगण मध्यस्थ के समक्ष अपना दावा और प्रतिदावा उठाने के लिए स्वतंत्र होंगे।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

शिबू लोहार

cuke

झारखंड राज्य

Criminal (Jail) Appeal (D.B.) No. 52 of 2003. Decided on 2nd January, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 666 वर्ष 1993 में श्रीमती शकुन्तला सिन्हा, अपर न्यायिक कमिश्नर, खूँटी द्वारा पारित दिनांक 12.9.1995 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–दोषसिद्धि–तेज धार वाले हथियार से मृतक पर प्रहार किया गया था–द्वितीय उपहति कारित करने का अभिकथन अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं है–अपीलार्थी का मृतक की हत्या करने का हेतु नहीं था–मृतक की हत्या तब की गयी जब उसने संबंधियों के बीच झगड़े में मध्यक्षेप किया–अपीलार्थी द्वारा प्रहार के लिए कोई पूर्वचिंतन, तैयारी अथवा हेतु नहीं था–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को धारा 304, भाग (I) में परिवर्तित किया गया–अपीलार्थी 19 वर्षों से अधिक तक कारागार में रिमांड पर है–पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक दंडादेश उपांतरित। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Rohit, *Amicus Curiae,* For the Appellants; Mr. Amaresh Kumar, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 666 वर्ष 1993 में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते हुए और उसको आजीवन कठोर कारावास का दंडादेश देते हुए अपर न्यायिक कमिश्नर, खूँटी द्वारा पारित दिनांक 12.9.1995 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 2.7.1992 को, जो रथयात्रा का दिन था, मृतक का गूमा नामक एक सह ग्रामीण (अ॰ सा॰ 2) रात्रि लगभग 8 बजे सायं मेला से अपनी पत्नी के साथ लौटा और दोनों एक लड़की, जिसने सारे दिन उसके पशुओं की देखभाल की थी, को मेला से खरीदे गए मिठाई उसको देने के विवाद्यक पर झगड़ा करने लगे। गूमा क्रोधित हो गया उसने अपने हाथ में बलुआ लेकर अपनी पत्नी का पीछा किया। झगड़ा देखकर (मृतक) (मोहन लोहार) ने मध्यक्षेप किया। तब गूमा

उसके घर के दरवाजे के पास बैठ गया और उसके संबंधी अपीलार्थी शिबू ने गूमा के हाथ से बलुआ छीन लिया और उससे पूछा कि क्या वह मोहन लोहार जिसने झगड़ा में हस्तक्षेप किया, को काट डालेगा। गूमा मौन रहा और जबाब नहीं दिया। इस पर अपीलार्थी ने मृतक पर बलुआ से प्रहार किया और उसको घायल कर दिया जिस कारण वह गिर गया और मर गया।

3. अभियोजन ने लगभग 14 गवाहों का परीक्षण किया है और अपना मामला सिद्ध किया है। डॉक्टर अ० सा० 12 ने मैंडिबल के धमनियों, नसों और रामस और नरम टिशुओं को काटते हुए कान के नीचे गर्दन के दाएं भाग पर 4" x 1½" x 1" की तेज कटी उपहति और दायें हाथ पर 2" परिधि वाली एक विदीर्ण उपहति को पाया। पहली उपहति बलुआ जैसे तेजधार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी और दूसरी उपहति कड़े और भोथरे पदार्थ द्वारा कारित की गयी थी। मृत्यु का कारण पहली उपहति के कारण आघात और हेमरेज था जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी।

4. अपीलार्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है। हमने अपीलार्थी की ओर से न्यायालय की सहायता करने के लिए श्री रोहित को नियुक्त किया। उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी को अधिकाधिक भा० दं० सं० की धारा 304, भाग (I) के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता था।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेंद्र कुमार ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. यह प्रतीत होता है कि गूमा लोहार (अ० सा० 2) और उसकी पत्नी सोमारी (अ० सा० 9) ने किसी लड़की को मिठाई जो उन्होंने रथ यात्रा के दिन मेला से खरीदा था, देने को लेकर झगड़ा किया। मोहन लोहार (मृतक) ने मध्यक्षेप किया। अपीलार्थी को गूमा (अ० सा० 2) के हाथ से बलुआ छीनकर मृतक की गर्दन पर उपहति, जिस कारण उसकी मृत्यु हो गयी, कारित करता हुआ कहा जाता है। द्वितीय उपहति कारित करने का अभिकथन अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं है। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी का मृतक की हत्या करने का हेतु था। बात केवल यह थी कि मृतक ने अपने संबंधियों अर्थात् अ० सा० 2 और अ० सा० 9 के बीच हो रहे झगड़े में हस्तक्षेप किया था। अपीलार्थी की ओर से कोई पूर्वचिंतन नहीं था। वह हथियार से लैस नहीं था। उसने अ० सा० 2, जो अपनी पत्नी (अ० सा० 9) से झगड़ा रहा था, के हाथ से बलुआ छीना और अ० सा० 2 से पूछा कि क्या उसे मृतक पर उपहति कारित करनी चाहिए या नहीं। जब अ० सा० 2 ने कुछ नहीं कहा, अपीलार्थी को प्रथम उपहति कारित करने वाला बताया जाता है जिस कारण मृतक की मृत्यु हो गयी। प्रतीत होता है कि अपीलार्थी के पास प्रहार के लिए पूर्वचिंतन, तैयारी अथवा हेतु नहीं था।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हम भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को धारा 304, भाग (I) में परिवर्तित करने के इच्छुक हैं। जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, प्रतीत होता है कि अपीलार्थी 19 वर्षों से अधिक से कारागार में बना हुआ है। तद्नुसार, उसका दंडादेश उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक उपांतरित किया जाता है।

8. दोषसिद्धि में इस परिवर्तन और दंडादेश में इस उपांतरण के साथ अपील निपटायी जाती है।

9. यह जेल अपील कारा अधीक्षक, भागलपुर के माध्यम से दाखिल की गयी थी। यह प्रतीत होता है कि अपीलाधीन निर्णय दिनांक 12.9.1995 अर्थात् राज्य के विभाजन के पहले पारित किया गया था और अपीलार्थी भागलपुर जेल भेजा गया था। यह ज्ञात नहीं है कि क्या उसे झारखंड अवस्थित किसी कारागार में शिफ्ट कर दिया गया है अथवा वह अभी भी भागलपुर कारागार में पड़ा है। यह भी ज्ञात नहीं है कि क्या दंडादेश पुनर्विलोकन कमिटि द्वारा उसे निर्मुक्त कर दिया गया है। इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी को निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य दांडिक मामले में उसकी जरूरत नहीं है।

आवश्यक कार्य करने के लिए और की गयी कार्रवाई की रिपोर्ट भेजने के लिए इस निर्णय की प्रति को आई० जी० कारा राँची, झारखंड और अधीक्षक, विशेष केंद्रीय कारा, भागलपुर, बिहार को भेजी जाए। दो सप्ताह बाद ''आदेश के लिए' शीर्षक के अधीन रिपोर्ट के साथ रखा जाए।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

बाल किशन तिवारी

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 1057 of 2010. Decided on 18th January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 384/504—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—धमकी और उद्दापन–संज्ञान–फोन करके 10 लाख रुपयों की मांग–अगर कोई उद्दापन का अपराध करने के लिए किसी व्यक्ति को भयभीत करता है, तब भी उद्दापन का अपराध आकृष्ट होता है–ऐसा कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे मत निर्मित किया जा सके कि सूचक को याची के विरुद्ध कोई प्राईवेट अथवा निजी दुश्मनी थी–इस चरण पर मामले के गुणागुण पर विचार नहीं किया जा सकता है–प्राथमिकी में किए गए अभिकथन प्रथम दृष्टया उद्दापन का अपराध गठित करते हैं–आवेदन खारिज। (पैराएँ 10 से 17)

निर्णयज विधि.–1992 Supp. (1) SCC 335—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. P.P. N. Rai, For the Petitioner; A.P.P., For the State; M/s B.M. Tripathy, Prashant Pallav, For the Opp. Party No.2.

आदेश

यह आवेदन मधुपुर पी० एस० केस सं० 248 वर्ष 2009 (जी० आर० सं० 578 वर्ष 2009) में तत्कालीन अनुमंडल न्यायिक दंडाधिकारी, मधुपुर, देवघर द्वारा पारित दिनांक 8.4.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धारा 384/504 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था।

2. इस आदेश को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि कोई अनिता पाठक, विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने दिनांक 9.12.2009 को उसमें यह कथन करते हुए मामला दर्ज किया कि वह ''सोसाइटी फॉर एडवान्समेन्ट इन एडुकेशन, देहरादून'' के रुप में ज्ञात संगठन के सदस्यों में से एक है। अभिकथित किया गया है कि दिनांक 27.11.2009 को कानपुर निवासी याची ने फोन पर धमकी दी कि वह उसे सोसाइटी चलाने की अनुमति नहीं देगा। यदि वह सोसाइटी चलाना चाहती है, उसे 10 लाख रुपयों का भुगतान करना होगा।

3. आगे अभिकथित किया गया है कि दिनांक 3.12.2009 को वह उसके घर मधुपुर आया और उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसको कहा कि वह सोसाइटी के माध्यम से चलाए जा रहे ''एशिया स्कूल ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड मैनेजमेन्ट'' के रूप मे ज्ञात महाविद्यालय को बंद करवा देगा। दिनांक 5.12.2009 को याची पुनः आया और उसके साथ दुर्व्यवहार किया और तब धमकी दिया कि वह महाविद्यालय चलाने की अनुमति नहीं देगा यदि वह 10 लाख रुपयों का भुगतान नहीं करती है। पुलिस ने अन्वेषण के बाद धारा 384/504 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया, जिस पर आक्षेपित आदेश के तहत अपराध का संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ पी॰ एन॰ राय निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों को सत्य मानने पर भी भारतीय दंड संहिता की धारा 384 अथवा धारा 504 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है और कि किए गए अभिकथन बिल्कुल अनधिसंभाव्य प्रतीत होते हैं क्योंकि कोई विवेकशील व्यक्ति विश्वास नहीं करेगा कि जिला कानपुर का निवासी याची के पास मधुपुर आएगा और उस तरीके से कृत्य करेगा जैसा अभिकथित किया गया है और कि वस्तुतः उक्त अभिकथन द्वेषपूर्ण है और अरुण कुमार मिश्रा, मुख्य अभियंता, यू॰ पी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰, कानपुर के प्रेरणा पर दर्ज किया गया है जिसने भ्रष्ट साधन अपनाकर यू॰ पी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ में वित्तीय अनियमितता किया है जिसके लिए मामला संस्थापित किया गया है और इस याची द्वारा अभियोजित किया जा रहा है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने कड़ी जोड़ने के लिए इंगित किया कि उक्त अरुण कुमार मिश्रा की पत्नी इलिना नायक सोसाइटी फॉर एडवांसमेंट ऑफ एडुकेशन'' के रूप में ज्ञात संगठन की सचिव है जबकि सूचक इसके सदस्यों में से एक है और इस प्रकार, कोई आसानी से इस निष्कर्ष पर आ सकता है कि यद्यपि वर्तमान अभियोजन अनीता पाठक द्वारा दर्ज किया गया है किंतु अरुण कुमार मिश्रा वस्तुतः मामला दर्ज करवाने वाला है और इसलिए, जब अभियोजन द्वेषपूर्ण प्रतीत होता है, यह अभिखंडित किए जाने योग्य है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **देव लखन पासवान बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** 2012 (1) JLJR 206 (SC) के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया है।

7. इसके विरुद्ध, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी निवेदन करते हैं कि जहाँ तक द्वेषपूर्ण अभियोजन के अभिवचन का संबंध है, यह गौर किया जाए कि अरुण कुमार मिश्रा सूचक कभी नहीं है और सूचक तथा उक्त अरुण कुमार मिश्रा के बीच की कड़ी दूरस्थ है और इसके अतिरिक्त, पुलिस ने मामले के अन्वेष्ण के बाद अभिकथन को प्रथम दृष्टया सत्य पाया और इस परिस्थिति के अधीन इस चरण पर यह नहीं माना जा सकता है कि अभियोजन द्वेषपूर्ण है।

8. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथन उद्दापन का अपराध गठित करते हैं और इस प्रकार, विधि के सुनिश्चित सिद्धांत के अधीन न्यायालय संज्ञान लेने वाले आदेश में हस्तक्षेप करना नहीं चाहेगा, बल्कि याची के अभिवचनों को विचारण के दौरान परखने की आवश्यकता है और इसलिए यह आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

9. पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह कहा जाए कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 Supp (1) SCC 335,** मामले में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किया है जिसके अधीन दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जा सकती है। उन आधारों को श्रेणीकृत किया गया है। श्रेणी सं॰ 7 द्वेषपूर्ण अभियोजन के बारे में कहती है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *^^tgk nkfMd dk;okgh Li"Vr% }"ki.k g vkj@vFkok tgk dk;okgh vfHk;Dr l çfr'kkèk yu d vrjLFk gr d lkFk vkj çkboV rFkk futh n'euh d dkj.k mldk vieksfur dju d fy, }"kiod lLFkkfir dh x;h gA***

10. वर्तमान मामले में ऐसा कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे मत निर्मित किया जा सके कि सूचक की याची से कोई प्राईवेट अथवा निजी दुश्मनी थी। साथ-ही-साथ, यह कथन किया गया है

कि वर्तमान मामला अरुण कुमार मिश्रा की प्रेरणा पर दर्ज किया गया है किंतु सूचक का उक्त अरुण कुमार मिश्रा के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है यद्यपि यह दूर का हो सकता है किंतु इस चरण पर इस मामले में जाना समुचित नहीं होगा।

11. जहाँ तक याची की ओर से निर्दिष्ट मामले का संबंध है, इसे अभिखंडित कर दिया गया था जब न्यायालय ने पाया कि अभियोजन अपीलार्थी द्वारा की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के लिए द्वेषपूर्ण प्रति कार्रवाई का परिणाम था। इस प्रकार, पूर्वोक्त मामला इस मामले पर बिल्कुल प्रयोज्य नहीं है।

12. अन्य निवेदन जो याची की ओर से किए गए हैं, ये हैं कि चूँकि संपत्ति की डिलीवरी नहीं की गयी है, उद्दापन का अपराध नहीं बनता है और कि याची को केवल सूचक के साथ दुर्व्यवहार करने वाला अभिकथित किया गया है जो इस तरह कभी नहीं लिया जा सकता है कि याची ने सूचक को भयभीत किया। इस चरण पर, मुझे मामले के गुणागुण पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या अपराध किया गया है या नहीं बल्कि प्रथम दृष्टया यह देखना है कि क्या परिवाद में किए गए अभिकथन उद्दापन का अपराध गठित करते हैं।

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 383 में उद्दापन परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

383. ***míkiu-***&tk dkb fdlh 0;fDr dk Lo; ml 0;fDr dk ;k fdlh vU; 0;fDr dk dkb {kfr dju d Hk; e lk'k; Mkyrk g] vkj rn}kjk bl çdkj Hk; e Mky x, 0;fDr dk] dkb lEifÙk ;k eY;oku çfrHkfr ;k gLrk{kfjr ;k enkfdr dkb pht ft l eY;oku çfrHkfr e ifjofrr fd;k tk ld] fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dju d fy, cbekuh l mRçfjr djrk g] og ^^míkiu** djrk gA

14. आगे, भारतीय दंड संहिता की धारा 385 का पठन निम्नलिखित है:–

385. **míkiu dju d fy, fdlh 0;fDr dk {kfr d Hk; e Mkyuk-**&tk dkb míkiu dju d fy, fdlh 0;fDr dk fdlh {kfr d igpku d Hk; e Mkyxk ;k Hk; e Mkyu dk ç;Ru djxk] og nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l] ftldh vofèk nk o"k rd dh gk ldxh] ;k teku l] ;k nkuk l] nf.Mr fd;k tk,xkA

15. पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन पर, निष्कर्ष यह निकलता है कि अगर उद्दापन का अपराध करने के लिए कोई किसी व्यक्ति को भयभीत करता है, उद्दापन का अपराध आकृष्ट होता है।

16. इस प्रकार, प्राथमिकी में किए गए अभिकथन प्रथम दृष्टया उद्यापन का अपराध गठित करता है। अत:, मैं इस आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इस आवेदन को खारिज किया जाता है।

17. इस आदेश से अलग होने के पहले दर्ज किया जाए कि इस मामले के निपटारा के प्रयोजन से दिया गया कोई निष्कर्ष पक्षों के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

विकास तिवारी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (HB) (Cr.) No. 354 of 2011. Decided on 12th January, 2012.

झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002—धारा 12(2)—भारत का संविधान–अनुच्छेद 22(5)—निरोध–अभ्यावेदन–जिला दण्डाधिकारी द्वारा जारी निरोध आदेश में याची को निरोध प्राधिकारी द्वारा दिए गए समय के भीतर अभ्यावेदन देने के उसके अधिकार के बारे में अवगत नहीं कराया गया था–निरोध आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है जहाँ निरोध प्राधिकारी ने याची को अभ्यावेदन देने के उसके अधिकार के बारे में संसूचित नहीं किया हो–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 4 से 7)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 2504—Applied.

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, Chaitali C. Sinha, For the Petitioner; M/s Rajiv Ranjan, Shresth Gautam, For the State.

आदेश

पक्षों को विस्तारपूर्वक सुना गया।

2. यह रिट याचिका झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 (इसमें इसके बाद अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 12(2) के अधीन जिला दण्डाधिकारी, रामगढ़ (प्रत्यर्थी सं॰ 4) द्वारा जारी दिनांक 21.9.2011 के मेमो सं॰ XV-I/II-899/Law वाले निरोध आदेश और दिनांक 1.10.2011 के पश्चातवर्ती अनुमोदन आदेश और दिनांक 3.11.2011 के संपुष्टि आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है।

3. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री जय प्रकाश ने **AIR 2000 Supreme Court 2504 (महाराष्ट्र राज्य बनाम संतोष शंकर आचार्य)** में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए निवेदन किया कि यह मामला उस निर्णय द्वारा पूर्णतः आच्छादित है क्योंकि निरोध प्राधिकारी ने याची को अभ्यावेदन देने के उसके अधिकार के बारे में संसूचित नहीं किया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यदि इस कारण से अधिनियम की धारा 12 (2) के अधीन पारित निरोध आदेश अवैध है, पश्चातवर्ती अनुमोदन और संपुष्टि का कोई प्रभाव नहीं होगा।

4. राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री श्रेष्ठ गौतम ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया और निवेदन किया कि निरोध प्राधिकारी और अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी के समक्ष आवेदन देने का अवसर याची के पास था क्योंकि ऐसा अधिकार विधि के अधीन प्रावधानित किया गया है और इसलिए आदेशों में इसको संसूचित करने की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि निरोध प्राधिकारीगण की याची से कोई दुश्मनी नहीं है और उन्होंने सद्भावपूर्वक और अधिकथित प्रक्रिया के मुताबिक निरोध आदेश पारित किया है और कि उनकी आशंका और संतुष्टि व्यक्तिपरक प्रकृति की है।

5. इस पर, विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री जय प्रकाश ने अनुदेशों पर निवेदन किया कि ऐसी आशंका को दूर करने के लिए याची कारागार से अपनी निर्मुक्ति के बाद प्रत्येक माह स्थानीय पुलिस थाना को रिपोर्ट करने के लिए तैयार है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि याची नियमित रूप से विचारण का सामना करेगा।

6. यह प्रतीत होता है कि जिला दण्डाधिकारी, रामगढ़ द्वारा जारी दिनांक 21.9.2011 के निरोध आदेश में याची को निरोध प्राधिकारी द्वारा दिए गए समय के भीतर अभ्यावेदन देने के उसके अधिकार से अवगत नहीं कराया गया था। हमने अभिलेखों को मंगाया था किंतु उससे यह भी प्रतीत नहीं होता है कि याची को निरोध आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन देने के उसके अधिकार के बारे में सूचित किया गया था। हमारे मत में याची की ओर से दिए गए तर्क **संतोष शंकर आचार्य (ऊपर)** के निर्णय से पूर्णतः समर्थित और आच्छादित हैं।

7. संतोष शंकर आचार्य (ऊपर) के निर्णय की दृष्टि में, आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है। याची को निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है। किंतु याची अपनी निर्मुक्ति की तिथि से एक वर्ष की अवधि के लिए प्रत्येक माह स्थानीय पुलिस थाना अर्थात् पतरातू को रिपोर्ट करेगा।

8. जैसी प्रार्थना की गयी है, इस आदेश की प्रति राज्य के अधिवक्ता श्री गौतम को इसको गृह सचिव, झारखंड सरकार और जिलाधीश को संसूचित करने के लिए सौंपी जाए।

आदेश याची के व्यय पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 और 4 को फैक्स के माध्यम से संसूचित किया जा सकता है।

उक्त संप्रेक्षणों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

चतुर्भुज महापात्र एवं अन्य

cuke

कालू मुर्मु एवं अन्य

Civil Revision No. 401 of 2000. Decided on 20th January, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश I, नियम 3—अभिधान और कब्जा के लिए वाद—वाद में मध्यक्षेपियों को पक्षकार बनाया जाना—पक्षकार बनाए जाने को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि प्रत्यर्थीगण केवल अनुज्ञप्तिधारी के रूप में निवास कर रहे थे और वे वाद संपत्ति पर किसी हक का दावा नहीं कर सकते हैं—एकमात्र विवाद यह है कि क्या प्रत्यर्थीगण अनुज्ञप्तिधारी हैं अथवा वे स्वयं अपने अधिकार से काबिज हैं अथवा समय बीतने के कारण उन्होंने अपना दावा पुख्ता किया है—स्वयं वाद में साक्ष्य दर्ज करने के बाद अवर न्यायालय द्वारा इस प्रश्न को न्यायनिर्णीत करने की आवश्यकता है—अवर न्यायालय ने मध्यक्षेपियों के आवेदन को अनुज्ञात करके गलत रूप से अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया है—पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.—AIR 2004 SC 4377—Distinguished.

अधिवक्तागण.—Mr. K.P. Choudhary, For the Petitioners; Mr. P.K. Mukhopadhyay, For the Opposite Party No.3.

आदेश

पुनरीक्षक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के॰ पी॰ चौधरी और प्रतिवाद कर रहे विपक्षी पक्षगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ मुखोपाध्याय को सुना गया।

2. वर्तमान सिविल पुनरीक्षण इस न्यायालय में दिनांक 26 सितंबर, 2000 को दाखिल किया गया था और यह कारण बताने के लिए कि पुनरीक्षण आवेदन ग्रहण अथवा यदि संभव हो तो ग्रहण के चरण पर ही अंतिम रूप से निपटा क्यों नहीं दिया जाय, विपक्षी पक्षकार सं॰ 7 और 8 को नोटिस जारी करते हुए दिनांक 16 अक्टूबर, 2000 को आदेश पारित किया गया था।

नोटिस के अनुसरण में प्रतिवाद कर रहे विपक्षी सं॰ 7 और 8 द्वारा उपस्थिति दर्ज की गयी है। प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है।

3. अभिधान वाद सं॰ 48 वर्ष 1998 में मुंसिफ, घाटशिला द्वारा पारित दिनांक 31 अगस्त, 2000 का आदेश चुनौती के अधीन है जिसके द्वारा विपक्षी सं॰ 7 और 8 की ओर से मध्यक्षेपियों का आवेदन अनुज्ञात किया गया था। अभिधान वाद मौजा दारीसोल, जिला पूर्वी सिंहभूम में अवस्थित 0.66 डिसमिल क्षेत्र वाले खाता सं॰ 35, भूखंड सं॰ 180 वाली वाद भूमि पर वादीगण के अधिकार, अभिधान, हित और कब्जा की घोषणा के लिए संस्थापित किया गया था। वैकल्पिक अनुतोष कब्जा की वापसी के लिए था यदि यह पाया जाय कि वादी को गलत रूप से वाद भूमि से कब्जाहीन कर दिया गया था और वह काबिज नहीं था।

4. मध्यक्षेपियों, अर्थात् नंदलाल महापात्र और रामचंद्र महापात्र ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश I, नियम 3 के अधीन आवेदन दाखिल किया था जिसे अनुज्ञात किया गया था। पुनरीक्षक ने आक्षेपित आदेश को कई आधारों पर चुनौती दी। सर्वप्रथम यह कि यह संपोषणीय नहीं है और अधिकारिता की त्रुटि से ग्रस्त है; विपक्षी सं॰ 7 और 8 की ओर से आवेदन ग्रहण करने का कोई कारण नहीं था, और उक्त आवेदन अनुज्ञात करके और उनको प्रत्यर्थीगण के रूप में पक्षकार बना करके अवर न्यायालय द्वारा अधिकारिता का गलत प्रयोग किया गया था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश I, नियम 3 की परिधि और विस्तार उन मध्यक्षेपियों को पक्ष के रूप में अभियोजित किया जाना अनुध्यात नहीं करता है जिनका वाद संपत्ति से कोई संबंध नहीं है।

5. पुनरीक्षक की ओर से निवेदन यह है कि मध्यक्षेपी-प्रत्यर्थीगण केवल अनुज्ञप्तिधारी के रूप में निवास कर रहे थे; वे वाद संपत्ति में किसी हक का दावा नहीं कर सकते हैं और इसलिए, आवेदन खारिज किए जाने का दायी था क्योंकि इसे केवल विवाद्यकों को भ्रमित करने और कार्यवाही में विलंब करने की दृष्टि से दाखिल किया गया है। अगला प्रतिवाद यह है कि कार्यवाही में भाग लेने के अपने दावे को सिद्ध करने के लिए मध्यक्षेपियों की ओर से कागज का एक टुकड़ा तक दाखिल नहीं किया गया है, अत: उनका आवेदन पूरी तरह खारिज किए जाने का दायी है।

6. विपक्षी की ओर से अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दिनांक 24 अगस्त, 2000 को आवेदन के साथ अनेक दस्तावेजों को दाखिल किया गया था जैसे वर्ष 1951 से वाद संपत्ति का कब्जा दर्शाने वाले अंचल कर्मचारी की रिपोर्ट और संबंधित अंचलाधिकारी की रिपोर्ट, जबकि वादीगण वर्ष 1964 की पश्चातवर्ती तिथि से अपने कब्जे का दावा करते हैं। वादीगण प्रतिवाद कर रहे विपक्षी पक्षकार सं॰ 7 और 8 के कब्जा को स्वीकार करते हैं किंतु अपनाया गया दृष्टिकोण यह था कि यह अवैध कब्जा है और बेदखल किए जाने का दायी है।

बलवंत एन॰ विश्वामित्र एवं अन्य बनाम यादव सदाशिव मुले एवं अन्य, AIR 2004 Supreme Court 4377, में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है। इस उद्धरण में, सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि उप-अभिधारी आवश्यक पक्षकार नहीं है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश I, नियम 3 के अधीन उप-अभिधारी के कहने पर कोई आवेदन अस्वीकार कर दिए जाने का दायी है।

7. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने के बाद आरंभ में ही मेरा दृष्टिकोण यह है कि पुनरीक्षक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय प्रयोज्य नहीं है क्योंकि यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ प्रत्यर्थीगण उप-अभिधारी होने का दावा करते हैं और वास्तविक अभिधारी पहले ही प्रतिवाद कर रहा है।

8. वस्तुत: वाद घोषणा और कब्जा के लिए है। स्वीकृत रूप से, मध्यक्षेपी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 7 और 8 काबिज हैं। एकमात्र विवाद यह है कि क्या वे अनुज्ञप्तिधारी है अथवा स्वयं अपने अधिकार से काबिज हैं अथवा समय बीतने के कारण उन्होंने अपना दावा पुख्ता किया है। चाहे जो भी स्थिति हो,

कब्जा के अनुतोष जैसा वादीगण द्वारा वाद में दावा किया गया है, के अलावा यह घोषणा करने के लिए भी प्रार्थना की गयी है कि वादीगण काबिज हैं अथवा उन्हें गलत रूप से कब्जाहीन कर दिया गया है और वे वापस कब्जा दिए जाने के हकदार हैं।

9. पुनरीक्षक की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने कब्जा के दावा को विवादित नहीं किया है कि वे वर्ष 1957 से काबिज हैं।

10. किंतु, स्वयं वाद में साक्ष्य दर्ज करने के बाद अवर न्यायालय द्वारा इस प्रश्न को न्यायनिर्णीत करने की आवश्यकता है किंतु चूँकि कब्जा का प्रश्न अंतर्ग्रस्त है और अवर न्यायालय ने प्रतिवादीगण के रूप में अभियोजित किए जाने के लिए विपक्षी पक्षों की ओर से दिया गया आवेदन अनुज्ञात किया है, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि उन्होंने मध्यक्षेपियों के आवेदन को अनुज्ञात करके गलत रूप से अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया है। यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन है और जब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अधिकारिता का गलत प्रयोग नहीं है, वर्तमान पुनरीक्षण में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

11. जैसा ऊपर कहा गया है, उसकी दृष्टि में पुनरीक्षण गुणागुणरहित है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

राम रतन राजगढ़िया उर्फ आर॰ आर॰ राजगढ़िया उर्फ राम रतन लाल राजगढ़िया

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 886 of 2011. Decided on 18th January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 417— दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल–संज्ञान–धन प्राप्त करने के बावजूद भूमि विवाद के लिए विक्रय विलेख का निष्पादन करने से इनकार–याची ने भूमि के विक्रय के बदले में उसको संपत्ति देने के लिए किसी को कपटपूर्वक अथवा गैर ईमानदार रूप से प्रेरित किया और न ही ऐसा कोई अभिकथन है कि याची ने शब्दों द्वारा अथवा कृत्यों द्वारा असत्य या भ्रामक व्यपदेशन किया–परिवाद में किया गया अभिकथन कोई दांडिक अपराध गठित नहीं करता है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 8)

निर्णयज विधि.–(2000)4 SCC 168—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Yogesh Modi, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. A.K. Sahani, For the Opp. Party No.2.

आदेश

यह आवेदन परिवाद केस सं॰ 1552 वर्ष 2009 में तत्कालीन अनुमंडल न्यायिक दंडाधिकारी, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 13.4.2010 के आदेश जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 417 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दाखिल की गयी है।

2. परिवादी का मामला यह है कि दिनांक 4.11.2004 को याची ने संपत्तियों को बेचने के लिए परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया। मुख्तारनामा के निष्पादन पर

विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने भूमि बेचने के लिए किसी कल्याण कुमार साव के साथ करार किया और इसके बदले में दिनांक 2.12.2004 को एक लाख रुपया अग्रिम के रूप में प्राप्त किया और इसे याची को दे दिया किंतु, याची ने दिनांक 9.12.2004 को मुख्तारनामा जिसे विपक्षी पक्षकार सं० 2 के पक्ष में निष्पादित किया गया था, रद्द कर दिया। उस पर, विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने अनेक अवसरों पर कल्याण कुमार साव के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने का अनुरोध याची से किया किंतु याची एक या दूसरे बहाने इससे बचता रहा। अंततः वर्ष 2009 में परिवाद मामला दर्ज किया गया था जिस पर भारतीय दंड संहिता की धारा 417 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था जिसे इस आवेदन में दोषपूर्ण बताते हुए चुनौती दी गयी है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकार सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर वस्तुतः यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या परिवाद में किया गया अभिकथन अपराध गठित करता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 415 में छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *415.* ***Ny-****&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkk0; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA*

4. पूर्वोक्त प्रावधान के कोरे परिशीलन पर प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए।

> *(I) >Bk vFkok Hkked 0;in'ku djd vFko fdlh vU; dkjokb vFkok yki }kjk fdlh 0;fDr dk çofpr djukA*
>
> *(II) fdlh lifÙk dk nu d fy, vFkok fdlh vU; 0;fDr }kjk bl viu ikl j[ku d fy, lgefr nu d fy, ml 0;fDr dk diVi.k vFkok xj bekunkj mRçj.k vFkok vk'k; iod ml 0;fDr dk dkb pht dju vFkok ugh dju d fy, çfjr djuk tk og ugh djrk vFkok dju dk yki ugh djrk ;fn ml bl rjg çofpr ugh fd;k tkrk vkj tk ÑR; vFkok yki ml 0;fDr d 'kjhj] food] çfr"Bk vFkok lifÙk dk udlku vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dkfjr fd, tku dh lHkkouk gA*

5. इस चरण पर, मैं **हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य (2000)4 SCC 168** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *"14. bl èkkjk d iBu ij Li"V g fd ifjHkk"kk e ÑR;k d nk iFkd oxk dk fn;k x;k g ftUg çofpr 0;fDr dk dju d fy, mRçfjr fd;k tk ldrk gA çFker% ml fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk nu d fy, diViod vFkok xjbekunkj :i l mRçfjr fd;k tk ldrk gA èkkjk e fn, x, ÑR;k dk nljk ox fdlh pht dk djuk vFkok ugh djuk g tk çofpr 0;fDr djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k tkrkA ekeyk d çFke ox e mRçj.k diVi.k vFkok xjbekunkj gkuk pkfg,A ÑR;k d nlj ox e mRçj.k vk'k;i.k gkuk pkfg, fdr diVi.k vFkok xjbekunkj ughA*

*15. ç'u fofuf'pr djr g, è;ku e j[kuk gkxk fd lfonk d Hkx ek= vkj Ny d vijkèk d chp lfHkUurk l{e gA ;g mÍçj.k d le; vfHk;Dr d vk'k; ij fuHkj djrk g ft ldk fu.k; mld ckn d i'pkrorh vkpj.k }kjk fd;k tk ldrk g fdr ;g i'pkrorh vkpj.k ,dek= ijh{kk ugh gA lfonk dk Hkx ek= Ny d fy, nkfMd vfHk;ktu dk tUe ugh n ldrk g tc rd l0;ogkj d vkjHk e gh vFkkr tc vijkèk fd;k x;k crk;k x;k g] diVi.k vFkok xj&bekunkj vk'k; n'kk;k ugh tkrk gA vr% vk'k; vijkèk dk lkj gA fdlh 0;fDr dk Ny dk nk"kh vfHkfuèkkfjr dju d fy, ;g n'kkuk vko';d g fd oknk djr le; mldk diVi.k vFkok xjbekunkj vk'k; FkkA ckn e viuk oknk ijk dju e mldh foQyrk ek= dk vkjHk e gh vFkkr tc mlu oknk fd;k Fkk] mldk ,k lg&vkijkfèkd vk'k; mièkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA***

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि लागू करने पर यह कहा जाए कि भूमि के विक्रय के बदले में उसे किसी संपत्ति को देने के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अथवा कल्याण कुमार साव को कपटपूर्वक अथवा गैरईमानदार रूप से उत्प्रेरित करने का अभिकथन याची के विरुद्ध कभी नहीं किया गया है और न ही ऐसा कोई अभिकथन किया गया प्रतीत होता है कि याची ने शब्दों द्वारा अथवा कृत्यों द्वारा कोई झूठा अथवा भ्रामक व्यपदेशन किया था।

7. इन परिस्थितियों के अधीन, परिवाद में किया गया अभिकथन कोई दांडिक अपराध गठित नहीं करता है। तद्नुसार, परिवाद केस सं॰ 1552 वर्ष 2009 में दिनांक 13.4.2010 के आदेश सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

8. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

कुणाल किशोर सिंह उर्फ सोनू सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. H.B. (Cr.) (D.B) No. 245 of 2011. Decided on 9th January, 2012.

केस सं॰ 3 वर्ष 2011 में जिला मजिस्ट्रेट, पलामू द्वारा पारित दिनांक 5.7.2011 के निरोध आदेश के विरुद्ध।

झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002—धारा 12 (2)—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—निरोध–याची अनेक मामलों में अंतर्ग्रस्त है–यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम के अधीन याची के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए अपनी संतुष्टि के लिए निरोध प्राधिकारीगण के पास कोई आधार नहीं था–ऐसी संतुष्टि व्यक्तिपरक संतुष्टि है–अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने के प्रयोजन से याची की सेवा पृष्ठभूमि, समस्त मामलों में जमानत प्रदान किया जाना और उनमें से एक में दोषमुक्ति और उनमें से एक में उसको रिमांड नहीं किया जाना प्रासंगिक नहीं है–अधिनियम के अधीन कार्रवाई के प्रयोजन से दांडिक मामलों के गुणागुण भी अप्रासंगिक हैं–प्राधिकारीगण द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया में कोई दोष नहीं है–रिट याचिका खारिज।

(पैराएँ 6 से 8)

निर्णयज विधि.–(2010) 9 SCC 618; **2011(1) JLJ 4 (SC)**—Distinguished; AIR 1987 SC 137; 2006 (3) PLJR 359; (1985) 4 SCC (Cr) 514; (2006) 6 SCC 64; (2002) 6 SCC 735; (2004) 7 SCC 467; (2005) 3 SCC 666—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Ramesh Kumar Singh, For the Petitioner; M/s Rajiv Ranjan, Shresth Gautam, Forthe Respondents.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों को विस्तारपूर्वक सुना गया।

2. यह रिट याचिका झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 (संक्षेप में 'अधिनियम') के अधीन याची को निरोध आदेशों (परिशिष्ट 22, 28 और 29) दिनांक 5.7.2011, 15.7.2011 और 12.8.2011 को अपास्त करने के लिए दाखिल की गयी है।

3. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ के॰ सिंह ने संक्षिप्त नोटों को निर्दिष्ट किया और निम्नलिखित निवेदन किया:–

निरोध प्राधिकारी की आशंका कि अपनी निर्मुक्ति पर याची आम जनता के बीच असुरक्षा, अस्थायित्व और व्यापक अस्थिरता का वातावरण सृजित करेगा, न्यायोचित नहीं है और प्रासंगिक अनुचिंतनों पर आधारित नहीं है और कि यह निम्नलिखित प्रासंगिक अनुचिंतनों को अपवर्जित करता है:

(i) ;kph dh lok i"BHkfeA

(ii) fd ;kph dk U;kf;d çkfèkdkjh }kjk mu leLr ekeyk] ftUgs fujkèk dk vkèkkj cuk;k x;k g] e tekur çnku fd;k x;k gA

(iii) fd 2010 d leLr ekeyk e vfHkdfFkr ?kVuk dh yxHkx lkjh frfFk;k ij ;kph lU; dÜk0; ij Fkk vkj vfHkdfFkr vijkèkk dk dju d fy, miyCèk ugh FkkA

(iv) fd o"k 2011 e dkjkxkj d vnj ,d vijkèk dk NkMdj fdlh nkfMd ekey e ml ukfer ugh fd;k x;k gA

(v) fd dl l0 218 o"k 2011 e ml vHkh rd fjekM ugh fd;k x;k g ;|fi ifyl u fnukd 4.7.2011 dk mld fjekM d fy, çkFkuk dh FkhA

(vi) fd ml nkfMd ekey e nk"keDr dj fn;k x;k gA

4. अत: उन्होंने निवेदन किया कि विवेक का इस्तेमाल किए बिना आक्षेपित निरोध आदेशों को पारित किया गया है और इसलिए उन्हें अभिखंडित कर देना चाहिए। उन्होंने आगे निवेदन किया कि दिनांक 26.4.2010 का सनहा आधार नहीं बनाया जा सकता था क्योंकि इसे प्रभारी-अधिकारी द्वारा अस्पष्ट और सामान्य आशंका पर और उस संबंध में किसी परिवाद के बिना दर्ज किया गया था। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि यदि याची को निर्मुक्त किया जाता है, वह सैन्य बल इकाई में अपना कर्तव्य ग्रहण करेगा जहाँ वह अपने कमांडरों के कठोर नियंत्रण, देखरेख, अनुशासन और पर्यवेक्षण के अधीन होगा। श्री सिंह ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में 2006 (3) PLJR 359 में प्रकाशित **सत्येन्द्र सिंह बनाम बिहार राज्य** और **(1985)4 SCC (Cr.)514** में प्रकाशित **रमेश यादव बनाम जिला मजिस्ट्रेट** मामलों में दिए गए खंड पीठ के निर्णयों पर विश्वास किया। उन्होंने ऐसे मामलों में न्यायिक पुनर्विलोकन के विस्तार पर **पेबम निगोल मिकोई देवी बनाम मणिपुर राज्य एवं अन्य, (2010)9 SCC 618 : 2011 (1) JLJ 4 (SC),** में प्रकाशित निर्णय पर भी विश्वास किया।

5. दूसरी ओर, विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री राजीव रंजन ने निवेदन किया कि अधिनियम की धारा 12 के अधीन कार्रवाई संबंधित प्राधिकारीगण की संतुष्टि पर आधारित थी और यह दांडिक मामलों के गुणागुणों से संबंधित नहीं है और निरुद्ध व्यक्ति दोषमुक्त किया गया है अथवा जमानत प्रदान किया गया है, यह अधिनियम के अधीन कार्रवाई के प्रयोजन से प्रासंगिक नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि

संबंधित प्राधिकारीगण की याची के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी। उन्होंने आक्षेपित कार्रवाई का समर्थन किया। उन्होंने **(2006)6 SCC 64, इब्राहिम नजीर बनाम तमिलनाडु राज्य; (2002)6 SCC 735, के॰ वर्धाराज बनाम तमिलनाडु राज्य; (2004)7 SCC 457, पुलिस कमिश्नर बनाम सी॰ अनीता** एवं **(2005)3 SCC 666** में रिपोर्ट किए गए **कलक्टर एण्ड डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, डब्ल्यू॰ जी॰ जिला एलूरा, आन्ध्र प्रदेश एवं एक अन्य बनाम संगला कोंडम्मा,** के निर्णयों पर विश्वास किया।

6. हमारे मत में, याची की सेवा पृष्ठभूमि, समस्त मामलों में जमानत प्रदान किया जाना और उनमें से एक में दोषमुक्ति और उनमें से एक में उसका रिमांड नहीं किया जाना अधिनियम के अधीन कार्रवाई के प्रयोजन से प्रासंगिक नहीं हैं। इसी प्रकार, दांडिक मामलों के गुणागुण अधिनियम के अधीन कार्रवाई के प्रयोजन से अप्रासंगिक है।

7. सत्येन्द्र सिन्हा (ऊपर) का मामला याची की मदद नहीं करता है। **सत्येन्द्र सिन्हा (ऊपर)** में **AIR 1987 SC 137** में प्रकाशित **अनन्त सखाराम राउत बनाम लीना अनन्त राउत** के मामले के निर्णय पर विश्वास किया गया था। किंतु **अनन्त सखाराम राउत (ऊपर)** के निर्णय के बाद वर्ष 1994 में (पूर्ववर्ती बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981) में धारा 12A अंत:स्थापित की गयी थी जो अन्य बातों के साथ प्रावधानित करती है कि निरोध आदेश को मात्र इसलिए अवैध अथवा अप्रवर्तनीय नहीं समझा जाएगा कि आधारों में से एक अथवा कुछ (i) अस्पष्ट, (ii) अविद्यमान, (iii) अप्रसंगिक, (iv) ऐसे व्यक्ति से संबंधित अथवा निकट रूप से असंबंधित अथवा (v) किसी भी अन्य कारण से अवैध है। **सत्येन्द्र सिंह (ऊपर)** के मामले में इस पहलू को प्रस्तुत अथवा इस पर विचार नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, **इब्राहिम नजीर (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के बाद के निर्णय में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

> *"7. ;g è;ku e j[kuk gkxk fd D;k tekur çkFkuk Lohdkj dh tk,xh] ;g çR;d ekey dh ifjfLFkfr;k ij fuHkj djxk vkj dkb n< fu;e ykx ugh fd;k tk ldrk gA ,dek= vko';drk ;g g fd fujkèk çkfèkdkjh dk voxr gkuk pkfg, fd fu#) 0;fDr igy l gh vfHkj{kk e g vkj mldk tekur ij fueDr fd, tku dh lHkkouk gA ;g fu"d"k fd fu#) 0;fDr tekur ij fueDr fd;k tk ldrk g] fujkèk çkfèkdkjh dh rnfDr ugh gk ldrk gA viu le{k lkexh d vkèkkj ij fujkèk çkfèkdkjh bl fu"d"k ij vk;k fd fu#) 0;fDr dk tekur ij fueDr dj fn, tku dh lHkkouk gA og lkefx;k ij vkèkkfjr mldh 0;fDrijd lrf"V gA lkekU;r% ,lh lrf"V e gLr{ki ugh djuk pkfg,A ekey d rF;k e fujkèk çkfèkdkjh u minf'kr fd;k g fd D;k mudk er Fkk fd fu#) 0;fDr dk tekur ij fueDr fd, tku dh lHkkouk gA ;g Li"Vr% dfFkr fd;k x;k g fd le#i ekeyk e vud U;k;ky;k }kjk tekur çnku djr g, vkn'k ikfjr fd;k x;k gA**"*

के॰ वर्धाराज (ऊपर) के मामले में अभिनिर्धारित किया गया था कि जमानत के लिए आवेदन प्रस्तुत करना और उस पर किया गया आदेश सदैव आज्ञापक नहीं है और ऐसी आवश्यकता प्रत्येक मामले के तथ्य पर निर्भर करेगी।

याची की ओर से विश्वास किए गए **पेबम निगोल मिकोई देवी (ऊपर)** के मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न थी। उस मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:

> *"21. fujkèk vkn'k dh 'k)rk vFkok vU;Fkk ij Qlyk dju d fy, bl U;k;ky; d le{k nk egRoi.k fook|d mnHkr gkr gA igyk mu nLrkotk vkj lkexh d lcèk e g ftu ij fujkèk vkn'k ikfjr dju d fy, fu#) dju oky çkfèkdkjh }kjk fo'okl fd;k x;k FkkA nljh o lkefx;k g ftud vkèkkj ij fu#)*

*dju okyk çkfèkdkjh bl fu"d"k ij vku d fy, U;k;kfpr Fkk fd fdlh fopkj.k d fcuk jk"Vh; lj{kk vfèkfu;e d vèkhu cUnh dk fu#) fd;k tkuk pkfg,A bl çÑfr d ekeyk e] ;g U;k;ky; fu.k; dh 'k)rk ij fopkj ugh djxk cfYd doy fu.k; yu dh çfØ;k ij fopkj djxkA ;g è;ku e fy;k tk ldrk g fd U;kf;d iufoykdu fu.k; d fo#) vihy ugh g cfYd ml rjhd dk iufoykdu g ftl rjhd l fu.k; fy;k x;k FkkA iufoykdu dk mí'; ;g lfuf'pr djrk g fd 0;fDr d lkFk fu"i{k 0;ogkj fd;k tk,A***

*"26. bu fofu.k;k l ;g lkeu vkrk g fd fujkèk vkn'k d fy, ;fDr;Dr vkèkkj gkuk pkfg, vkj bld leFku d fy, lkexh gkuh pkfg,A viu fu"d"kk ij vku d fy, çkfèkdkjh }kjk fo'okl dh x;h lkexh dh loh{kk dju vkj rnulkj ;g fofuf'pr dju fd 0;fDrijd lrf"V d fy, oLrijd vkèkkj g] dk U;k;ky; gdnkj gA 0;fDrijd lrf"V nk çdkj dh gkuh pkfg,A fu#) dju oky çkfèkdkjh dk lr"V gkuk gkxk fd fu#) fd;k tku okyk 0;fDr }kjk jkT; dh lj{kk d çfrdy rjhd e vFkok ykd 0;oLFkk cuk, j[ku d çfrdy rjhd e ÑR; fd, tku dh lHkkouk g vkj çkfèkdkjh dk vkx lr"V gkuk pkfg, fd mDr 0;fDr dk ,lk dju l jkdu d fy, fu#) djuk vko';d gA***

पुलिस कमिश्नर (ऊपर) के मामले में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

*"15. U;k;ky; fujkèk çkfèkdkjh d er d LFkku ij viuk er çfrLFkkfir ugh dj ldrk g] tc fujkèk d vkèkkj lVhd] mi;Dr] fudV vkj çklfxd gkA ,lk gh ekeyk ;gk gA dkb vLi"Vrk vFkok cklhiu ugh gA ?kVukvk dk mld çHkko d çfr fuf'pr min'ku d lkFk fujkèk d vkèkkjk dk çnhlr fd;k x;k g ftl Åij m)r fujkèk d vkèkkjk d ijkxkQ 3e lVhd :i l dfFkr fd;k x;k gA fufn"V dh x;h nk ?kVuk, n'kkrh g fd fdl rjhd l fu#) 0;fDr fdlh l tehu [kjhn jg Fk tk èku ekx jgk Fkk vkj ekx ijk ugh fd, tku ij gR;k dju dh èkedh n jgk FkkA ?kVuk, fujkèk çkfèkdkjh }kjk igp x, 0;fDrijd lekèkku dk Li"Vr% fl) djrh g fd fdl çdkj fu#) 0;fDr d ÑR; ykd 0;oLFkk dk cuk, j[ku d çfrdy Fk----------***

कलक्टर एंड डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, डब्ल्यू॰ जी॰ (ऊपर) के मामले में अन्य बातों के साथ साथ अभिनिर्धारित किया गया था:–

*^^---------;fn fujkèk çkfèkdkjh d le{k çLrr rF; ,d nlj d fudV g vkj mfYyf[kr rF;k e l vfre fujkèk vkn'k d fudV g] rc io ?kVukvk dk ijkuk ugh ekuk tk ldrk g vkj fujkèk vkn'k vikLr ugh fd;k tk ldrk gA***

8. वर्तमान मामले में, अधिनियम के अधीन कार्रवाई याची की अंतर्ग्रस्तता अभिकथित करने वाले अनेक मामलों के आधार पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा की गयी है–वर्ष 2006 के दो मामले, वर्ष 2010 के चार मामले और वर्ष 2011 के दो मामले। उक्त मामलों के अतिरिक्त, संबंधित प्राधिकारीगण ने दिनांक 26.4.2010 के स्टेशन डायरी पर भी विश्वास किया है। तर्क के ख्याल से उक्त स्टेशन डायरी प्रविष्टि एक ओर रखी भी जाती है, तब भी यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम के अधीन याची के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए अपनी संतुष्टि के लिए निरोध प्राधिकारीगण के पास कोई आधार नहीं था। यह सुनिश्चित है कि ऐसी संतुष्टि व्यक्तिपरक संतुष्टि है। न्यायालय को केवल यह देखने की आवश्यकता है

कि क्या निरुद्ध व्यक्ति के साथ निष्पक्ष व्यवहार किया गया है। हम प्राधिकारीगण द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया में कोई दोष नहीं पाते हैं। याची को निरुद्ध करने के लिए उनके द्वारा लिए गए निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। विभिन्न कोणों से मामले पर विचार करने के बाद, हमारे मत में, आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है।

तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjh vkjh çlkn] U;k;efr

विजय लोहार उर्फ बिजय लोहार

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 577 of 2010. Decided on 3rd January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 366A/376/417—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अपहरण तथा बलात्संग–उन्मोचन याचिका अस्वीकार किया जाना–याची ने उसके साथ तीन दिन बिताने के बाद सूचक युवती के साथ विवाह करने से अभिकथित रूप से इनकार कर दिया–सूचक स्वेच्छा से याची के साथ ऐसे स्थान पर गयी जहाँ वह तीन दिन रुकी और पति-पत्नी की तरह रही–अभियोजन ने अभिकथित नहीं किया कि उसे विवाह करने के झूठे बहाने पर याची ने पीड़ित युवती के साथ यौनकर्म किया–यथा अभिकथित अपराध निर्मित नहीं होता है–याची मामले से उन्मोचित किया गया–पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Chaturvedi, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. D.K. Chakravarty, For the Opp. Party No.2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह पुनरीक्षण आवेदन एस॰ टी॰ सं॰ 253 वर्ष 2009 में विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 13.5.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन यह अभिनिर्धारित करते हुए कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 366A/376/417 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला बनता है, उन्मोचन के लिए याचिका अस्वीकार कर दी गयी है।

3. यह प्रतीत होता है कि सूचक पीड़ित युवती अनुपमा मुखी द्वारा उसमें यह अभिकथन करते हुए मामला दर्ज किया गया था कि उसे इस याची विजय लोहार उर्फ बिजय लोहार के साथ प्रेम हो गया जो अक्सर उसके घर आया करता था। दिनांक 27.3.2009 को याची ने उसको टेलीफोन पर जुबली पार्क आने को कहा। जब वह वहाँ आयी और उससे मिली, याची ने उसे बताया कि वह उससे विवाह करना चाहता है किंतु उसके परिवार के सदस्य इसके लिए तैयार नहीं हैं। उस पर वे दोनों एक स्थान पर आए और पति-पत्नी के रूप में तीन दिन तक ठहरे। तत्पश्चात्, याची ने उसको अपने-अपने घर लौटने को कहा ताकि वह उसके साथ विवाह करने का अनुरोध अपने परिवार के सदस्यों से कर सके। तद्नुसार, वे वापस आए और याची अपने घर चला गया। कुछ समय बाद वह अपने कपड़े लेकर आया और उसको बताया कि उसके परिवार के सदस्य विवाह के लिए तैयार नहीं हैं और तब याची चला गया।

4. पुलिस ने मामले के अन्वेषण के बाद भारतीय दंड संहिता की धाराओं 366A/376 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया। जब मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया, यह अभिवचन करते हुए कि भारतीय दंड संहिता की धारा 366A अथवा 376 के अधीन कोई मामला नहीं बनता है क्योंकि याची ने सूचक को कभी भगाया नहीं था बल्कि वह स्वेच्छापूर्वक याची के साथ आयी थी और उसकी सहमति से यौन संभोग हुआ था, उन्मोचन के लिए आवेदन दाखिल किया गया था किंतु याची का अभिवचन यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि याची ने उसके साथ विवाह करने के झूठे बहाने पर उसके साथ यौन कर्म किया था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धाराओं 366A/376/417 के अधीन आरोप विरचित करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला है। किंतु प्राथमिकी में दिए गए बयान से और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दिए गए उसके बयान से यह प्रतीत होता है कि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अवैध यौन संभोग के लिए बहकाने की दृष्टि से याची द्वारा उसे प्रलोभित किया गया था बल्कि युवती का बयान है कि जब याची ने उसे जुबली पार्क आने के लिए कहा था और जब वह वहाँ आयी, याची द्वारा प्रकट किया गया था कि उसके परिवार के सदस्य उसे उसके साथ विवाह करने की अनुमति नहीं दे रहे हैं। फिर भी उसके बयानों के अनुसार वह स्वेच्छापूर्वक याची के साथ ऐसे स्थान पर गयी जहाँ वह तीन दिन रुकी और पति-पत्नी की तरह रही। अतः, यह अभियोजन का मामला कभी नहीं है कि उसके साथ विवाह करने के झूठे बहाने पर याची ने पीड़ित-युवती के साथ यौन कर्म किया था और कि स्वयं पीड़ित युवती ने अपनी आयु 19 वर्ष प्रकट किया था। इस स्थिति में, भारतीय दंड संहिता की धारा 366A/376 अथवा धारा 417 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है, फिर भी उन्मोचन की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी है और इसलिए, अपर सत्र न्यायाधीश ने मामले से याची को उन्मोचित करने से इनकार करके अवैधता किया। तद्नुसार, दिनांक 13.5.2010 का आदेश अवैधता से ग्रस्त है और इसलिए इसे अपास्त किया जाता है।

5. परिणामस्वरुप, याची विजय लोहार उर्फ बिजय लोहार को मामले से उन्मोचित किया जाता है।

6. परिणामस्वरुप, यह पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k ,o Mhï ,uï mikè;k;] U;k;efrx.k

पहलवान सोरेन उर्फ पलहन सोरेन

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal D.B. No. 826 of 2002. Decided on 2nd January, 2012.

सत्र केस सं॰ 298/2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 30.9.2002 और 1.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–दोषसिद्धि–पक्षगण रिश्तेदार थे–उनके बीच विवाद और झगड़ा हुआ था जब वे मदिरा सेवन करते हुए बँटवारा के बारे में बात कर रहे थे–अपीलार्थी ने झगड़े के दौरान काठ के तख्ते से सिर पर एक उपहति कारित किया–अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध किया है किंतु यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी का आशय मृतक की हत्या करना था–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग II के अधीन परिवर्तित की गयी–दंडादेश पहले ही भुगत ली गयी अवधि (12 वर्षों) तक परिवर्तित किया गया। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–None, For the Appellant; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह अपील सत्र केस सं० 298/2000 में अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और उसे आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 30.9.2002 और 1.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक ने दिनांक 28.8.2000 को प्रात: 9 बजे इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज कराया कि उसके पति और उनके भाइयों के बीच भूमि विवाद है। दिनांक 27.8.2000 को सायं लगभग 5 बजे अपीलार्थी उसके पति जीतू सोरेन को मदिरा सेवन करने बाहर ले गया और वे झगड़ने लगे। तत्पश्चात् अपीलार्थी ने उसके पति जीतू सोरेन के मस्तक पर काठ के तख्ते से प्रहार किया जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।

4. अभियोजन ने आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ० सा० 7 डॉक्टर है जिन्होंने जीतू सोरेन (मृतक) का शव परीक्षण किया। उन्होंने मस्तक के दायें भाग पर डिफ्यूज्ड सूजन पाया और त्वचा हटाये जाने पर चमड़े के नीचे जमा खून पाया गया था और मध्य में दायें पेराइटल अस्थि का फ्रैक्चर था। डॉक्टर के अनुसार, उपहति मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी और प्रयुक्त हथियार कड़ा और भोथरा था।

5. राज्य के अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. हमारे मत में, अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्ध किया जाना चाहिए था। स्वीकृत रूप से, उनके बीच विवाद और झगड़ा था। जब वे बँटवारा के बारे में बात कर रहे थे। अपीलार्थी को झगड़ा के दौरान काठ के तख्ते द्वारा सिर पर एक उपहति कारित करने वाला बताया जाता है। अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध किया है किंतु यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी का आशय मृतक की हत्या करना था।

7. परिणामस्वरुप, भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि भा० दं० सं० की धारा 304, भाग II के अधीन दोषसिद्धि में परिवर्तित की जाती है। जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी अब तक 12 वर्षों तक कारागार में बना हुआ है। तद्नुसार, उसे उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक के लिए दंडादेशित किया जाता है। अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त किया जाए यदि किसी अन्य दांडिक मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

8. यह अपील पूर्वोक्तानुसार दोषसिद्धि और दंडादेश में उपांतरण के साथ निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

इब्राहिम मियाँ एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 472 of 2010. Decided on 2nd January, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 437 (5)—जमानत–रद्दकरण–याचीगण ने इस तथ्य को दबाकर जमानत पाया कि समस्थित सह-अभियुक्त की प्रार्थना न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी और याचीगण गवाहों को धमकी दे रहे थे–पहला आधार मान्य नहीं है क्योंकि यह

तथ्य कि समस्थित सह-अभियुक्त की जमानत की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी, अभिलेख पर था जिसे अभियोजन द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता था–किंतु, अभियुक्तगण जमानत पर रिहा कर दिए जाने पर सुलह के लिए दबाव डालकर धमकी दे रहे थे–यह तथ्य जमानत रद्द करने के लिए पर्याप्त है–अभियुक्त को प्रदान की गयी जमानत रद्द की जा सकती है यदि अभियुक्त जमानत पर रिहा कर दिए जाने के बाद साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करता है अथवा विचारण अथवा अन्वेषण में बाधा डालता है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–(1993) Cri LJ 251—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Sanjay Prasad, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. P.C. Sinha, For the Opp. Party No.2.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इन समस्त याचीगण को विचारण न्यायालय द्वारा जमानत प्रदान किया गया था किंतु बाद में, दिनांक 17.4.2010 के आदेश के तहत इन याचीगण की जमानत इस आधार पर रद्द कर दी गयी थी कि याचीगण ने जमानत प्रदान किए जाने के समय इस तथ्य को दबाया था कि समस्थित सह-अभियुक्त की प्रार्थना न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दी गयी है और इस आधार पर भी कि याचीगण गवाहों को धमकी दे रहे हैं। उक्त आदेश को इस आवेदन में चुनौती दी गयी है।

3. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जहाँ तक तथ्य को दबाने के प्रथम आधार का संबंध है, उसे तथ्य का दबाना नहीं कहा जा सकता है क्योंकि सह-अभियुक्त की प्रार्थना की अस्वीकृति से संबंधित तथ्य अभिलेख पर था और अभियोजन इसे न्यायालय के समक्ष प्रकट कर सकता था किंतु चूँकि अभियोजन द्वारा इसे प्रकट नहीं किया गया था, याचीगण को इस तथ्य को दबाता हुआ नहीं कहा जा सकता है और जहाँ तक साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने के आधार का संबंध हैं, सूचक और अन्य की ओर से पुलिस के समक्ष दिया गया बयान कि उन्हें धमकी दी जा रही है, बिल्कुल अस्पष्ट है।

4. इस संबंध में आगे निवेदन किया गया है कि धमकी देने के स्थान, समय और तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है और इस प्रकार, पुलिस द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर न्यायालय द्वारा कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए थी और इसलिए, न्यायालय ने याचीगण को पहले दी जा चुकी जमानत रद्द करने में अवैधता की और इसलिए यह अपास्त किए जाने योग्य है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **करण सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 1993, Cr. LJ. 251** के मामले में दिए गए निर्णय को यह तर्क करने के लिए निर्दिष्ट किया है कि जब तक अनिवार्य परिस्थितियाँ न हो, न्यायालय को याचीगण की जमानत रद्द नहीं करनी चाहिए थी।

6. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याचीगण को जमानत पर रिहा कर दिए जाने के बाद वे गवाहों को धमकी देने लगे और इसलिए जमानत के रद्दकरण के लिए न्यायालय के समक्ष याचिका दाखिल की गयी थी, जिस पर अन्वेषण अधिकारी से रिपोर्ट मांगा गया था जिन्होंने दिनांक 5.3.2010 को यह जांच करने के बाद कि अभियुक्तगण ने धमकी दी थी अपना रिपोर्ट दाखिल किया। जमानत रद्द किए जाने के बाद, याचीगण को सात दिनों के भीतर अवर न्यायालय के समक्ष

आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया गया था किंतु उन्होंने अवर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया और कुछ अभी भी बाहर हैं।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, मैं पाता हूँ कि याचीगण की जमानत दो आधारों पर रद्द कर दी गयी है। पहला आधार यह है कि याचीगण ने जमानत के लिए आवेदन देते समय इस तथ्य को दबाया था कि समस्थित सह-अभियुक्त की जमानत की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी और द्वितीयतः याचीगण मुक्त कर दिए जाने पर गवाहों को धमकी दे रहे थे और तद्द्वारा साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ कर रहे थे। जहाँ तक प्रथम आधार का संबंध है, वह मान्य प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यह तथ्य कि समस्थित सह-अभियुक्त की जमानत की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी, अभिलेख पर हैं जिसे अभियोजन द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता था और इस प्रकार याचीगण को तथ्य दबाता हुआ नहीं कहा जा सकता है और तथ्य दबाकर जमानत पाता हुआ नहीं कहा जा सकता है। किंतु जहाँ तक अन्य आधार का संबंध है, मैं पाता हूँ कि यह मान्य है क्योंकि जब जमानत के रद्दकरण के लिए आवेदन दाखिल किया गया था, याचीगण को नोटिस दी गयी थी और संबंधित पुलिस थाना से रिपोर्ट मांगा गया था। इसके अनुसरण में पुलिस ने जाँच किया और पाया कि अभियुक्तगण जमानत पर रिहा किए जाने के बाद मामले में सुलह करने के लिए दबाव डालकर धमकी दे रहे थे। यह तथ्य दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 की उपधारा (5) में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में जमानत रद्द करने के लिए पर्याप्त है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 की उपधारा (5) का उद्देश्य न्याय के हित को सुरक्षित रखना और अभियुक्त द्वारा किसी भी तरीके से साक्ष्य में छेड़छाड़ रोकना है। अतः, अभियुक्त को प्रदान की गयी जमानत रद्द की जा सकती है यदि अभियुक्त जमानत पर रिहा होने के बाद साक्ष्य से छेड़छाड़ करने का प्रयास करता है अथवा विचारण अथवा अन्वेषण में बाधा डालता है। वर्तमान मामले में जैसा रिपोर्ट किया गया है कि अभियुक्तगण गवाहों को धमकी दे रहे थे और तद्द्वारा उन्हें आसानी से साक्ष्य से छेड़छाड़ करता हुआ कहा जा सकता है। अतः इन न्यायालय ने उनकी जमानत रद्द करने में कोई अवैधता नहीं किया है।

8. तद्नुसार, मैं इस आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

जोहान मुंडा एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (D.B.) No. 1657 of 2003. Decided on 23rd January, 2012.

सत्र केस सं॰ 289/2000 में श्री रघुवर दयाल, एस॰ जे॰ एस॰, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट II, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 24.9.2003 और 25.9.2003 के क्रमशः दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 324/34—हत्या–दोषसिद्धि–जादू-टोना के संबंध में विवाद और झगड़ा–प्राथमिकी में कथित और घायल चश्मदीद गवाहों द्वारा संपुष्ट अभियोजन मामले पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं हैं–उन पर अविश्वास करने के लिए अभियोजन गवाहों के साक्ष्य में कुछ भी नहीं है–उपहतियाँ शरीरों के महत्वपूर्ण अंगों पर कारित

की गयी थी–हत्या करने का आशय था–अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध किया है–दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं बनता है–अपील खारिज।
(पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. R.C. Khatri, For the Appellants; Mr. D.K. Chakerverty, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं॰ 289/2000 में अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध करने के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उनको आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए और भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन भी दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट II चाईबासा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 24.9.2003 और दिनांक 25.9.2003 को पारित दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है। दोनों दंडादेशों को साथ साथ चलना था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 7.6.2000 को रात्रि लगभग 8 बजे अपीलार्थी सं॰ 2 बिरसा मुंडा डंडा लिए हुए बोई मुंडु (फरार अभियुक्त) जो दावली (तेज धार वाला हथियार) लिए था और अपीलार्थी सं॰ 1 जोहान मुंडु के साथ सूचक के घर आया। बिरसा ने सूचक की पत्नी कैरी उर्फ सलामी कुई को 'डायन' कहा और जब परिवार के सदस्यों ने प्रतिरोध किया, बोई ने सूचक की पत्नी और पुत्री पर दावली से प्रहार किया और बिरसा ने सूचक पर डंडा से प्रहार किया। सूचक, उसकी पत्नी और पुत्री घायल हो गए। ऐसी घटना देखकर सूचक का बड़ा भाई मनसुख मोरा मुंडा (मृतक), जो अपने दरवाजे पर बैठा था, ने हस्तक्षेप किया और अभियुक्तगण को चेतावनी दी। इस पर, बिरसा ने कहा कि वे वस्तुत: मनसुख को खोज रहे थे। अभियुक्तगण मनसुख के घर की ओर गए। बिरसा और जोहान ने मनसुख को उसके घर से घसीटा। अभिकथित किया गया है कि जोहान ने मनसुख को पकड़ लिया, बिरसा ने उस पर डंडा से प्रहार किया और उसकी गर्दन ऊपर की तरफ उठाया और तब बोई ने मनसुख की गर्दन काट दिया जिस कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

आगे अभिकथित किया गया था कि अभियुक्तगण सूचक की पत्नी को 'डायन' कहते थे जिसका मृतक, सूचक और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा विरोध किया जाता था जिस कारण यह घटना हुई थी जिसमें मनसुख की मृत्यु हो गयी और सूचक, उसकी पत्नी और पुत्री घायल हो गए।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ सी॰ खत्री ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया है। उन्होंने निवेदन किया कि मृत्यु का कारण फरार अभियुक्त बोई द्वारा दावली से कारित कटी उपहतियाँ हैं और जहाँ तक अपीलार्थीगण का संबंध है, उनके विरुद्ध डंडा द्वारा उपहति कारित करने और मृतक को पकड़े रखने का अभिकथन है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि घटना जादू टोना के संबंध में विवाद और झगड़े के कारण हुई थी और मृतक की हत्या करने का आशय नहीं था और कि अपीलार्थीगण 11 वर्षों से भी अधिक समय से कारागार अभिरक्षा में हैं।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अभियोजन ने 8 गवाहों का परीक्षण किया है:–

v0 lk0 1 elhnkl eM vuJr xokg gA

v0 lk0 2 lpd dh ?kk;y iRuh gA

v0 lk0 3 lpd gA
v0 lk0 4 eR; lehf{kk xokg gA
v0 lk0 5 vfHkxg.k lph xokg gA
v0 lk0 6 MkDVj g ftUgkus 'ko ijh{k.k fd;kA
v0 lk0 7 MkDVj g ftUgkus ?kk;y xokgk dk ijh{k.k fd;kA
v0 lk0 8 ifyl vfékdkjh g ftlus dl Mk;jh fl) fd;kA

6. प्राथमिकी में कथित और घायल चश्मदीद गवाहों अ॰ सा॰ 2-3 और अ॰ सा॰ 6 और 7 डॉक्टरों द्वारा संपुष्ट अभियोजन मामले पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। अभियुक्तगण डंडा और दावली (तेज धार वाला हथियार) के साथ आए और सूचक तथा उसकी पत्नी के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर प्रहार करने में हथियारों का उपयोग किया, यद्यपि पायी गयी उपहतियाँ सामान्य प्रकृति की थी। जब मृतक ने हस्तक्षेप किया, अपीलार्थीगण ने उसको पकड़ने, डंडा से उस पर प्रहार करने, उसकी गर्दन को ऊपर करने में सक्रिय भूमिका निभायी जिसे अभियुक्त बोई द्वारा उसकी गर्दन तेज धार वाले हथियार से काट दी गयी थी। अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर ने पाया कि कटने की उपहतियाँ दावली जैसे तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी। गर्दन पर और छाती पर कटने की उपहतियाँ थी जिन्हें मृत्यु का कारण पाया गया था। एक खरोंच भी थी।

7. उन पर अविश्वास करने/झूठा ठहराने के लिए अभियोजन गवाहों के साक्ष्य में कुछ भी नहीं है। श्री खत्री द्वारा किया गया निवेदन कि हत्या का आशय नहीं था, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों की दृष्टि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है जैसा ऊपर गौर किया गया है।

8. मामले का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद यह प्रतीत होता है कि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम रहा है। अपीलार्थीगण के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है। तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

सुभाष प्रसाद प्रजापति एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 1683 of 2007. Decided on 2nd January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3 एवं 4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—क्रूरता–संज्ञान–आपसी सहमति के आधार पर तलाक पहले ही प्रदान किया जा चुका है–पक्षों द्वारा संयुक्त सुलह याचिका दाखिल की गयी–पक्षों ने वैवाहिक विवाद में सुलह कर लिया है–याचीगण को दोषसिद्ध करने की कोई गुंजाइश नहीं है और याचीगण को विचारण का सामना करने की अनुमति देना निरर्थक कार्य होगा–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात।
(पैराएँ 4 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Arvind Kumar Choudhary, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर नोटिस तामील किए जाने के बावजूद उसने इस मामले में उपस्थित होना नहीं चुना है।

2. तद्नुसार, याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

3. यह आवेदन दिनांक 20.10.2003 के आदेश जिसके द्वारा अनुमंडल न्यायिक दंडाधिकारी, देवघर ने याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3 और 4 के अधीन भी अपराध के लिए संज्ञान लिया है, सहित पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 432 वर्ष 2003 में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दाखिल किया गया है।

4. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिवाद दाखिल किए जाने के पहले याचीगण ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1) (1-a) (1-b) के अधीन अपनी पत्नी–परिवादी (विपक्षी पक्षकार सं॰ 2) के विरुद्ध तलाक वाद दाखिल किया था। जब नोटिस जारी किया गया था, परिवादी तलाक वाद में उपस्थित हुई थी और पक्षों के बीच कतिपय करार हुआ जिसके द्वारा फैसला किया गया था कि दोनों पक्ष आपसी सहमति से तलाक के लिए आवेदन दाखिल करेंगे। तद्नुसार, उसे दाखिल किया गया था जिसके आधार पर दिनांक 24.3.2007 को न्यायालय द्वारा आपसी सहमति पर तलाक प्रदान किया गया था। उस पर पक्षों ने अवर न्यायालय के समक्ष संयुक्त सुलह याचिका भी दाखिल किया था किंतु कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और इसलिए, याचीगण के पास इस न्यायालय के समक्ष आने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि चूँकि पक्षों के बीच सुलह हो गया है, इन याचीगण को विचारण का सामना करने की अनुमति देना निरर्थक कार्य होगा क्योंकि अभिकथित अपराध के लिए याचीगण को दोषसिद्ध किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं है और इसलिए, इस स्थिति के अधीन, पक्षों द्वारा दाखिल सुलह याचिका को स्वीकार किया जाए और दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाय।

6. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, मैं पाता हूँ कि याचीगण ने दिनांक 14.5.2003 को तलाक के लिए वाद लाया था जिसमें नोटिस जारी की गयी थी। बाद में, पक्षों के बीच कतिपय करार हुआ था, जिसके द्वारा वे आपसी सहमति से तलाक के लिए सहमत हुए थे और तद्नुसार आवेदन दाखिल किया गया था, जिस पर दिनांक 24.3.2007 को तलाक की डिक्री प्रदान की गयी थी। किंतु तलाक के लिए वाद दाखिल करने के बाद इस परिवाद को दाखिल किया गया था किंतु इसके बाद, पक्षगण मामले में सुलह करते और अवर न्यायालय के समक्ष संयुक्त सुलह याचिका दाखिल करते प्रतीत होते हैं किंतु अवर न्यायालय ने कोई आदेश पारित नहीं किया था और इसलिए, ये याचीगण इस न्यायालय के सम्मुख आए हैं।

7. चूँकि पक्षों ने वैवाहिक वाद में सुलह कर लिया है; अत: याचीगण को दोषसिद्ध किए जाने की शायद ही गुंजाइश होगी और इसलिए याचीगण को विचारण का सामना करने की अनुमति देना निरर्थक कार्य होगा।

8. तद्नुसार, दिनांक 20.10.2003 के आदेश जिसके द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया है, सहित पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 432 वर्ष 2003 में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

9. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

झारखंड राज्य एवं अन्य

cuke

अरुण कुमार धर

L.P.A. No. 262 of 2011. Decided on 9th January, 2012.

(क) झारखंड सेवा संहिता, 2000—नियम 73—अधिवर्षिता की आयु–किसी कर्मचारी को 40 वर्ष की सेवा पूरी कर लेने के आधार पर सेवानिवृत्त नहीं किया जा सकता है–चूँकि इसी विवाद्यक पर परस्पर विरोधाभाषी निर्णय हैं, मामले को बृहत्तर पीठ को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है–समुचित पीठ द्वारा निर्णय के लिए मामला मुख्य न्यायाधीश को निर्दिष्ट किया गया। (पैराएँ 6 से 9)

(ख) झारखंड सेवा संहिता, 2000—नियम 73—सिविल सेवा (सी॰ सी॰ एन्ड ए॰) नियमावली, 1930—नियम 49 (IV-a)—अनिवार्य सेवानिवृत्ति–अधिवर्षिता और अनिवार्य सेवानिवृत्ति के बीच सुभिन्नता–मामले पर विचार करना और नियमावली में संशोधन करना राज्य का काम है ताकि अधिवर्षिता का नियम बनाया जा सके जो अनिवार्य सेवानिवृत्ति के नाम से न हो। (पैरा 8)

निर्णयज विधि.–2006(2) JCR 489(Jhr)—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Akhtar, Arvind Kr. Mehta, Navin Kumar, For the Appellants; M/s Rajendra Krishna, Krishna Shanker, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची को दिनांक 21.9.1968 को प्रत्यर्थी की सेवा में मोहर्रिर के रूप में नियुक्त किया गया था। यह विवादित नहीं है कि उसकी वास्तविक जन्मतिथि दिनांक 12.7.1953 है। केवल यही नहीं, नियोक्ता अपीलार्थी की सेवा पुस्तिका में भी दर्ज उसकी जन्मतिथि आरंभ से ही दिनांक 12.7.1953 है। नियोक्ता ने अभिकथित किया है कि नियुक्ति के समय याची 18 वर्ष से कम आयु का था और इसलिए 40 वर्षों की सेवा देने पर इस सरल कारण से अधिवर्षित किया जा सकता है कि कोई केवल 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद ही सेवा में प्रवेश ले सकता है और झारखंड सेवा संहिता, 2001 (पहले बिहार सेवा संहिता) के नियम 73 के मुताबिक उसे सेवा के वास्तविक 40 वर्ष पूरा कर लेने पर और न कि 58 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होना है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **रागजवा नारायण मिश्र एवं एक अन्य बनाम सी॰ ई॰ ओ॰ एवं अन्य,** 2006 (1) PLJR 410 के मामले में दिए गए पटना उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर विश्वास किया जहाँ संविदा से संबंधित विधि को और भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 11 और वयस्कता अधिनियम, 1875 की धारा 3 के फलस्वरूप संविदा करने के लिए कौन सक्षम है, को विचार में लेते हुए विवाद्यक पर विचार किया गया था। बिहार पेंशन नियमावली, 1950 के नियम 57 पर भी विचार किया गया था। खंडपीठ ने मत दिया कि चूँकि सरकारी सेवा में प्रवेश के लिए न्यूनतम आयु 18 वर्ष और सेवानिवृत्ति के लिए 58 वर्ष आयु विहित की गयी है, अत: सरकारी सेवा की कुल अवधि 40 वर्ष से अधिक नहीं होगी। खंडपीठ ने यह भी संप्रेक्षित किया कि किसी व्यक्ति, जो सेवा में प्रवेश

बिंदु पर किसी कारण से अनुचित लाभ लेता है, को यह आग्रह करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे उच्चतर लाभ दिया जाए। उक्त के अतिरिक्त, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, **श्री राजाराम शर्मा बनाम राँची नगर निगम एवं अन्य,** 2004 (2) JLJR, मामले में दिए गए इस न्यायालय की खंडपीठ के एक अन्य निर्णय में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यही दृष्टिकोण अपनाया गया है जो को-आर्डिनेट पीठ पर बाध्यकारी है।

4. प्रत्यर्थी-नियोक्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **गणेश राम बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2006 (2) JCR 489 (Jhr),** मामले में दिए गए इस न्यायालय की खंडपीठ के एक अन्य निर्णय और **राँची विश्वविद्यालय चतुर्थ ग्रेड स्टाफ एसोसियेशन एवं एक अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य** मामले में दिए गए इस न्यायालय की खंडपीठ के एक अन्य निर्णय पर विश्वास किया।

5. गणेश राम (ऊपर) के निर्णय में, इस विवाद्यक पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था और इसी विवाद्यक पर दिए गए पूर्वतर निर्णयों की विशाल संख्या को विचार में लेते हुए इस न्यायालय की खंडपीठ ने पैरा 18 में अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया जो निम्नलिखित है:–

"18. iokDr ppkvk dh nf"V e] gekjk lfopkfjr er fuEufyf[kr g%&

(i) dkb 0;fDr ftlu viuh 14 o"k dh vk; ijk dj fy;k g ij 18 o"k dh vk; ijk ugh fd;k g (fd'kkj tlk U;ure etnjh vfèkfu;e] 1948 dh èkkjk 2 d [kM (a) d vèkhu ifjHkkf"kr fd;k x;k g] fu;fDr dk ik= g ;fn fu;kDrk }kjk tkjh fu;ekoyh@ekxn'kd fl)kr bldh vuefr nrk g(

(ii) ;fn dkb 0;fDr] ftlu 18 o"k dh vk; çkIr ugh fd;k g] fu;e l ij fu;Dr fd;k x;k g] mldh fu;fDr dk vfu;fer vfHkfuèkkfjr fd;k tk ldrk g fdr vfèkof"krk (vfuok; lokfuofÙk) d ç;ktu l mldh vk; 18 o"k dk mièkkfjr ugh fd;k tk ldrk g(

(iii) ;fn 14 o"k l uhp dh vk; d 0;fDr dk fu;Dr fd;k tkrk g] cky Je (çfr"kèk ,o fofu;eu) vfèkfu;e] 1986 d vèkhu fu;kDrk d fo#) nM vkn'k ikfjr fd;k tk ldrk g fdr nMkRed çÑfr dk dkb vkn'k depkjh d fo#) ikfjr ugh fd;k tk ldrk g(

(iv) vfèkof"krk dh vk; fu;kDrk dh ejth ij NkMh ugh tk ldrh gA vfèkof"krk d fy, fu;e@ekxn'kd fl)kr@fofèk gkuk pkfg,A ;fn vfèkof"krk vk; ij vkèkkfjr g] fdlh 0;fDr dk ,lh vk; çkIr dju d igy vfèkof"kr ugh fd;k tk ldrk g] flok, vopkj vFkok v{kerk d ekey e(

(v) lkfofèkd fofèk] fu;ekoyh] fofu;eu vFkok ekxn'kd fl)krk d erkfcd vfèkof"krk (vfuok; lokfuofÙk) dh vk; fu;r djuk fu;kDrk dk dke g tk vk; ij vFkok lok d o"kk dh fuf'pr l[;k ijh dj yu ij vFkok fofgr vk; lok d o"kk dh l[;k] tk Hkh igy gk] çkfIr ij fuHkj gk ldrk gA fdr tc ,d ckj vfèkof"krk dh vk; fofgr dh tkrh g] lok d fuf'pr o"kk dk ijk dj yu tl foijhr fu;e dh vuifLFkfr e fu;fer depkjh dk] vopkj d ekey e vFkok ykdfgr@vlrk"ktud lok] vkfn] tlk fu;e d vèkhu vuK; gk ldrk g] d vkèkkj d flok, vfèkof"krk vk; çkIr dju d igy lokfuofÙk ugh fd;k tk ldrk gA

6. तत्पश्चात्, खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि झारखंड सेवा संहिता, 2001 के नियम 73 की दृष्टि में किसी कर्मचारी को सेवा के 40 वर्ष पूरा कर लेने के आधार पर सेवानिवृत्त नहीं किया जा सकता है।

7. चूँकि इसी विवाद्यक पर परस्पर विरोधाभाषी निर्णय हैं, अतः हमारे मत में मामले को वृहतर पीठ को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है। अतः हम निम्नलिखित प्रश्नों को वृहतर पीठ को निर्दिष्ट करते हैं:–

(i) D;k vfèkof"krk (vfuok; lokfuofÙk tlk fu;e 73 e mfYyf[kr fd;k x;k g] tk i{kk d fo}ku vfèkoDrk d vulkj vfèkof"krk bfxr djrk g) dh vk; çkoèkkfur dju oky >kj[kM lok lfgrk] 2001 d fofufn"V fu;e 73 d ckotn fdlh depkjh dk 40 o"k dh lok nu ij bl vkèkkj ij vfèkof"kr fd;k tk ldrk g fd lok e ço'k 18 o"k dh vk; e gk ldrk g vkj o;Ldrk dh vk; tk 18 o"k g çklr dju d ckn gh dkb lfonk e ço'k dj ldrk g] bl rF; d ckotn fd fu;ekoyh 58 o"k dh vk; ijk dju ij gh vfèkof"krk çkoèkkfur djrh gA

(ii) D;k 18 o"k dh vk; ij lok e ço'k dk Hkkjrh; lfonk vfèkfu;e] 1872 dh èkkjk 11 d fo#) dgk tk ldrk g vkj o;Ldrk vfèkfu;e] 1875 dh èkkjk 3 }kjk çHkkfor gkrk g vkj lfonk dju okyk i{k tk 18 o"k l de vk; dk g (vo;Ld gku d ukr) vkj D;k og lfonk ,l vo;Ld d fgr d fo#) voèk vkj 'kU; g rkfd ,l 0;fDr] tk 18 o"k dh vk; dk ugh Fkk] dh lok lfonk dk mlI vk;] tc og 18 o"k dh vk; çklr djrk g] l oèk lfonk d :i e fxuk tk,?

(iii) tc vfèkof"krk dh vk; d lcèk e fu;e 73 dh Hkk"kk vlfnXèk vkj vLi"V g] D;k vU; fu;ek vkj çkoèkkuk l ;g fu"d"k fudkyu d fy, lgk;rk yh tk ldrh g fd foèkku eMy dk vk'k; doy 40 o"k dh lok dh vuefr nuk Fkk vkj ;fn ,lk g] rc ;fn dkb 18 o"k dh vk; d ckn lok e ço'k djrk g] rc D;k og 58 o"k dh vk; d ij lok e cu jg ldrk g

8. अलग होने के पहले, हम उल्लिखित करना चाहेंगे कि सेवा विधि में ''अधिवर्षिता'' ''अनिवार्य सेवानिवृत्ति'' और ''स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति'' सुपरिभाषित घटनाएँ है और जैसा दोनों पक्षों के अधिवक्ता ने इंगित किया कि झारखंड सेवा संहिता, 2001 के नियम 73 में ''अनिवार्य सेवानिवृत्ति'' सरकारी सेवक की ''अधिवर्षिता का द्योतक है। हमें यह भी स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि सिविल सेवा (सी० सी० एन्ड ए०) नियमावली, 1930 के नियम 49 (IV-a) के मुताबिक ''अनिवार्य सेवानिवृत्ति'' कर्मचारियों के लिए प्रावधानित दंड में से एक है, ''स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति'' कर्मचारी द्वारा स्वेच्छापूर्वक सेवा छोड़ना है जबकि ''अनिवार्य सेवानिवृत्ति'' को नियोक्ता के पूर्वाभ्यास की आवश्यकता है और सेवानिवृत्ति अनिवार्य बनायी गयी है और यह स्वैच्छिक नहीं है। उस स्थिति में, मामले पर विचार करना और नियमावली में समुचित संशोधन करना ताकि अधिवर्षिता के नियम, न कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के नियम के नाम में, बनाया जा सकें, राज्य का काम है।

9. समुचित पीठ के समक्ष इसे प्रस्तुत करने के लिए समुचित आदेश के लिए मामला मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए।

10. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता पीठ के लिए पेपर बुक दाखिल कर सकते हैं।

---

ekuuh; vkj vkjñ çlkn] U;k;efr

आर० सी० महाजन एवं अन्य

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं एक अन्य

Cr. Misc. No. 5298 of 1999(R). Decided on 5th January, 2012.

C-1 केस सं॰ 192 वर्ष 1998 में तत्कालीन मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 7.4.1998 के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 406/34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—न्यास का दांडिक भंग–संज्ञान–यदि किसी व्यक्ति को–बेईमानी से संपत्ति न्यस्त की जाती है अथवा वह उस संपत्ति को अपने उपयोग के लिए गैर-ईमानदार रूप से परिवर्तित करता है, वह भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के अधीन अभियोजित किए जाने का दायी है–याचीगण को संपत्ति न्यस्त कभी नहीं किया गया था और न ही यह परिवादी का मामला है कि याचीगण द्वारा संपत्ति बेईमानी से दुर्विनियोजित की गयी थी–बिलेट्स को लोहे की छड़ों में परिवर्तित करने के लिए पक्षों के बीच करार–लोहे की छड़ों में इसको संपरिवर्तित करने के लिए परिवादी-कंपनी द्वारा बिलेट्स की आपूर्ति की गयी थी–यदि न्यास का कोई दांडिक भंग बनता भी है, यह अभियुक्त कंपनी के विरुद्ध और न कि याचीगण के विरुद्ध बनता है–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 6, 8 से 12)

निर्णयज विधि.–(2009) 6 SCC 475—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar, For the Petitioners; Mr. Krishna Shankar, For the State; None, For the O.P. No.2.

न्यायालय द्वारा.–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह आवेदन C 1 केस सं॰ 192 वर्ष 1998 में तत्कालीन मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 7.4.1998 के उस आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन इन याचीगण सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 सह-पठित धारा 34 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है।

3. यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने इंडियन स्टील एण्ड वायर प्रोड्क्टस लि॰, जमशेदपुर के विरुद्ध और इन याचीगण, जो मुख्य प्रबंधक (संकर्म), उपाध्यक्ष (कॉरपोरेट) और वरीय प्रबंधक (विपणन एवं विक्रय) हैं, के विरुद्ध भी और उक्त कंपनी के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक के विरुद्ध भी उसमें यह अभिकथन करते हुए परिवाद दाखिल किया कि परिवादी-कंपनी ने इंडियन स्टील एण्ड वायर प्रोडक्ट्स लि॰, जमशेदपुर को परिवादी-कंपनी द्वारा परिवर्तन प्रभारों के भुगतान पर बिलेट्स को लोहे की छड़ों में परिवर्तित करने के लिए संपरिवर्तन एजेन्ट के रूप में नियुक्त किया। परिवादी-कंपनी ने इसको लोहे की छड़ों में संपरिवर्तित करने के लिए बिलेट्स की आपूर्ति करना शुरु किया और दिनांक 1.4.1997 तक इसने 9,500.958 मीट्रिक टनों की आपूर्ति की। तत्पश्चात् अप्रैल-मई, 1997 से दिनांक 21.2.1998 तक परिवादी-कंपनी द्वारा आपूर्ति की गयी मात्रा 26,548.230 मीट्रिक टन थी किंतु दिनांक 1.4.1997 तक आपूर्ति किए गए बिलेट्स में से संपरिवर्तित लोहे की छड़ों की मात्रा केवल 1,494.966 मीट्रिक टन की सीमा तक थी। तत्पश्चात् अभियुक्त कंपनी ने तैयार लोहे की छड़ों की आपूर्ति करना बंद कर दिया। इस प्रकार, परिवादी-कंपनी द्वारा अभिकथित किया गया है कि कुल बिलेट्स जिनकी आपूर्ति अभियुक्त कंपनी को की गयी थी, 29,255.55 मीट्रिक टनों की सीमा तक थी किंतु निरीक्षण की तिथि पर बिलेट्स एवं लोहे की छड़ों का कुल स्टॉक क्रमशः 5,778.407 मीट्रिक टन और 5,054.052 मीट्रिक टन पाया गया था और इसके अतिरिक्त 350.910 मीट्रिक टन और 6,330 मीट्रिक टन के लोहे की छड़ों की आपूर्ति दिनांक 21.2.1998 अर्थात उस तिथि जिस पर सत्यापन किया गया था के बाद की गयी थी और इस प्रकार अभियुक्त कंपनी ने 12,06,41,632.03/- रुपया मूल्य के 10,475.219 मीट्रिक टनों की सीमा तक के बिलेट्स/लोहे की छड़ों का दुर्विनियोग किया।

4. ऐसे परिवाद पर, न केवल इंडियन स्टील एण्ड वायर प्रोड्क्टस लि॰, जमशेदपुर के विरुद्ध बल्कि इन याचीगण जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर कंपनी के मुख्य प्रबंधक (संकर्म), उपाध्यक्ष (कॉरपोरेट) और वरीय प्रबंधक (विपणन एवं विक्रय) थे, के विरुद्ध भी दिनांक 7.4.1998 को अपराध का संज्ञान लिया गया था।

उस आदेश से व्यथित होकर इस आवेदन को दाखिल किया गया है।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार निवेदन करते हैं कि परिवाद याचिका में किए गए संपूर्ण अभिकथनों को सत्य मान लेने पर भी कोई दांडिक अपराध नहीं बनता है बल्कि यह सिविल दायित्व और न कि दांडिक दायित्व का मामला है और केवल इस आधार पर संज्ञान लेने वाला आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

6. यह निवेदन भी किया गया था कि बिलेट्स को लोहे की छड़ों में संपरिवर्तित करने के लिए परिवादी–कंपनी और इंडियन स्टील एण्ड वायर प्रोड्क्टस लि॰ के बीच करार था किंतु परिवादी के मामले के अनुसार इंडियन स्टील एण्ड वायर प्रोड्क्टस लि॰ ने बिलेट्स की आपूर्ति किए जाने के बावजूद इसके संपरिवर्तन के बाद तत्सम लोहे की छड़ों की आपूर्ति नहीं की थी और इसलिए केवल कंपनी और न कि ये याचीगण दायी हैं और इसके अतिरिक्त इन याचीगण को अभिकथित अपराध करने में किसी प्रत्यक्ष कृत्य को करते हुए अभिकथित कभी नहीं किया गया है और उसके बावजूद अवर न्यायालय ने इन याचीगण के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया है जो बिल्कुल अवैध है और अपास्त किए जाने योग्य है।

7. याचीगण की ओर से किए गए निवेदन के संदर्भ में भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के प्रावधान को ध्यान में लेने की आवश्यकता है जो निम्नलिखित रूप से न्यास के दांडिक भंग के बारे में करती है:–

> *"405. **vkijkf/kd U;kl Hkax**-&tk dkb lEifÙk ;k lEifÙk ij dkb Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tku ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj ,lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fof/k l fdlh fun'k dk] ;k ,l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHkO;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k O;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; O;fDr dk ,lk djuk lgu djrk g] og ^^vkijkf/kd U;klHkax** djrk gA**"*

8. पूर्वोक्त प्रावधान के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि यदि किसी व्यक्ति को बेइमानी रूप से संपत्ति न्यस्त किया जाता है अथवा वह स्वयं अपने उपयोग के लिए बेइमानी से संपत्ति का उपयोग करता है अथवा किसी करार के उल्लंघन में संपत्ति व्ययनित करता है, वह भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अभियोजित किए जाने का दायी है।

9. वर्तमान मामले में, परिवादी का मामला यह कभी नहीं है कि इन याचीगण को संपत्ति न्यस्त किया गया है और न ही परिवादी का यह मामला है कि इन याचीगण द्वारा बेईमानी रूप से उक्त संपत्ति दुर्विनियोजित कर ली गयी थी बल्कि परिवादी का मामला यह है कि परिवादी कंपनी और इंडियन स्टील एण्ड वायर प्रोड्क्टस लि॰ जमशेदपुर के बीच हुए करार के अनुसरण में लोहे की छड़ों में इसके संपरिवर्तन के लिए बिलेट्स की आपूर्ति परिवादी कंपनी द्वारा की गयी थी और इसलिए यदि न्यास के किसी दांडिक भंग का मामला बनता भी है यह अभियुक्त–कंपनी के विरुद्ध बनता है और न कि इन याचीगण के विरुद्ध।

10. इस संबंध में मैं **केकी होरमुसजी घर्दा एवं अन्य बनाम मेहरवान रुस्तम इरानी एवं एक अन्य, (2009)6 SCC 475** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

*^^dN ekeyk d flok, Hkkjrh; nM lfgrk] 1860 fdlh 0;fDr dh vkj l fdlh çfrfufèkd nkf;Ro dk vuè;kr ugh djrh gA lfofèk d çkoèkkuk d fucèkuku lkj fofèkd dYiuk mBkdj vFkok çfrfufèkd nkf;Ro lftr dj vijkèk fd, tku dk vfHk0;Dr :i l dfFkr djuk gkxkA bl çdkj] diuh dk çcèk fun'kd vFkok fun'kdx.kk dk doy blfy, vijkèk djr g, ugh dgk tk ldrk g D;kfd o inèkkjd gA vr% gekj er e fo}ku vij e[; eVkikfyVu nMkfèkdkjh ekey d bl igy dk fopkj e fy, fcuk leu tkjh dju e lgh ugh FkA diuh d çcèk fun'kd vkj fun'kdk dk doy blfy, leu ugh djuk pkfg, D;kfd diuh d fo#) dN vfHkdFku fd, x, FkA***

11. पूर्वोक्त तथ्यों के अधीन और ऊपर निर्दिष्ट मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में, अवर न्यायालय ने इन याचीगण के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लेने में अवैधता की।

12. तद्नुसार, C 1 सं॰ 192 वर्ष 1998 में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 7.4.1998 के आदेश, जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धारा 406/34 के अधीन इन याचीगण के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया है, सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

मेसर्स होटल वुडलैंड

cuke

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

L.P.A. No. 274 of 2004. Decided on 5th January, 2012.

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी) सं॰ 1467 वर्ष 2004 में पारित दिनांक 18.3.2004 के निर्णय के विरुद्ध।

विद्युत अधिनियम, 2003—धारा 126—टैरिफ अधिसूचना 1993 का खंड 16.8— बिल–एक फेज से तीन फेज में भार का संपरिवर्तन–मीटर नहीं बदला गया–अपीलार्थी ने काफी पहले त्रुटिपूर्ण मीटर के बारे में प्रत्यर्थीगण को सूचित किया था–उपभोक्ता फोरम द्वारा उपभोग प्रभार के निर्धारण के बारे में विवाद्यक अपीलार्थी के पक्ष में विनिश्चित किया गया–यदि बिल, जैसा दिया गया है, टैरिफ अधिसूचना 1993 के खंड 16.8 के अनुरुप नहीं पाया जाता है, बोर्ड करेन्ट बिल जारी कर सकता है और उस स्थिति में अपीलार्थी विद्युत प्रभारों के विलंबित भुगतान के कारण किसी भुगतान को करने का दायी नहीं होगा–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 3, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. N.K. Pasari, For the Appellant; Mr. Ajit Kumar, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1467/2004 में पारित दिनांक 18.3.2004 के आदेश से व्यथित है क्योंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपभोक्ता मामला सं॰ 21/2003 में उपभोक्ता

शिकायत प्रतितोष फोरम, झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड, राँची द्वारा पारित आदेश को मान्य ठहराया जिसके द्वारा उपभोक्ता प्रतितोष फोरम ने 7,03,955/- रुपयों की राशि तक का बिल देते हुए विद्युत कार्यपालक अभियंता, विद्युत आपूर्ति अंचल, धनबाद द्वारा जारी दिनांक 20.1.2004 के पत्र को अभिखंडित करने से इनकार कर दिया था।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार प्रश्नगत परिसर में वर्ष 1986 में परिसर खरीदे जाने के पहले से ही विद्युत कनेक्शन विद्यमान था। वर्ष 1986 में ही अपीलार्थी ने एक फेज से तीन फेज में उक्त कनेक्शन को संपरिवर्तित करने के लिए आवेदन दिया था और दिनांक 10.2.1986 को अध्यपेक्षित फीस जमा किया था। तत्पश्चात् दिनांक 12.3.1986 को मूल्यांकित खर्च निर्धारित किया गया था। उक्त निर्धारण में यह स्पष्टत: प्रकट किया गया था कि उस समय पर लागू भार 8 किलोवाट था। तद्नुसार अपीलार्थी को एक फेज से तीन फेज विद्युत कनेक्शन के संपरिवर्तन के लिए मूल्यांकित खर्च जमा करने का निर्देश दिया गया था। करार के निष्पादन के लिए रिट याची–अपीलार्थी को एक पत्र भी जारी किया गया था। किंतु जब वर्ष 1996 में अपीलार्थी ने 91,559/- रुपयों की मांग करता दिनांक 8.1.1996 का बिल प्राप्त किया, उसने इस मांग पर दिनांक 27.1.1996 के पत्र के तहत आपत्ति की और निवेदन किया कि कनेक्टेड भार 18 किलोवाट के रूप में दर्शाया गया है जो वास्तविक कनेक्टेड भार से आधिक है। विद्युत बोर्ड को यह भी सूचित किया गया था कि मीटर काफी पहले से काम नहीं कर रहा था और अपीलार्थी को अत्यधिक बिल दिया गया था। अपीलार्थी ने पुन: दिनांक 1.3.1996 को इस प्रभाव का पत्र दिया। किंतु, स्वीकृत रूप से दिनांक 16 मार्च, 2000 तक मीटर बदला नहीं गया था और मीटर दिनांक 16 मार्च, 2000 को बदला गया था जो तथ्य सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2970/1999R में पारित दिनांक 30.1.2001 के आदेश में इस न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया था। उक्त सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2970/1999R में, जिसे दिनांक 30.1.2001 को निपटाया गया था, प्रत्यर्थीगण को नया बिल रिट याची–अपीलार्थी को देने का निर्देश जारी किया था। दिनांक 30.1.2001 के आदेश के अनुसरण में नया बिल जारी किया गया था। अत: याची सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2064/2001 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया जिसे दिनांक 9.1.2003 को निपटाया गया था और मामला उपभोक्ता शिकायत प्रतितोष फोरम, झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड को भेज दिया गया था। उक्त उपभोक्ता फोरम ने अपीलार्थी का प्रतिवाद स्वीकार किया था कि त्रुटिपूर्ण मीटर के मामले में विद्युत उपभोग टैरिफ अधिसूचना, 1993 के खंड 16.8 में बनाए गए प्रावधान के अनुसार प्रभारित किया जा सकता है। किंतु जहाँ तक अपीलार्थी के परिसर में कनेक्टेड भार के आधार पर दावा किए गए अन्य अनुतोष का संबंध है, उसे अस्वीकार कर दिया गया थाा। अत: अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1467/2004 दाखिल किया था जिसे दिनांक 18 मार्च, 2004 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

3. उक्त निर्दिष्ट आदेशों से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी के परिसर में कनेक्टेड भार के संबंध में विवाद उठाया गया था जबकि स्वयं प्रत्यर्थीगण का स्वीकृत मामला यह है कि अपीलार्थी ने वर्ष 1996 में त्रुटिपूर्ण मीटर के बारे में प्रत्यर्थीगण को सूचित किया था। जैसा उपभोक्ता शिकायत प्रतितोष फोरम द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, टैरिफ अधिसूचना 1993 का खंड 16.8 विद्युत उपभोग प्रभारित करने के लिए अपीलार्थी के मामले पर प्रयोज्य बन गया क्योंकि अपीलार्थी के परिसर में मीटर त्रुटिपूर्ण था। अत:, इस मामले में अंतर्ग्रस्त एकमात्र प्रश्न वस्तुत: यह था कि क्या विद्युत बोर्ड कनेक्टेड भार के आधार पर भी विद्युत उपभोग प्रभारित कर सकता था अथवा यह केवल औसत प्रभार के आधार पर विद्युत उपभोग प्रभारित कर सकता था। यह विधिक विवाद्यक यद्यपि अपीलार्थी के पक्ष में उपभोक्ता शिकायत प्रतितोष फोरम द्वारा विनिश्चित किया गया है, फिर भी यह पता करने के लिए प्रश्नगत बिल का परीक्षण नहीं

किया गया है कि क्या विद्युत बोर्ड द्वारा बाद में दिया गया बिल टैरिफ अधिसूचना, 1993 के खंड 16.8 के अनुरूप है।

4. हमने अपीलार्थी द्वारा दिनांक 20.1.2004 को प्रत्यर्थीगण को भेजी गयी संसूचना, परिशिष्ट–20, का भी परिशीलन किया है जिसमें उल्लिखित किया गया है कि खंड 16.8 के निबंधनानुसार मार्च, 1995 से फरवरी, 2000 तक के बिलों को सही किया गया है किंतु इस संसूचना के पैरा 2 में उल्लिखित किया गया है कि 6,711/- रुपया संशोधित (विलोपित) करने के बाद 7,03,970/- रुपयों की मांग भेजी गयी है। अत:, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी की शिकायत केवल उपभोक्ता शिकायत प्रतितोष फोरम द्वारा जारी निर्देशों का अनुसरण नहीं किए जाने के संबंध में है। परिशिष्टों 20 और 21 से यह पता करना मुश्किल है कि क्या टैरिफ अधिसूचना, 1993 के खंड 16.8 के मुताबिक बिल दिया गया था। किंतु, यह स्वीकृत अवस्था है कि दिनांक 16.3.2000 को अपीलार्थी के परिसर में नया मीटर लगाया गया था। दिनांक 16.3.2000 के बाद अपीलार्थी मीटर में दर्ज उपभोग के अनुसार विद्युत उपभोग प्रभारों का भुगतान करने का दायी था।

5. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में हम प्रत्यर्थी–विद्युत बोर्ड को पूर्ण विवरण देने का निर्देश देते हैं कि किस प्रकार मार्च, 1995 से फरवरी, 2000 तक की अवधि के लिए बिल दिया गया था और यह किस प्रकार टैरिफ अधिसूचना, 1993 के खण्ड 16.8 के अनुरुप है, यदि दिनांक 20.1.2004 के संसूचना के माध्यम से दिया गया बिल, टैरिफ अधिसूचना, 1993 के खण्ड 16.8 के अनुरूप नहीं पाया जाता है, बोर्ड करेन्ट बिल जारी कर सकता है, और उस स्थिति में, अपीलार्थी विद्युत प्रभारों के विलंबित भुगतान के कारण कोई भुगतान करने का दायी नहीं होगा। तथा, यदि बिल टैरिफ अधिसूचना 1993 के खण्ड 16.8 के अनुरूप पाए जाते हैं, अपीलार्थी विलंबित भुगतान प्रभारों के भुगतान का दायी होगा।

6. जहाँ तक नियत प्रभारों का संबंध है, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय के समक्ष अथवा आक्षेपित आदेशों से यह नहीं पाया गया है कि दिनांक 8.3.2003 के निरीक्षण रिपोर्ट के पहले का कोई निरीक्षण रिपोर्ट नहीं है। अत:, यह संप्रेक्षित किया जाता है कि नियत प्रभारों को उद्ग्रहित करने के लिए बोर्ड प्रासंगिक समय पर अपीलार्थी के कनेक्टेड भार का पता लगाने के लिए स्वयं अपने अभिलेखों को दे सकता है और यदि उस कनेक्टेड भार के अनुसार अपीलार्थी का दायित्व पाया जाता है, प्रत्यर्थीगण तद्नुसार बिल बना सकते हैं। तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; ç'kkUr dekj] U;k;efr

दीपक कुमार ठाकुर (2875 में)

नीरज कुमार हाजरा (6681 में)

नवल कुमार (2526 में)

देवेन्द्र पासवान (2547 में)

प्रेम चंद्र सिन्हा (2477 में)

मृत्युंजय देव एवं अन्य (7508 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

W.P. (S) Nos. 2875, 6681, 2526, 2547, 2477 of 2005 with 7508 of 2006. Decided on 21st December, 2012.

सेवा विधि–नियुक्ति–केवल इसलिए किसी उम्मीदवार को नियुक्ति पाने का अधिकार नहीं है कि उसका नाम पैनल में स्थान पाता है–किंतु यदि राज्य उस पैनल के माध्यम से रिक्ति भरने जा रहा है, तब राज्य उम्मीदवारों की तुलनात्मक मेधा का सम्मान करने के लिए बाध्य है और भेदभाव करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है–वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से रिक्ति अभी भी विद्यमान है–इस प्रकार, जब प्रत्यर्थीगण ने उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में वर्ष 2004 में तैयार पैनल के आधार पर नियुक्ति की, तब समस्त रिक्तियों को भरना उन पर बाध्यकारी था और उन्हें अन्य को, जिनके नाम उसी पैनल में स्थान पाते हैं, समान अवसर देने से इनकार करके नियुक्ति की प्रक्रिया रोकनी नहीं चाहिए थी। (पैरा 5)

निर्णयज विधि.–1991 (3) SCC 47—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Dhananjay Kumar Dubey, Ritu Kumar, For the Petitioners; M/s Sumir Prasad, Jay Shankar Tewari, M.S. Akhtar, Arvind Kumar Mehta, Rishi Pallav, For the Respondents.

आदेश

इन रिट आवेदनों में अंतर्ग्रस्त तथ्य और विवाद्यक समरुप हैं, अत: उन्हें साथ सुना जा रहा है और इस आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. याचीगण दैनिक मजदूरी पर पाकुड़ समाहरणालय में कार्यरत थे। यह प्रतीत होता है कि याचीगण में से कुछ लोगों ने और अन्य दैनिक मजदूरों ने अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के लिए पटना उच्च न्यायालय में रिट आवेदन सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 891 वर्ष 1998 दाखिल किया। पूर्वोक्त रिट आवेदन को दिनांक 27.3.2000 को निपटाया गया था और प्रत्यर्थीगण को उनकी वरीयता के अनुसार दैनिक मजदूरों का पैनल तैयार करने का निर्देश दिया गया था। यह भी आदेशित किया गया था कि पैनल तैयार करने के बाद प्रत्यर्थीगण राज्य सरकार के परिपत्र के मुताबिक नियमित नियुक्ति के लिए कदम उठायेंगे। आगे यह प्रतीत होता है कि जब प्रत्यर्थीगण द्वारा माननीय पटना उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया, तब अवमान याचिका एम॰ जे॰ सी॰ सं॰ 35 वर्ष 2001 दाखिल किया गया था। उस अवमान आवेदन में, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण को पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। तब यह प्रतीत होता है कि वर्ष 2004 में एक अन्य अवमान आवेदन अवमान केस (सी॰) सं॰ 99 वर्ष 2004 के तहत दाखिल किया गया था जिसे दिनांक 24.6.2004 को निपटाया गया था और निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:–

fnukd 13 eb] 2004 d vkn'k d vuLj.k e foi{kh i{kdkjk dh vkj l vfrfjDr 'kiFk i= nkf[ky fd;k x;k g ftle fuEufyf[kr dFku fd, x, g%

fty e prFk ox e fu;fDr d fy, foKkiu igy gh fnukd 3 vçy] 2003 dk çdkf'kr fd;k x;k gA

vU; vkondk d Åij nfud oruHkkxh depkfj;k dk vfèkeku fuEufyf[kr rjhd l fn;k x;k g%

(i) mEehnokj] ftUgku ,d o"k rd fu;fer :i l nfud etnjh ij dke fd;k] dk nk vd fn, x, gA

(ii) Ng ekg l dk;jr mEehnokj dk ,d vd fn;kk x;k gA

(iii) mEehnokj] ftlu ,d o"k e nfud etnjh ij U;ure nl fnu dke fd;k g] dk 0.5 vd fn;k x;k gA

(iv) mEehnokj] ftUgkau foxr ikp o"kk d nkjku dN fnu dke fd;k g] dk Hkh dy nk vd fn, x, gA rnulkj] iuy r;kj vkj çdkf'kr fd;k x;k gA bl iuy l ljdkjh fu;ek vkj vun'kk d erkfcd fjfDr;k d fo#) fu;fDr dh tk,xhA tgk rd vk; f'kfFkyhdj.k dk lcèk g] bl ij ljdkjh vun'kk d erkfcd fopkj fd;k tk,xkA

(v) ;gk ;g mYy[k djuk vR;Ur çklfxd g fd ;kph u nk o"k nk ekg pkj fnu dh vofèk d fy, nfud etnjh ij dke fd;k gA Åij mfYyf[kr fu.k; d erkfcd ;kph dk nfud etnjh ij fd, x, mld dke d lcèk e vfèkeku d :i e pkj vd fn, x, g ftl ftyk LFkkiu dfefV }kjk vuekfnr iuy d Øekd 28 ij mfYyf[kr fd;k x;k gA

iuy d vfredj.k d fy, dne mBk, x, gA ljdkjh ifji= d erkfcd vkifÙk vkef=r dh x;h g ftl fnukd 23 tu] 2004 dk nkf[ky djuk FkkA vc nk ekg d Hkhrj bldk lohd{k.k fd;k tk,xk vkj vfre :i fn;k tk,xkA

bl chp] jkLVj fDy;jl d fy, çLrko vueknu d fy, fMfotuy dfe'uj] lFkky ijxuk fMfotu] nedk dk fnukd 31 eb] 2004 d i= d rgr Hktk x;k gA p;u vkj fu;fDr dh ll i.k çfØ;k vkifÙk fuiVk, tku dh frfFk (23 tykb] 2004) l yxHkx Ng ekg d Hkhrj ijk dj fy, tku dh lHkkouk gA

vufre iuy dh çfr ifjf'k"V B d :i e lyXu dh x;h g ftld fo#) vkifÙk;k exk;h x;h gA ;kph dk uke mldk vkofVr pkj vdk d vfèkeku lfgr Øekd l0 28 ij ;kph }kjk n'kk;k x;k gA

bu rF;k vkj ifjfLFkfr;k e ;g U;k;ky; oreku e foi{kh i{kdkjk d fo#) vxlj gku dk bPNd ugh g vkj mudk fnukd 31 ekp] 2005 rd iuy dk vfre :i nu] çfØ;k ijh dju vkj fu;fDr i= tkjh dju dk fun'k nrk gA

jkT; d vfèkoDrk fu;fDr çkfèkdkjh vkj foHkkx d lfpo dk bl vkn'k dk lfpr djxA

;g vkonu fuiVk;k tkrk gA

bl vkn'k dh çfr fo}ku ,l0 lh0 III dk lkih tk,A

3. इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश इस न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश में विलीन हो गया है। यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश के अनुकूल दिनांक 24.8.2004 को अंतिम पैनल प्रकाशित किया गया था। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि पूर्वोक्त तिथि पर दो पैनलों को प्रकाशित किया गया था, पहला चपरासी के लिए और दूसरा चालक के लिए। चपरासी के पैनल में डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2875 वर्ष 2005 डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6681 वर्ष 2005 और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2477 वर्ष 2005 के रिट याचीगण क्रमांक 56, 65 और 23 पर है जबकि डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 7508 वर्ष 2006 के याचीगण सं॰ 1, 2 और 4 क्रमशः क्रमांक 62, 63 और 59 पर हैं। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 7508 वर्ष 2006 का याची सं॰ 3 चालक के लिए तैयार पैनल के क्रमांक सं॰ 14 पर है। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2526 वर्ष 2005 और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2547 वर्ष 2005 के याचीगण के नाम पूर्वोक्त पैनल में नहीं हैं।

4. प्रतिशपथ पत्र में कहा गया है कि पूर्वोक्त पैनलों से कुल मिलाकर 73 व्यक्तियों को चपरासी के रूप में विभिन्न विभागों में नियुक्त किया गया था। याचीगण द्वारा कथन किया गया है कि 73 व्यक्तियों

की नियुक्ति के बाद भी चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के अनेक पद अभी भी रिक्त हैं। डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 7508 वर्ष 2006 में ऐसी रिक्तियों की सूची (परिशिष्ट-5) दी गयी है। प्रति शपथ पत्र में रिट आवेदन के पैराग्राफ 18 पर याचीगण द्वारा दिए गए पूर्वोक्त बयानों को स्वीकार किया गया है। प्रति शपथ पत्र में प्रत्यर्थीगण ने कोई कारण नहीं बताया था कि क्यों उन्होंने केवल 73 पदों को भरने के बाद नियुक्ति की प्रक्रिया रोक दी यद्यपि इस न्यायालय ने विनिर्दिष्टत: प्रत्यर्थीगण को दिनांक 31 मार्च, 2005 तक नियुक्ति की प्रक्रिया पूरी करने का निर्देश दिया था।

5. शंकर्षण दास बनाम भारत संघ, 1991(3) Supreme Court Cases पृष्ठ 47 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी उम्मीदवार को नियुक्ति पाने का अधिकार मात्र इसलिए नहीं है कि उसका नाम पैनल में स्थान पाता है किंतु यदि राज्य सरकार उस पैनल के माध्यम से रिक्ति भरने जा रही है, तब राज्य उम्मीदवारों की तुलनात्मक मेधा का सम्मान करने के लिए बाध्य है और भेदभाव करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से रिक्ति अभी भी विद्यमान है। उक्त परिस्थिति के अधीन, जब प्रत्यर्थीगण ने इस न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में वर्ष 2004 में तैयार पैनल के आधार पर नियुक्ति की, समस्त रिक्तियों को भरना उन पर बाध्यकारी है और उन्हें अन्य, जिनके नाम उसी पैनल में स्थान पाते हैं, को समान अवसर देने से इनकार करके नियुक्ति प्रक्रिया रोकनी नहीं चाहिए थी। अत:, पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई संपोषित नहीं की जा सकती है। तद्नुसार, मैं प्रत्यर्थीगण को डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2875 वर्ष 2005, डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6681 वर्ष 2005 डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2477 वर्ष 2005 और डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 7508 वर्ष 2006 के याचीगण के मामलों पर नियुक्ति के लिए विचार करने का निर्देश देता हूँ क्योंकि रिक्ति अभी भी विद्यमान है।

6. डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2526 वर्ष 2005 और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2547 वर्ष 2005 के याचीगण इस न्यायालय से किसी अनुतोष के हकदार नहीं हैं क्योंकि उनके नाम वर्ष 2004 में तैयार पैनल में स्थान नहीं पाते थे।

7. तद्नुसार, इन आवेदनों को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkkVV] U;k;efr

गणेश पांडे

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 67 of 2011. Decided on 3rd January, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 14 एवं 16—डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ में टाइपिस्ट-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर की नियुक्ति–भेदभाव–नियुक्ति आदेश किसी भी तरीके से दो पृथक और सुभिन्न वर्ग नहीं बना सकता है जब स्वयं राज्य ने समरुप व्यक्तियों को नियुक्त करने और टाइपिस्ट-सह-कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्ति देकर डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ में कार्यरत अन्य व्यक्तियों को नियुक्ति देने का निर्णय किया है–याची के परिपक्व होने का दावा किए जाने के बाद लिया गया नीतिगत निर्णय याची को समरुप व्यवहार, जैसा अन्य कर्मचारियों के साथ किया गया है, किए जाने का गैर हकदार नहीं बनाएगा–आक्षेपित आदेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Navin Kumar, For the Appellant; J.C. to Sr. S.C. II., For the Respondent-State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची–अपीलार्थी डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3451/2010 में पारित दिनांक 4 नवंबर, 2010 के आदेश के विरुद्ध व्यथित है जिसके द्वारा याची–अपीलार्थी की रिट याचिका को अस्वीकार कर दिया गया है। रिट याचिका में याची–अपीलार्थी का दावा यह है कि प्रत्यर्थीगण को उसे जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के कार्यालय में कंप्यूटर ऑपरेटर के रूप में उसको नियुक्त करने का निर्देश दिया जाए क्योंकि याची को प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 6 सितंबर, 1998 से इस काम में लगाया गया था और तब से वह नियमित रूप से काम कर रहा है। याची की रिट याचिका नयी नियमावली के प्रभाव में आने के आधार पर खारिज कर दी गयी थी जो केवल संविदात्मक नियुक्ति प्रावधानित करता है।

3. अपीलार्थी–याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि संविदात्मक आधार पर कंप्यूटर ऑपरेटरों को काम में लगाने के नए निर्णय के प्रभाव में आने से पहले दिनांक 8 सितंबर, 2006 की संसूचना के तहत संसूचित केंद्र सरकार का एक निर्णय था जिसमें निर्देश दिया गया है कि नियुक्ति, प्रोन्नति, पदस्थापना, स्थानांतरण, पेंशन, उपादान आदि से संबंधित मामलों सहित डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ के कर्मचारियों की सेवा शर्तें अपने–अपने राज्य सरकारों के अनुमोदन से डी॰ आर॰ डी॰ ए॰ के शासी निकाय द्वारा विनिश्चित और विनियमित की जाती है। दिनांक 8 सितंबर, 2006 की केंद्र सरकार की संसूचना के माध्यम से उक्त निर्णय के अनुसरण में राज्य सरकार रिट याची जैसे कर्मचारियों की नियमित नियुक्ति के लिए सहमत हुई थी और यह निर्णय दिनांक 3 मार्च, 2008 को लिया गया था जिसकी प्रति इस एल॰ पी॰ ए॰ के परिशिष्ट–8 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत की गयी थी।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार दिनांक 3 मार्च, 2008 के इस निर्णय के साथ निम्न श्रेणी लिपिक–सह–कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्ति के लिए सात व्यक्तियों के नामों की अनुशंसा की गयी थी और एक अन्य व्यक्ति, जिसका नाम राज्य द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, ने रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 451 वर्ष 2010 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया था जिसमें इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने केंद्र सरकार के पत्र पर और संविदात्मक आधार पर कंप्यूटर ऑपरेटर को नियुक्त करने की केंद्र सरकार के निर्णय के प्रभाव में आने के संबंध में राज्य के अभिवचन पर विचार करने के बाद दिनांक 19 मई, 2010 के आदेश के तहत अभिनिर्धारित किया कि सात व्यक्तियों को पहले ही टाइपिस्ट–सह–कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियमित नियुक्ति दी जा चुकी है और उस याचिका के रिट याची को छोड़ दिया गया है जो मनमानी कार्रवाई है। रिट याचिका को अनुज्ञात किया गया था जिसके विरुद्ध एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 336 वर्ष 2010 दाखिल किया गया था जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 28 नवंबर, 2011 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था, अतः याची का मामला दिनांक 19 मई, 2010 को विनिश्चित **डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3451 वर्ष 2010 (विवेकानंद बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य)** के रिट याची के मामले के समरुप है और इसलिए समरुप आदेश पारित किया जा सकता है।

5. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची लोहरदग्गा में पदस्थापित था जबकि दिनांक 3 मार्च, 2008 का निर्णय (परिशिष्ट–8) केवल देवघर, धनबाद, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, गढ़वा, सरायकेला और गोड्डा जिलों में काम पर लगाए गए कर्मचारियों के संबंध में है। यह निवेदन भी किया गया है कि **विवेकानंद (ऊपर)** के मामले में 1997 के कर्मचारियों में से केवल एक को छोड़ा गया था जबकि याची को नियमित/आमेलित करने का निर्देश दिया गया था।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है। यह विवाद में नहीं है कि अपीलार्थी–याची को उसी संविदा के अधीन और उन्हीं सेवा शर्तों के साथ नियुक्त किया गया था जो अन्य व्यक्तियों पर प्रयोज्य थे जिनकी सेवाओं को नियमित किया गया है अथवा टाइपिस्ट–सह–कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्त किया गया है और वे डी० आर० डी० ए० के अधीन कार्यरत हैं। यह निर्णय केंद्र सरकार के वर्ष 2006 के निर्णय के संबंध में स्वयं राज्य सरकार द्वारा लिया गया था और दिनांक 3 मार्च, 2008 का निर्णय जिलों के संबंध में नहीं था जैसा प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सुझाया गया है और यह प्रतीत होता है कि उक्त तर्क दिनांक 3 मार्च, 2008 के आदेश में उक्त जिलों के नामों की उपलब्धता के आधार पर किया गया है किंतु उन जिलों के नामों को केवल राज्य सरकार को भेजे गए उन जिलों के पत्रों को निर्दिष्ट करने के लिए दिया गया है। जो अनुमोदित किया गया है, वह केंद्र सरकार की दिनांक 8 सितंबर, 2006 की संसूचना है जो स्वयं परिशिष्ट–9 से प्रकट है।

7. चाहे जो भी हो, वर्ष 1997 अथवा 1998 के नियुक्ति आदेश की कोई प्रासंगिकता नहीं है और यह किसी तरीके से दो पृथक और सुभिन्न वर्ग नहीं बना सकता है जब स्वयं राज्य ने समरुप व्यक्तियों को नियुक्त करने और टाइपिस्ट–सह–कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर नियुक्ति देते हुए डी० आर० डी० ए० में कार्यरत अन्य व्यक्तियों को नियुक्ति देने का निर्णय किया है, तब रिट याची के दावा, जो परिपक्व बन गया है, के बाद लिए गए नीतिगत निर्णय के प्रभाव में आने के आधार पर उसके दावा को अस्वीकार करके याची के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता था और याची को पदग्रहण करने की अनुमति नहीं देकर प्राधिकारी रिट याची के साथ समरुप व्यवहार जैसा अन्य कर्मचारियों के साथ किया गया है, किए जाने से रिट याची को गैर हकदार नहीं बनायेंगे, अतः इस एल० पी० ए० को अनुज्ञात किया जाता है। डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 3451/2010 में पारित दिनांक 4 नवंबर, 2010 का आदेश अपास्त किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को आज के दिन से चार सप्ताह के भीतर याची को पद, जिस पर वह अभी भी कार्यरत है, पर नियमित/आमेलित करने का निर्देश दिया जाता है।

---

ekuuh; vkjh vkjh çlkn] U;k;efr

सुभाष अग्रवाल उर्फ सुभाष कुमार अग्रवाल एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 826 of 2010. Decided on 4th January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A/34 सह–पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3 एवं 4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 320—क्रूरता–दोषसिद्धि–अपराधों के शमन के लिए प्रार्थना–पक्षों ने अपने विवादों का समाधान कर लिया है और संयुक्त सुलह याचिका दाखिल किया है–ऐसे वैवाहिक मामलों में विशेष लक्षण स्पष्ट हैं–न्यायालय को वैवाहिक विवादों के वास्तविक समाधान को प्रोत्साहित करना चाहिए–पक्षों को अपराध शमन करने की अनुमति दी गयी–याचीगण को आरोपों से दोषमुक्त किया गया–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 11)

निर्णयज विधि.–(1988)1 SCC 692; (2003)4 SCC 675—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajeet Sinha, For the Petitioners; A.P.P., For the State; M/s Nagmani Tiwari, For the O.P. No.2.

आदेश

आई॰ ए॰ (दांडिक) सं॰ 2284 वर्ष 2010

आई॰ ए॰ (दांडिक) सं॰ 2284 वर्ष 2010 दाखिल की गयी है जिसमें इस पुनरीक्षण आवेदन को ग्रहण करने के लिए याची को आत्मसमर्पण प्रमाणपत्र दाखिल करने से छूट देने की प्रार्थना की गयी है।

2. जब उस आवेदन को प्रस्तुत किया गया था, इस न्यायालय ने दिनांक 1.10.2010 के आदेश के तहत मामला निम्नलिखित विवाद्यक को सुलझाने के लिए खंडपीठ को निर्दिष्ट किया गया था:–

D;k tc nkuk i{kk u U;k;ky; d ckgj viu ekey e lyg dj fy;k g vkj n0 ç0 l0 dh èkkjk 320 d vèkhu vijkèk d 'keu d fy, l;Dr lyg ;kfpdk nkf[ky fd;k g] ;kphx.k }kjk bl çdkj nkf[ky fd, x, iujh{k.k vkonu e] >kj[kM mPp U;k;ky; fu;ekoyh d iokDr fu;e 159 dh nf"V e fopkj.k U;k;ky; e ;kphx.k d vkRelei.k d fcuk mDr iujh{k.k vkonu xg.k fd, tku d fy, ikLV fd;k tk ldrk g

3. इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उक्त विवाद्यक निम्नलिखित निबंधनों में विनिश्चित किया गया था:–

fdr] lokPp U;k;ky; }kjk ikfjr iokDr fu.k;k dh nf"V e] gekjk lfopkfjr nf"Vdk.k g fd ;fn HkkO n0 l0 dh èkkjkvk 498A/34/323/406 vkj ngt çfr"kèk vfèkfu;e dh èkkjkvk 3 vkj 4 d vèkhu vijkèk d fy, nk"kfl) 0;fDr;k }kjk i{kk d chp lyg d vkèkkj ij vkRelei.k l NV nu d fy, iujh{k.k vkonu e n0 ç0 l0 dh èkkjk 482 d vèkhu ;kfpdk nkf[ky dh tkrh g] ,d ;k nlj rjhd l] nk"kflf) d igy ;k ckn] ,lh ;kfpdk fo}ku ,dy U;k;kèkh'k d le{k ikLV dh tk ldrh g vkj bl xg.k dju vFkok vU; vkn'kk dk ikfjr dju d fy,] tks U;k;ky; l;kX; vkj lefpr le>rk g] fopkj.k U;k;ky; e vkRelei.k dju l ;kphx.k dk NV nu e fo}ku ,dy U;k;kèkh'k d fy, n0 ç0 l0 dh èkkjk 320 vFkok t0 ,p0 lh0 fu;ekoyh dk fu;e 159 dkb otuk lftr ugh djxkA

4. वर्तमान मामले में, जैसा पक्षों की ओर से कथित किया गया है, कि याचीगण को दोषसिद्ध और दंडादेशित करने के बाद दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपीलीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी जिसने दोषसिद्धि और दंडादेश को अभिपुष्ट किया। तब इस पुनरीक्षण आवेदन को दाखिल किया गया था और पुनरीक्षण आवेदन के लंबित रहने के दौरान पक्षों ने मित्रतापूर्वक अपने विवादों को सुलझा लिया था जिसके द्वारा संयुक्त सुलह याचिका दाखिल की गयी थी और इस स्थिति के अधीन याचीगण को आत्मसमर्पण प्रमाण पत्र दाखिल करने से छूट दी जाती है।

अत:, उनके आत्मसमर्पण प्रमाणपत्र के बिना इस पुनरीक्षण आवेदन को ग्रहण किया जाता है।

तद्नुसार, आई॰ ए॰ (दांडिक) सं॰ 2284 वर्ष 2010 अनुज्ञात किया जाता है।

दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 826 वर्ष 2010

5. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इन दो याचीगण को पति और साला/बहनोई होने के नाते और सास को भी जिसकी मृत्यु इस पुनरीक्षण आवेदन के लंबित रहने के दौरान हो गयी थी, भारतीय दंड संहिता की धारा 498A/34 के अधीन अपराध के लिए और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन अपराध के लिए भी विचारण पर रखा गया था। इन दोनों याचीगण को और सास को भी उक्त अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था और दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने और 500/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने और व्यतिक्रम में दो माह का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था।

6. उस आदेश को अपीलीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी और अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट किया था। उन दो आदेशों से व्यथित होकर, यह पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया गया है।

7. विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पुनरीक्षण आवेदन के लंबित रहने के दौरान पक्षों ने शुभचिंतकों की सहायता से अपने विवादों का समाधान कर लिया है और इसलिए, उन्होंने संयुक्त सुलह याचिका दाखिल किया है, अत:, संयुक्त सुलह याचिका को स्वीकार किया जाए और **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य (2003)4 SCC 675** के मामले में अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में याचीगण को दोषमुक्त किया जाय।

8. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह प्रतीत होता है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के आदेश को अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट किए जाने और इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन के लंबित रहने के दौरान पक्षों ने अपने विवादों को सुलझा लिया है। अत: **माधवराव जीवाजीराव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे, (1988)1 SCC 692** के मामले में अधिकथित प्रतिपादना की दृष्टि में कार्यवाही को अभिखंडित करना समीचीन बन गया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 482 के अधीन अभिखंडन करने की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को किन्हीं विशेष लक्षणों, जो किसी मामला विशेष में प्रकट होते हैं, को यह विचार करने के लिए ध्यान में लेना होगा कि क्या अभियोजन जारी रखने की अनुमति देना समीचीन है और न्याय के हित में है जहाँ न्यायालय के मत में अंतिम दोषसिद्धि का अवसर क्षीण है और, इसलिए, किसी दांडिक कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देने से कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा होने की संभावना नहीं है, न्यायालय मामले के विशेष लक्षणों को विचार में लेते हुए कार्यवाही अभिखंडित कर सकता है।''

9. बाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में उक्त निर्णय को ध्यान में लेते हुए संप्रेक्षित किया कि ऐसे वैवाहिक मामलों में विशेष लक्षण स्पष्ट हैं और इसलिए वैवाहिक विवादों के वास्तविक समाधान को प्रोत्साहित करना न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है।

10. जैसा मैंने ऊपर कहा है कि पक्षों ने मित्रतापूर्वक अपने विवादों को सुलझा लिया है और संयुक्त सुलह याचिका दाखिल किया है और इसलिए पक्षों को अपराध का शमन करने की अनुमति दी जाती है। मामले के उस दृष्टिकोण में दोनों अवर न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों को अभिखंडित करना समीचीन बन जाता है।

11. तद्नुसार, सी॰ पी॰ केस सं॰ 1392 वर्ष 2005 (टी॰ आर॰ सं॰ 940 वर्ष 2009) में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 6.11.2009 के निर्णय और आदेश को और दांडिक अपील सं॰ 339 वर्ष 2009 में विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, पंचम, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 27.8.2010 के निर्णय और आदेश को भी एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और याचीगण को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

परिणामस्वरुप, इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; idk'k rkfr;k] e[; U;k;k/kh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

सालखन मुरमू

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 758 of 2011. Decided on 25th January, 2012.

भारत का संविधान—अनुच्छेद 14 एवं 226—छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 46—विधि के सांविधिक प्रावधानों के अभिकथित उल्लंघन में निर्गत सरकारी आदेश को चुनौती—विधि प्रभावी बनी रहती है क्योंकि उन्हें विधि के अनुसार अधिनियमित किया जाता है और विधि के क्रियान्वयन के लिए प्राधिकारों द्वारा निर्गत किसी निर्देश पर वे निर्भर नहीं होतीं, न ही ऐसे निर्देश को रोक रखने से या स्थगित कर देने से किसी भी ढ़ंग से विधि अप्रभावी बन जाएगी—न्यायालय भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन तथा दलितों के हित के संरक्षण में अति कठोर रहे हैं—प्राधिकारगण विधि के प्रावधानों के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य थे और विधि के प्रतिकूल निर्गत निर्देशों का अनुपालन करने के लिए नहीं—CNT अधिनियम के अधीन मामलों से निबटने वाले सभी पदाधिकारियों को कानून की सच्ची भावना में इसका अनुपालन करना है तथा नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण करना हैं। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Anwar, A. Hussain, For the Appellant; Mr. A.K. Sinha, For the Respondent.

आदेश

पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना।

2. रिट याची लोक सभा का भूतपूर्व सदस्य है। तथापि, विद्वान महाधिवक्ता के अनुसार, रिट याची कभी भी झारखंड राज्य के निर्वाचन क्षेत्र का एक सदस्य नहीं था और वह उड़ीसा राज्य से लोकसभा का एक सदस्य था। चाहे जो भी स्थिति हो, रिट याची ने इस घोषणा के लिए आग्रह किया है कि श्री अर्जुन मुंडा, प्रत्यर्थी सं॰ 7 द्वारा मुख्यमंत्री का पद धारण किया जाना तथा श्री मथुरा महतो, प्रत्यर्थी सं॰ 8 द्वारा राजस्व एवं भूमि सुधार मंत्री का पद धारण किया जाना पूर्णत: असंवैधानिक, अवैधानिक तथा संविधान की तीसरी अनुसूची में यथा विहित उनके द्वारा लिये गये पद की शपथ का उल्लंघन है और इस घोषणा के लिए भी आग्रह किया है कि संविधान के घोर उल्लंघन की दृष्टि में तथा विधि के प्रवर्तन को रोकने एवं निष्फल करने की दृष्टि में, पूर्वोक्त प्रत्यर्थी सं॰ 7 एवं 8 एक दिन के लिए भी पद पर बने रहने के हकदार नहीं हैं।

3. रिट याचिका में, यह कथन किया गया है कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के सदस्यों के स्वामित्व वाली जमीन के अंतरण को निर्बंधित करनेवाले छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 46(1) परन्तुक (b) के प्रावधानों को क्रियान्वित करने की प्राधिकारों से मांग करते हुए 4 दिसम्बर, 2010 को एक आदेश निर्गत किया गया था परन्तु एक सप्ताह के अवधि के ही भीतर 11 दिसम्बर, 2010 को दिनांक 4 दिसम्बर, 2010 का आदेश निलंबित करते हुए एक अन्य आदेश निर्गत किया गया था और इस प्रकार, उन्होंने विधि के प्रावधानों के विरुद्ध जाकर कार्य किया है और उन्होंने इसके द्वारा संविधान की तीसरी अनुसूची में यथा उपबंधित उनके द्वारा लिये गये पद की शपथ का भी उल्लंघन किया है। याची ने इसके पश्चात पत्र सं॰ 3752 दिनांक 11.12.2010, परिशिष्ट-2 को निरस्त करने के लिए एक अन्य आग्रह जोड़ने हेतु अनुमति की इप्सा करते हुए I.A. सं॰ 561/2011 प्रस्तुत किया जिस पत्र द्वारा दिनांक 4 दिसम्बर, 2010 के पत्र को आस्थगित में रखा गया है।

4. राज्य ने प्रति शपथ पत्र दाखिल किया है तथा निवेदन किया है कि दिनांक 4 दिसम्बर, 2010 की अधिसूचना में, अन्य पिछड़े ''वर्ग'' का संदर्भ देने के स्थान पर अन्य पिछड़ी ''जाति'' का संदर्भ दिया गया है और अतएव, भ्रम से बचने के लिए दिनांक 11 दिसम्बर, 2010 का पत्र निर्गत करके उक्त परिशिष्ट-1 दिनांक 4 दिसम्बर, 2010 को वापस ले लिया गया था। तथापि, यह निवेदन किया गया है कि जहां तक विधि के प्रवर्तन का सवाल है, विधि प्रवर्तित की जा रही है तथा विधि उपरोक्त निर्दिष्ट आदेशों के कारण प्रवर्तित नहीं की जा रही है।

5. हमारा सुविचारित मत है कि रिट याची, जो स्वयं संसद का एक सदस्य था, ने (A) एवं (B) पर वर्णित मुद्दों पर एक घोषणा की इप्सा करते हुए जोर नहीं दिया होता कि श्री अर्जुन मुंडा द्वारा मुख्यमंत्री का पद तथा श्री मथुरा महतो द्वारा राजस्व एवं भूमि सुधार मंत्री का पद धारण किया जाना पूर्णतः असंवैधानिक, वैधानिक है तथा उनके द्वारा लिये गये पद की शपथ का उल्लंघन है तथा इस उद्घोषणा के अनुतोष की इप्सा करने पर जोर नहीं दिया होता कि वे इन पदों पर बने रहने के हकदार नहीं हैं।

6. उपरोल्लिखित अभिवाकों एवं आग्रह से, हमारा यह भी सुविचारित मत है कि इस रिट याचिका को एक वास्तविक रिट याचिका माना नहीं जा सकता। विधि प्रभावी बनी रहती है क्योंकि उन्हें विधि के अनुसार अधिनियमित किया जाता है तथा वे विधि के क्रियान्वयन के लिए प्राधिकारों द्वारा निर्गत किसी निर्देश पर निर्भर नहीं होती, और न ही ऐसे निर्देश को रोक देने से या ऐसा निर्देश स्थगित कर देने से किसी भी प्रकार से विधि अप्रभावी बन जाएगी। भूमि सुधार कानूनों के क्रियान्वयन में तथा दलित तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के सदस्यों के भी हित का संरक्षण करने में न्यायालय अति कठोर रहे हैं। अतएव, यह प्रतीत होता है कि बिना किसी बात के काफी कुछ कह दिया गया है और याची का अगर कोई सद्भावनापूर्ण आशय रहा होता, इसने रिट याचिका के (A) एवं (B) पर वर्णित अनुतोष की इप्सा नहीं की होती और वह अनुतोष, जो उसने रिट याचिका के दाखिले के उपरांत इप्सित किया है, लोकहित याचिका के अलावा किसी अन्य रिट याचिका में प्रदत्त कर दिया गया होता।

7. चाहे जो भी स्थिति हो, विद्वान महाधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उन्हें कोई अभ्यापत्ति नहीं है, अगर परिशिष्ट-2 यह स्पष्ट करके अपास्त कर दिया जाता है कि दिनांक 4 दिसम्बर, 2010 के आदेश में सरकार का तात्पर्य अन्य पिछड़ा ''वर्ग'' था और अन्य पिछड़ी ''जाति'' नहीं।

8. अगर राज्य सरकार का वह पक्ष नहीं भी था और अगर दिनांक 4 दिसम्बर, 2010 का आदेश प्रभावी बना हुआ था, प्राधिकारों के लिए विधि के अनुसार कार्य करना बाध्यकारी था तथा विधि के प्रतिकूल निर्देशों का अनुपालन करना नहीं और किसी भी निर्गत अनुतोष से कोई हानि कारित नहीं होनी थी।

9. तथापि, छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम के अधीन मामलों से निबटने वाले सभी पदाधिकारियों के स्पष्टीकरण के लिए हम इसे स्पष्ट कर रहे हैं कि उन्हें विधि का इसकी सच्ची भावना के अनुसार अनुसरण करना है और नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण करना है।

10. एक उदार रवैया अपनाते हुए, हम कोई व्यय अधिरोपित किये बिना इस रिट याचिका को खारिज करते हैं, यद्यपि यह इस पर विचार करते हुए अधिरोपित की जा सकती थी कि याची संसद का एक भूतपूर्व सदस्य है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मालती देवी

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड राज्य) एवं अन्य

Cr. W.J.C. No. 184 of 1999(R). Decided on 2nd January, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में

भारत का संविधान—अनुच्छेद 21 एवं 226—न्यायिक अभिरक्षा में मृत्यु—पुलिसकर्मियों द्वारा प्रहार के कारण घातक आंतरिक उपहतियाँ—यह स्थापित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं

है कि मृतक पर पुलिस अभिरक्षा में प्रहार किया गया था–उसे अत्यन्त गंभीर हालत में अस्पताल में भरती किया गया था–शव परीक्षण रिपोर्ट दर्शाता था कि मृतक गंभीर बीमारी से पीड़ित था जिस कारण उसकी मृत्यु हो गयी थी–राज्य समय रहते उसको समुचित और पर्याप्त चिकित्सीय सुविधाओं को प्रदान करने के लिए जिम्मेदार था–राज्य सरकार को दोषी पदधारियों के विरुद्ध समुचित विभागीय कार्रवाई करना है–उसके पति की मृत्यु के लिए याची को सम्यक् रूप से मुआवजा देना राज्य सरकार की जिम्मेदारी है–पाँच लाख रुपयों का मुआवजा अधिनिर्णीत–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 18)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Chaturvedi, Amitabh Tiwari, Rajesh Kumar Singh, For the Appellants; Mr. Ram Prakash Singh, For the State.

न्यायालय द्वारा.–दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. यह रिट याचिका एक दुर्भाग्यग्रस्त विधवा द्वारा दाखिल की गयी है जिसके पति को एक दांडिक मामले के संबंध में अभिरक्षा में लिया गया था और दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में न्यायिक अभिरक्षा में उसकी मृत्यु हो गयी थी। याची ने अपने पति, जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34/120B और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए संस्थापित मूरहू पी॰ एस॰ केस सं॰ 24 वर्ष 1999 के संबंध में दिनांक 31.5.1999 को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था, की मृत्यु के लिए सम्यक मुआवजा और सरकारी नौकरी का दावा किया है। बंदी सुरेश कश्यप को दिनांक 2.6.1999 को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था और रिट याचिका में अभिकथित किया गया है कि अवधि जिसके दौरान वह पुलिस अभिरक्षा में था, उस पर पुलिस द्वारा बुरी तरह प्रहार किया गया था जिस कारण उसे आंतरिक उपहतियाँ आई थी। आगे अभिकथित किया गया है कि कारा अभिरक्षा में उसकी दशा बिगड़ गयी और जब उसके परिवार के सदस्यों को उसकी बीमारियों के बारे में पता चला, उन्होंने कारा प्राधिकारीगण से दिनांक 4.6.1999 को उसे समुचित उपचार के लिए अस्पताल भेजने को कहा। रिट आवेदन में आगे कथन किया गया है कि दिनांक 10 जून, 1999 को मृतक के भाई ने जेल के डॉक्टर को अपने भाई को राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज अस्पताल, राँची भेजने का अनुरोध किया क्योंकि उसकी दशा बहुत बिगड़ गयी थी किंतु जेल के डॉक्टर ने तीन बोतल बियर और मिक्चर घूस के रूप में मांगा और जब उसे इन वस्तुओं को दिया गया था, केवल तब उसने मरीज को दिनांक 10.6.1999 को गंभीर हालत में राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज अस्पताल, राँची भेजा जहाँ दिनांक 12.6.1999 को उपचार के क्रम में उसकी मृत्यु हो गयी।

3. रिट आवेदन के प्रकथनों में आगे गए बिना इंगित किया जा सकता है कि इस रिट आवेदन के लंबित रहने के दौरान दिनांक 14.6.1999 का पत्रांक 792 वाली जाँच रिपोर्ट प्रत्यर्थी राज्य द्वारा अभिलेख पर लायी गयी है जिसे उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची जिन्होंने घटना का जाँच संचालित किया था, दोनों द्वारा संयुक्त रूप से दाखिल किया गया था। इस रिट आवेदन में पारित दिनांक 13.7.2001 के आदेश द्वारा, उक्त रिपोर्ट को अभिलेख का भाग बनाया गया है। इस रिपोर्ट के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची जाँच करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष पर आए थे:–

(i) lj'k d';i dk fnukd 31.5.1999 dk fxj¶rkj fd;k x;k vkj ckn e dkjk vfHkj{kk e Hkt k x;k FkkA

(ii) mDr lj'k d';i dk çkFkfedh e ukfer ugh fd;k x;k Fkk vkj mldk vkijkfèkd iooÙk ugh FkkA

(iii) vkeykxk u ifyl inèkkfj;k ftUgku bl 0;fDr dk fxj¶rkj fd;k Fkk] d 0;ogkj d fo#) f'kdk;r fd;k Fkk fd o ykxk dk vuko';d :i l ij'kku dj jg g vkj ykxk d lkFk n0;ogkj dju mudh vknr FkhA

(iv) tc lj'k d';i dkjk vfHkj{kk e Fkk (fnukd 2.6.1999 l 10.6.1999 rd)] dkjk vèkh{kd vkj dkjk fpfdRlk vfèkdkjh dk vkpj.k vR;Ur vlrk"ktud FkkA

(v) tkp ij ik;k x;k Fkk fd dkjk fpfdRlk vfèkdkjh u fnukd 5.6.1999 l fnukd 10.6.1999 rd >Bh mifLFkfr cuk;h Fkh] ;|fi bl vofèk d nkjku og dr0; l vuifLFkr FkkA

(vi) fnukd 10.6.1999 dk tc lj'k d';i d ifjokj d lnL;k u cgrj bykt d fy, cnh dk vkj0 ,e0 lh0 ,p0] jkph Hktu d fy, fpfdRlk vfèkdkjh l vujkèk fd;k] MkDVj u rhu ckry fc;j vkj feDpj ekxk vkj doy ekx ifji.k fd, tku d ckn MkDVj u cnh dk vkj0 ,e0 lh0 ,p0 Hktk vkj ml le; ij dkjk vèkh{kd Hkh ogk mifLFkr Fkk (rn}kjk ftldk vFkg fd ch;j ckryk vkj feDpj dh ekx vkj vkifr dkjk vèkh{kd dh mifLFkfr e dh x;h Fkh) vkj mDr oLrvk dk fdlh lj'k Bkdj] tk dkjk dk depkjh Fkk] u bu inèkkfj;k d ncko d vèkhu Lohdkj fd;k FkkA

4. यह कहना अनावश्यक है कि इस रिपोर्ट को अग्रसर करते हुए उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक राँची द्वारा इन पदधारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने की अनुशंसा की गयी थी। राज्य पदधारियों द्वारा विभिन्न संवर्गों में प्रति शपथ पत्रों को राज्य की ओर से दाखिल किया गया है किंतु शपथपत्रों में से किसी में इस रिपोर्ट से इनकार नहीं किया गया है।

5. यह भी इंगित किया जा सकता है कि रिट आवेदन के पैराग्राफ 11 में तीन बोतल बीयर और मिक्चर मांगने के लिए डॉक्टर के विरुद्ध अभिकथन किया गया है। यह कथन करते हुए कि उत्तर दे रहे प्रत्यर्थीगण का इससे कुछ लेना-देना नहीं है, प्रतिशपथ पत्रों में राज्य प्रत्यर्थीगण द्वारा इस पैराग्राफ का उत्तर दिया गया है। प्रत्यर्थी सं॰ 5 अधीक्षक, सब-जेल, खूँटी की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र में भी इन्हीं शब्दों में उक्त बयान का उत्तर दिया गया है जो निम्नलिखित है:-

*"24. fd fjV vkonu d ijkxkQ 10, 11 vkj 12 e fn, x, c;ku d lcèk e fouerkiod fuonu vkj dFku fd;k tkrk g fd bu ijkxkQk e fd, x, çdFkuk l mÙkj n jg çR;FkZx.k dk dkb ljkdkj ugh g vkj bl çdkj ble mÙkj nu oky l çR;FkZx.k }kjk fdlh fVIi.kh dh vko';drk ugh gA***

6. कारा अधीक्षक द्वारा दिया गया यह उत्तर स्पष्टत: उपायुक्त और वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची के संयुक्त रिपोर्ट के विरोध में है जिन्होंने जाँच पर पाया था कि ये सारी चीजें कारा अधीक्षक की उपस्थिति में हुई थी।

7. आगे यह भी इंगित किया जा सकता है कि यद्यपि अपने प्रति शपथ पत्रों में राज्य पदधारियों ने पुलिस अभिरक्षा के दौरान बंदी पर किसी प्रहार के अभिकथन से पूरी तरह इनकार किया है और इस अभिकथन से इनकार करने के लिए उन्होंने चिकित्सा अधिकारी की रिपोर्ट और मृतक का शव परीक्षण रिपोर्ट भी अभिलेख पर लाया है, ऐसा एक रिपोर्ट दिनांक 3.5.2000 का है जिसे आर॰ एम॰ सी॰ एच॰

के मेडिसिन के एसोसिएट प्रोफेसर, राँची द्वारा दाखिल किया गया है और प्रत्यर्थी सं॰ 2 की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र के साथ परिशिष्ट-R-2A के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। यह रिपोर्ट दर्शाता है कि 35 वर्षीय मरीज सुरेश कश्यप खूँटी जेल से भेजा गया था और दिनांक 10.6.1999 को सायं 4 बजे अत्यन्त गंभीर हालत में पुलिस द्वारा लाया गया था और उसने शिकायत किया कि वह अपने भरती किए किए जाने के पहले विगत दस दिन से उच्च ताप, हेमेटेरिया (पेशाब में खून) और रक्त मिश्रित पाखाने के साथ लूज मोशन से पीड़ित था। इतिहास के मुताबिक मरीज शराबी भी था। उसका उपचार तुरन्त शुरु किया गया था परन्तु चूँकि मरीज एक्यूट रेनल फेलयर से पीड़ित था और अस्पताल में समस्त जीवन रक्षक उपायों के बावजूद उसे बचाया नहीं जा सका था और दिनांक 12.6.1999 को मरीज की मृत्यु हो गयी थी। प्रत्यर्थी राज्य द्वारा शव परीक्षण रिपोर्ट को भी अभिलेख पर लाया गया है जो परिशिष्ट R-2/C पर है जो दर्शाता है कि मृत शरीर पर कोई आंतरिक अथवा बाह्य मेकेनिकल उपहति नहीं थी किंतु आंतरिक अंग में मवाद उपस्थित था और मृत्यु किडनी, फेफड़ा, प्लीहा एवं ब्रेन के बीमारी के कारण हुई थी।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह ऐसा मामला है जिसमें याची के पति पर निर्ममतापूर्वक प्रहार किया गया था और पुलिस द्वारा उसे थर्ड डिग्री के अध्यधीन किया गया था जिस कारण जेल में उसकी दशा बिगड़ गयी थी तथा कारा प्राधिकारीगण द्वारा उसका समुचित इलाज नहीं कराया गया था बल्कि याची के पति की दशा बिगड़ने के बाद ही इलाज के लिए उसे अस्पताल भेजा गया था और वह भी घूस में तीन बोतल बीयर और मिक्चर लेने के बाद। तद्नुसार, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह ऐसा मामला है जिसमें राज्य समुचित मुआवजा और याची को अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान करने के दायित्व से बच नहीं सकता है।

9. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों से प्रकट होगा कि पुलिस अभिरक्षा के दौरान याची के पति पर प्रहार करने का अभिकथन बिल्कुल झूठा है, क्योंकि मृतक के शरीर पर कोई आंतरिक अथवा बाह्य यांत्रिक उपहति नहीं पायी गयी थी। राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि राज्य पदधारियों के विरुद्ध यह झूठा अभिकथन केवल अनुचित सहानुभूति पाने और धनीय मुआवजा तथा सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए किया गया है जिसकी याची बिल्कुल हकदार नहीं है। निवेदन किया गया है कि बंदी जब वह अभिरक्षा में था भला-चंगा था जैसा दंडाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए सह-बंदियों के बयानों से प्रकट होगा जिन्हें परिशिष्टों के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि केवल दिनांक 8.6.1999 को याची का पति कारा में बीमार हो गया और कारा चिकित्सक द्वारा उसको उचित दवाइयाँ दी गयी थी जैसा कारा अभिलेख से प्रकट है और जब उसकी हालत बिगड़ गयी, उसे समुचित इलाज के लिए अस्पताल भेजा गया था और अस्पताल में उपचार के दौरान बीमारियों के कारण मरीज की मृत्यु हो गयी। तद्नुसार, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह रिट आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

10. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि यद्यपि इस तथ्य को स्थापित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि पुलिस अभिरक्षा में मृतक पर प्रहार किया गया था, किंतु तथ्य बना रहता है कि स्वयं राज्य पदधारियों द्वारा अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों से प्रकट है कि मृतक गंभीर रूप से बीमार था जब वह अभिरक्षा में था। परिशिष्ट

R-2/A स्पष्टत: दर्शाता है कि दिनांक 10.6.1999 को जब बंदी अस्पताल लाया गया था, वह अत्यन्त गंभीर हालत में था और विगत दस दिनों से उसके पेशाब तथा पाखाना में खून आ रहा था। अत:, इस दस्तावेज के आधार पर प्रकट है कि प्रत्यर्थी राज्य के इस दावे पर कि मरीज कारा अभिरक्षा में भला–चंगा था और केवल दिनांक 8.6.1999 को बीमार हुआ जब उसे कारा में चिकित्सीय मदद दिया गया था, पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, शव परीक्षण रिपोर्ट, जिसे भी अभिलेख पर लाया गया था, स्पष्टत: दर्शाता है कि मृतक गंभीर बीमारियों से पीड़ित था जिस कारण उसकी मृत्यु हो गयी। यदि ऐसी गंभीर बीमारियों के साथ बंदी को अभिरक्षा में लिया गया था, स्पष्टत: उसको समय पर समुचित और पर्याप्त चिकित्सा सुविधा प्रदान करना राज्य का उत्तरदायित्व था।

11. इसके अतिरिक्त, याची का अभिकथन कि जब उसके पति की हालत बिगड़ गयी, कारा चिकित्सक द्वारा घूस के रूप में तीन बोतल बीयर और मिक्चर स्वीकार करने के बाद अस्पताल भेजा गया था, उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची के संयुक्त जाँच रिपोर्ट द्वारा पूर्णत: संपुष्ट किया गया है जिसे स्वयं राज्य पदधारियों द्वारा अभिलेख पर लाया गया है। किसी राज्य पदधारी द्वारा इस रिपोर्ट का उत्तर नहीं दिया गया है और राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने भी असहाय महसूस किया जब तर्क के दौरान उनका सामना इस रिपोर्ट के साथ करवाया गया था।

12. यद्यपि उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची का संयुक्त जाँच रिपोर्ट स्पष्टत: दर्शाता है कि घूस के रूप में बीयर बोतल और मिक्चर स्वीकार करने का अभिकथन जाँच पर सत्य पाया गया था और कारा अधीक्षक की उपस्थिति में इन्हें मांगा और स्वीकार किया गया था, परन्तु कारा अधीक्षक जिन्होंने यह कथन करते हुए कि इससे उनका सरोकार नहीं था, बयान से इनकार करते हुए अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है। यह कहना अनावश्यक है कि कारा अधीक्षक का यह बयान स्वीकार नहीं किया जा सकता है और उसे ऐसे कृत्य और लोप, जिसे रिपोर्ट के मुताबिक उसकी उपस्थिति में कारा में किया गया था, के लिए जिम्मेदार अभिनिर्धारित करना ही होगा।

13. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि भले ही याची अपना मामला स्थापित करने में सक्षम नहीं हुई है कि पुलिस अभिरक्षा में उसके पति पर बुरी तरह प्रहार किया गया था, कारा अभिरक्षा में याची के पति की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु की जिम्मेदारी से बचा नहीं सकता है क्योंकि याची के पति, जब वह कारा अभिरक्षा में था, को समयानुसार और पर्याप्त चिकित्सीय मदद देने में राज्य पदधारियों की ओर से गंभीर लोप और कृत्य थे। अभिकथन, जिन्हें उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक द्वारा सत्य पाया गया है, आघातपूर्ण है और मानवीय अंतरात्मा को झकझोरने के लिए पर्याप्त हैं।

14. पूर्वोक्त कारणों से, यद्यपि दोषी पदधारियों के विरुद्ध समुचित विभागीय कार्रवाई करना राज्य सरकार का काम है किंतु पूर्वोक्त परिस्थितियों में उसके पति की मृत्यु के लिए याची को सम्यक रूप से क्षतिपूर्ति करना भी राज्य सरकार की जिम्मेदारी है। इस तथ्य को विचार में लेते हुए कि याची के पति की मृत्यु वर्ष 1999 में ही हो गयी थी और उपायुक्त, राँची और वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची के स्वीकृत

रिपोर्ट की दृष्टि में याची को युक्तियुक्त समय के भीतर राज्य सरकार द्वारा पर्याप्त मुआवजा प्रदान किया जाना चाहिए था, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आज के दिन पर विलंबित भुगतान के लिए ब्याज की राशि के साथ 5,00,000/- (पाँच लाख) रुपयों का मुआवजा वर्ष 1999 के प्राइस इंडेक्स को विचार में लेते हुए पर्याप्त मुआवजा होगा।

15. जहाँ तक अनुकंपा पर नियुक्ति के याची के दावे का संबंध है, इस प्रार्थना पर रिट अधिकारिता में विचार नहीं किया जा सकता है और राज्य सरकार को इस पर विधि के अनुरुप, यदि अनुज्ञेय है, विचार करने की छूट होगी।

16. यह भी स्पष्ट किया जाता है कि दोषी पदधारियों पर जिम्मेदारी नियत करने और विधि के अनुरुप उनसे मुआवजा की राशि वसूल करने की छूट राज्य सरकार को होगी जो उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही, यदि कोई हो, में किसी दंड के अतिरिक्त हो सकती है।

17. तद्नुसार, राज्य सरकार को इस आदेश की संसूचना की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर सकारात्मक रूप से याची को 5,00,000/ (पाँच लाख) रुपयों के मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर मुआवजा की राशि पर प्रतिवर्ष 10% की दर से दाण्डिक ब्याज तब तक लगेगा जब तक वास्तविक रूप से भुगतान नहीं किया जाता है।

18. तद्नुसार, उक्त निर्देशों के साथ यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ç'kkUr dekj] U;k;efr

श्रीमती किरण देवी उर्फ किरण सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M.P. No. 1479 of 2005. Decided on 2nd February, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 465, 466, 467, 477, 420 एवं 34—रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908—धाराएँ 82 एवं 83— दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—कूटरचना और छल–प्राथमिकी–प्राथमिकी में ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि विक्रय विलेख के रजिस्ट्रीकरण की तिथि पर कोई कूटरचना की गयी थी–अभिकथित विक्रय विलेख में कूटरचना तब की गयी थी जब इसे अभिलेखागार में रखा गया था–रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 की प्रयोज्यता नहीं है और धारा 83 के अधीन अनुमति की आवश्यकता नहीं है–जिला उप-रजिस्ट्रार अभियोजन आरंभ करने में सक्षम है और उसे किसी अन्य प्राधिकारी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है–अभिखंडन आवेदन खारिज किया गया। (पैराएँ 7 से 15)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Kashyap, A. Shekhar, For the Petitioner; Mr. T.N. Verma, For the State; Mr. K.P. Deo, For the O.P. No.4.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.–यह आवेदन सी॰ जे॰ एम॰, देवघर के न्यायालय में लंबित देवघर पी॰ एस॰ केस सं॰ 292/05, जी॰ आर॰ सं॰ 784/05 दिनांक 20.9.2005 के संबंध में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 465/466/467/477/420 तथा 34 के अधीन प्राथमिकी और संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

2. प्राथमिकी में अभिकथित अभियोजन का मामला यह है कि किसी चंद्रभूषण ओझा, पुत्र श्री रघुनाथ ओझा, पोस्ट ऑफिस अशोक नगर, कंकड़बाग, पटना ने याची (श्रीमती किरण देवी) के पक्ष में दिनांक 5.12.1994 के विक्रय विलेख सं॰ 3415/1994 के तहत विक्रय विलेख निष्पादित किया। आगे कथन किया गया है कि किसी श्री कमल नारायण झा ने दिनांक 6.4.2005 को पूर्वोक्त विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन दिया। यह अभिकथित किया गया है कि उस समय देवघर रजिस्ट्रीकरण कार्यालय के रिकॉर्ड कीपर ने पता लगाया कि पूर्वोक्त विक्रय विलेख के प्रथम पृष्ठ का हस्तलेखन और स्याही अन्य पाँच पृष्ठों से भिन्न है। तत्पश्चात्, मामला उपायुक्त, देवघर के ध्यान में लाया गया था और उनके निर्देश पर पूर्वोक्त विक्रय विलेख के विक्रेता, क्रेता और विलेख लेखक को नोटिस जारी किया गया। यह कथन किया गया है कि विक्रेता पर नोटिस तामील नहीं किया गया था जबकि क्रेता (याची) ने स्पष्टीकरण दाखिल करने के बजाय उच्च न्यायालय में रिट आवेदन दाखिल किया जबकि विलेख लेखक, अर्थात्, सीताराम पंडित ने उक्त नोटिस के अनुसरण में अपना स्पष्टीकरण दाखिल किया। उक्त स्पष्टीकरण में उसने कथन किया कि विक्रय विलेख के प्रथम पृष्ठ पर उसका हस्तलेखन था, किंतु शेष पाँच पृष्ठ उसके हस्तलेखन में नहीं थे। उसने आगे कथन किया कि विक्रय विलेख के अंतिम पृष्ठ पर हस्ताक्षर उसका हस्ताक्षर नहीं था। तद्नुसार, जिला उप-रजिस्ट्रार, देवघर ने उपायुक्त के निर्देश पर देवघर पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी से मामला संस्थापित करने का अनुरोध किया। यह प्रतीत होता है कि जिला उप-रजिस्ट्रार की लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 20.9.2005 का देवघर पी॰ एस॰ केस सं॰ 292/05 भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 465/466/467/477/420 और 34 के अधीन संस्थापित किया गया था। इस आवेदन में पूर्वोक्त प्राथमिकी आक्षेपित की गयी है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ कश्यप द्वारा निवेदन किया गया है कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 83 के मुताबिक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजन रजिस्ट्रीकरण के महानिरीक्षक की अनुमति से आरंभ किया जा सकता है। निवेदन किया गया है कि प्राथमिकी में संगणित तथ्य रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 के अधीन अपराध गठित करते हैं। अत:, धारा 83 के मुताबिक प्राथमिकी दर्ज करने के लिए रजिस्ट्रीकरण के महानिरीक्षक की पूर्वानुमति लेना जिला उप-रजिस्ट्रार पर बाध्यकारी था। यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में ऐसी अनुमति नहीं ली गयी है, अत: प्राथमिकी दर्ज किया जाना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। आगे यह भी निवेदन किया गया है कि याची ने इस न्यायालय में डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3682/05 के तहत रिट आवेदन दाखिल किया, जिसमें इस न्यायालय की पीठ ने जिला उप-रजिस्ट्रार द्वारा जारी नोटिस के प्रवर्तन को स्थगित कर दिया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, जिला उप-रजिस्ट्रार द्वारा दर्ज प्राथमिकी इस न्यायालय के आदेश के विरुद्ध है। आगे निवेदन किया गया है कि याची का किसी सुजित कुमार झा के साथ मुकदमा चल रहा है। निवेदन किया गया है कि वर्तमान प्राथमिकी उसके कहने पर याची से प्रतिशोध लेने की दृष्टि से दाखिल की गयी थी। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि याची के विरुद्ध दांडिक अभियोजन असद्भावपूर्व है और अभिखंडित किए जाने का दायी है।

4. दूसरी ओर, अपर पी॰ पी॰ श्री टी॰ एन॰ वर्मा और विपक्षी पक्षकार सं॰ 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री के॰ पी॰ देव ने निवेदन किया कि वर्तमान मामला भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 465/466/467/477/420 और 34 के अधीन संस्थापित किया गया है कि विक्रय विलेख के रजिस्ट्रीकरण के बाद अभिलेखागार में रखे गए विक्रय विलेख में कुछ कूटरचना की गयी थी। अत:, उक्त अपराध रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 द्वारा आच्छादित नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि जिला उप-रजिस्ट्रार प्राथमिकी दर्ज करने के लिए सक्षम है क्योंकि उसके कार्यालय में कूटरचना की गयी थी। निवेदन किया गया है कि इस माननीय न्यायालय ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3682/2005 में आदेश पारित करते हुए केवल जिला उप-रजिस्ट्रार द्वारा जारी नोटिस का प्रवर्तन स्थगित किया था। इस न्यायालय ने जिला उप-रजिस्ट्रार को उसके द्वारा

संचालित आंतरिक जाँच के निष्कर्ष के आधार पर विधिक कार्रवाई करने से प्रतिषिद्ध नहीं किया है। अत: इस न्यायालय के आदेश के उल्लंघन का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है। आगे निवेदन किया गया है कि उपायुक्त, देवघर जो जिला के रजिस्ट्रार हैं, के निर्देश पर जिला उप–रजिस्ट्रार, देवघर द्वारा पूर्वोक्त प्राथमिकी दाखिल की गयी है। निवेदन किया गया है कि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि जिला उप–रजिस्ट्रार और/अथवा उपायुक्त, देवघर को सुजित कुमार झा द्वारा प्रभावित किया गया था। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि जिला उप–रजिस्ट्रार और उपायुक्त देवघर ने सुजित कुमार झा के कहने पर कृत्य किया था। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित प्राथमिकी और/अथवा पूर्वोक्त प्राथमिकी के आधार पर आरंभ की गयी दांडिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है।

5. पक्षों के परस्पर विरोधी–प्रतिवादों पर विचार करने के पहले, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धाराओं 82 और 83 को उद्धृत करना मैं समुचित समझता हूँ:–

82. ***feF;k dFku dju] feF;k udyk ;k vuoknk dk ifjnÙk dju] Nne çfr:i.k vkj vfHkçj.k d fy; 'kkfLr–****&tk dkb o;Ld%*

(a) dkb feF;k dFku] pkg og 'kiFk ij gk ;k ugh] vkj pkg og vfHkfyf[kr fd;k x;k gk ;k ugh] bl vfèkfu;e d fu"iknu e dk; djr g, fdlh inkfèkdkjh d le{k bl vfèkfu;e d vèkhu fdlh dk;okgh ;k tkp e lk'k; djrk g(;k

(b) jftLVhdj.k inkfèkdkjh dk èkkjk 19 ;k èkkjk 21 d vèkhu fdlh dk;okgh e nLrkot dh feF;k çfr ;k vuokn ;k uD'k ;k j[kkdu dh feF;k çfr lk'k; ifjnÙk djrk g(;k

(c) vU; 0;fDr dk Nne çfr:i.k djrk g vkj ,l èkj :i e bl vfèkfu;e d vèkhu fdlh dk;okgh ;k tkp e dkb nLrkot mifLFkr djrk g ;k dkb LohdkjkfDr ;k dFku djrk g ;k dkb lEeu ;k deh'ku fudyokrk g ;k dkb vU; dk; djrk g(;k

(d) bl vfèkfu;e }kjk n.Muh; dh xb fdlh ckr dk vfHkçj.k djrk g] og dkjkokl l] ftldh vofèk lkr o"k rd dh gk ldxh] ;k teku l ;k nkuk l n.Muh; gkxkA

83. ***jftLVhdj.k inkfèkdkjh vfHk;ktu çkjEHk dj ldxk–****&(1) bl vfèkfu;e d vèkhu oky ,l fdlh vijkèk d fy; vfHk;ktu] tk fd jftLVhdj.k inkfèkdkjh d Kku e mldh viuh inh; gfl;r e vk;k g] ml jftLVkj ;k mi&jftLVkj }kjk] ftld ;FkkfLFkfr {k=] fty ;k mi&fty e vijkèk fd;k x;k g] ;k egkfujh{kd dh vuKk }kjk ;k lfgr çkjEHk fd;k tk ldxkA*

*(2) bl vfèkfu;e d vèkhu n.Muh; vijkèk f}rh; dkfV d eftLVV dh 'kfDr;k l vU;u 'kfDr;k ç;kx dju oky fdlh U;k;ky; ;k inkfèkdkjh }kjk ijh{k.kh; gkxkA***

6. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि यह खंड (a), (b), (c) और (d) के अधीन वर्गीकृत अपराधों के चार प्रकारों पर विचार करती है। खंड (a) अधिनियम के अधीन कार्रवाई करने वाले किसी अधिकारी के समक्ष आशयपूर्वक झूठा बयान देने पर विचार करता है; खंड (b) रजिस्ट्री करने वाले अधिकारी को नक्शा अथवा योजना की झूठी प्रति आशयपूर्वक देने पर विचार करता है; खंड (c) अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही अथवा जाँच में दस्तावेजों के प्रतिरूपण

और झूठे प्रतिनिधित्व अथवा उपधारित नाम/चरित्र में स्वीकारोक्ति अथवा बयान पर विचार करता है और खंड (d) उक्त अपराधों के दुष्प्रेरण पर विचार करता है।

7. इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति किसी दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण के समय पर पूर्वोक्त चार खंडों में संगणित कोई कृत्य अथवा लोप करता है, तब उस मामले में उसे रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 के अधीन दंडित किया जाएगा। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 83 प्रावधानित करती है कि यदि उक्त कृत्य अथवा लोप रजिस्ट्री करने वाले अधिकारी के ध्यान में आता है, वह उस व्यक्ति को अभियोजित कर सकता है।

8. वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से, दस्तावेज दिनांक 5.12.1994 को दर्ज किया गया था। प्राथमिकी में अभिकथन नहीं है कि रजिस्ट्रीकरण की तिथि पर कोई कूटरचना की गयी थी। प्राथमिकी में अभिकथित किया गया है कि दिनांक 6.4.2005 को जब श्री कमल नारायण झा ने पूर्वोक्त विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन दिया, तब रजिस्ट्रीकरण कार्यालय, देवघर के प्रभारी रिकॉर्ड कीपर ने उक्त कूटरचना का पता लगाया। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि अभिकथित विक्रय विलेख में कूटरचना तब की गयी थी जब यह अभिलेखागार में थी। अतः, वर्तमान मामले में, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 प्रयोज्य नहीं है। परिणामस्वरुप, धारा 83 के अधीन अनुमति जैसा याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है, आवश्यक नहीं है।

9. इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में, प्राथमिकी जिला उप-रजिस्ट्रार, देवघर द्वारा दर्ज की गयी थी। धारा 83 के सादे पठन से, यह प्रतीत होता है कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन अभियोजन रजिस्ट्रीकरण महानिरीक्षक अथवा रजिस्ट्रार अथवा उप-रजिस्ट्रार जिनके क्षेत्र में अपराध किया गया है द्वारा अथवा उनकी अनुमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आरंभ किया जा सकता है।

10. जैसा ऊपर गौर किया गया है, इस मामले में, स्वयं जिला उप-रजिस्ट्रार ने प्राथमिकी दर्ज किया था। मेरे दृष्टिकोण में, धारा 83 के मुताबिक जिला उप-रजिस्ट्रार अभियोजन आरंभ करने के लिए सक्षम हैं और उस प्रयोजन से उसे किसी अन्य प्राधिकारी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।

11. धर्मदेव राय बनाम रामनगीना राय, 1972(1) SCC 460, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 83 की व्याख्या करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि **''धारा प्रतिषेधात्मक नहीं है क्योंकि यह किसी प्राईवेट व्यक्ति को अभियोजन शुरू करने से अपवर्जित नहीं करती है। ऐसे मामले में भी जहाँ अपराध किये जाने की जानकारी रजिस्ट्री करने वाले प्राधिकारी को उसकी पदीय हैसियत में होती है, यह धारा अभियोजन शुरू करने से किसी प्राईवेट व्यक्ति को प्रतिषिद्ध नहीं करती है क्योंकि धारा स्पष्टतः अपनी भाषा और आशय में अनुज्ञात्मक है। दूसरे शब्दों में, धारा सक्षम बनाने वाली है।''**

12. सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों के पूर्वोक्त निष्कर्ष की दृष्टि में प्राईवेट व्यक्ति भी किसी अन्य व्यक्ति को अभियोजित करने के लिए रजिस्ट्रीकरण महानिरीक्षक अथवा रजिस्ट्रार अथवा उप-रजिस्ट्रार की अनुमति के बिना परिवाद याचिका दाखिल कर सकता है जिसने रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 82 के अधीन अपराध किया है। इस प्रकार, याची के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के विरुद्ध है, तद्नुसार, इसे अस्वीकार किया जाता है।

13. वर्तमान मामले में, यह प्रतीत होता है कि याची जिला उप-रजिस्ट्रार द्वारा उस पर तामील की गयी नोटिस के विरुद्ध इस न्यायालय के पास आया। आवेदन का परिशिष्ट 10 दर्शाता है कि उक्त नोटिस इस न्यायालय की पीठ द्वारा डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3682/05 में दिनांक 2.8.2005 के आदेश के तहत स्थगित कर दी गयी है। उक्त आदेश में यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि इस न्यायालय ने जिला उप रजिस्ट्रार को आंतरिक जाँच करने से रोका था। उक्त परिस्थिति के अधीन याची के विद्वान अधिवक्ता का द्वितीय प्रतिवाद संपोषित नहीं किया जा सकता है।

14. जैसा ऊपर गौर किया गया है, लिखित रिपोर्ट जिला उप-रजिस्ट्रार, देवघर द्वारा दर्ज की गयी है। वर्तमान आवेदन में याची ने कथन नहीं किया है कि जिला उप-रजिस्ट्रार, देवघर को उसे दांडिक मामले में झूठा आलिप्त करने के लिए कोई निजी दुश्मनी थी। याची के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद कि चूँकि वि॰ प॰ सं॰ 4 (अर्थात् सुजित कुमार झा) के साथ उसका मुकदमा चल रहा है, अत: उसके विरुद्ध वर्तमान प्राथमिकी उसके कहने पर दर्ज की गयी है, विश्वास उत्पन्न नहीं करता है। लिखित रिपोर्ट के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि उपायुक्त ने प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश दिया था, अत: जिला उप-रजिस्ट्रार, देवघर ने उपायुक्त, देवघर के निर्देश के अनुपालन में लिखित रिपोर्ट दर्ज किया। यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि उपायुक्त, देवघर और/अथवा जिला उप-रजिस्ट्रार को पूर्वोक्त सुजित कुमार झा द्वारा मैनेज किया गया था। इस प्रकार, याची के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद निराधार है और इसलिए खारिज किए जाने का दायी है।

15. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं इस आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ, तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

मनोज कुमार भकत

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 507 of 2008. Decided on 30th January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A एवं 313—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 498A एवं 313 के अधीन अपराध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 302 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के निबंधनानुसार गैर-शमनीय है, किंतु न्याय के उद्देश्य के लिए, विशेषत: जब वैवाहिक विवाद निपटा लिया गया है, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए न्यायालय पर दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 की वर्जना नहीं होगी—वि॰ प॰ को गर्भपात कारित करने की दृष्टि से पीड़िता पर प्रहार करता कभी नहीं अभिकथित किया गया है—भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है—सुलह स्वीकार किया गया—संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की गयी। (पैराएँ 5 से 11)

निर्णयज विधि.—(2003) 4 SCC 675; **2012(1) JLJ 33 (SC)** : (2011) 4 JLJR (SC) 421—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. S.K. Ghosh, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Devesh Krishna, For the O.P. No.2.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. यह आवेदन सिदगोरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 42 वर्ष 2003 से उद्भूत होने वाले अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ II, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित एस॰ टी॰ सं॰ 312 वर्ष 2003 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए सूचक याची द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन दाखिल किया गया है।

3. मामला जिसे सूचक (इस मामले में याची) द्वारा दर्ज किया गया था यह है कि उसकी पुत्री प्रतिमा पाल का विवाह विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 जो बंगलोर में कार्यरत था के साथ हुआ था। विवाह के एक सप्ताह

बाद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अपनी पत्नी को ससुराल में छोड़कर अपने कार्यस्थान चला गया जहाँ उसकी पत्नी को फ्लैट खरीदने के लिए एक लाख रुपए की मांग को पूरा नहीं किए जाने के कारण क्रूरता के अध्यधीन किया जा रहा था। बाद में, सहमति हुई थी कि याची (सूचक) विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के खाते में नियमित रूप से धन जमा करेगा और इस वचनबद्धता पर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अपनी पत्नी को बंगलोर ले गया जहाँ उसने उस पर काम करने के लिए दबाव डालना शुरू किया जिससे उसने इनकार किया और, इसलिए, उसको प्रहार के अध्यधीन किया जा रहा था। प्रहार किए जाने के कारण गर्भपात हो गया। इस अभिकथन पर, सिदगोरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 42 वर्ष 2003 के रूप में मामला दर्ज किया गया था और अन्वेषण के बाद, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A और 313 के अधीन आरोप–पत्र दाखिल किया गया था जिस पर उक्त अपराधों का संज्ञान लिया गया था और बाद में अभियुक्तगण का विचारण किया गया था। जब विचारण काफी हद तक आगे बढ़ गया कोई नहीं बल्कि सूचक (याची) द्वारा मामले में सुलह हो जाने के आधार पर संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए आवेदन किया गया था।

4. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री देवेश कृष्ण निवेदन करते हैं कि पक्षों के बीच मामले में सुलह हो गया है और सुलह के निबंधनानुसार हिंदू विवाह अधिनियम की धाराओं 13 (1a) और 13(b) के अधीन विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की पत्नी द्वारा तलाक के लिए दाखिल आवेदन हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन संपरिवर्तित कर दिया गया था जो मामला अभी भी लंबित है और चूँकि पक्षों ने मामले में सुलह कर लिया है, अवर न्यायालय में लंबित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित किए जाने योग्य है।

5. यह कहा जाए कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A और 313 के अधीन अपराध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 में अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनानुसार गैर–शमनीय है किंतु न्याय के उद्देश्य के लिए, विशेषत: जब वैवाहिक विवाद का समाधान कर लिया गया है, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए न्यायालय पर कोई वर्जना नहीं होगी।

6. इस संबंध में **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य, (2003)4 SCC 675,** मामले को निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसमें निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

> *^^dkb lng ugh g fd Hkkjrh; nM lfgrk e èkkjk 498A vrfo"V dju oky vè;k; XX-A dh ij%LFkkiuk dk mí'; ifr }kjk vFkok ifr d lcfèk;k }kjk efgyk dh ;kruk dk jkduk gA èkkjk 498A ifr vkj mld lcfèk;k dk nM nu dh nf"V l tkMh x;h Fkh tk ngt dh xjdkuuh ekxk dk ijk dju d fy, iRuh vFkok mld lcfèk;k dk çihfMr dju d fy, iRuh dk ij'kku djr g vFkok ;kruk nr gA vfr rduhfd nf"Vdk.k vuRiknd gkxk vkj efgykvk d fgrk d fo#) vkj mI mí'; ftld fy, bl çkoèkku dk tkMk x;k Fkk d fo#) dk; djxkA bldh ijh lHkkouk g fd U;k; d mí'; dk ijk dju d fy, dk;okgh dk vfHk[kfMr dju dh vrfufgr 'kfDr dk vç;kx efgykvk dk ekeyk igy ly>ku l jkdxkA ;g Hkkjrh; nM lfgrk d vè;k; XX-A dk mí'; ugh gA***

7. हाल में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **शिजी उर्फ पप्पू और अन्य बनाम राधिका एवं एक अन्य,** (2011)4 JLJR (SC) 421 **: 2012 (1) JLJ 33 (SC)** , मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*^^oreku ekey ij vkr g, gekjk nf"Vdk.k g fd ç'uxr ?kVuk dh mRifÙk nk Hk[kMk] tk ,d&nlj d ik'o e g(rd igp l lcfèkr fookn e gA ;g ykHk d fy, fnu&ngkM Mdrh dk ekeyk ugh gA ;g olk ekeyk Fkk ft ldh mRifÙk i{kk d chp g, flfoy fookn e Fkh] ft l fookn dk] çrhr gkrk g] mud }kjk ly>k fy;k x;k gA , lk gku d pyr] vfHk;ktu tkjh j[kuk tgk ifjoknh vfHkdFkuk dk leFku dju d fy, r;kj ugh g ftUg vc mld }kjk dN ^^xyrQgeh ,o Hke** l mnHkr d rkj ij of.kr fd;k x;k g] fujFkd dk; gkxk] ft ll dkb i;ktu ijk ugh gkxkA ;g xkj dju ;kX; g fd nk vfHkdfFkr p'enhn xokg] tk ifjoknh d fudV lcèkh g] Hkh vc vfHk;ktu ekey d leFkd ugh gA vr% dk;okgh tkjh j[kuk vkj dN ugh cfYd vkipkfjdrk ek= gA , lh ifjfLFkfr;k e] fofèk dh çfØ;k dk n#i;kx jkdu d fy, vkj rn}kjk voj U;k;ky;k }kjk fujFkd dk; fd, tku dk jkdu d fy, mPp U;k;ky; }kjk n0 ç0 l0 dh èkkjk 482 dk U;k;kfpr :i l voyc fy;k tk ldrk FkkA**

8. दर्ज किया जाए कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A और 313 के अधीन अपराधों को करता अभिकथित किया गया है किंतु भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दंडनीय गर्भपात कारित करने का अपराध इन तथ्यों और परिस्थितियों में निर्मित नहीं हुआ है क्योंकि यह केवल इतना अभिकथित करता है कि याची पत्नी पर प्रहार किया करता था क्योंकि वह काम करने के प्रस्ताव से सहमत नहीं थी। यह कभी अभिकथित नहीं किया गया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने गर्भपात कारित करने की दृष्टि से अपनी पत्नी पर प्रहार किया। भारतीय दंड संहिता की धारा 312 गर्भपात कारित किया जाना परिभाषित करती है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

^xHkikr dkfjr djuk-**&tk dkb xHkorh L=h dk LoPN;k xHkikr dkfjr djxk] ;fn ,lk xHkikr ml L=h dk thou cpku d i;ktu l lnHkkoiod] dkfjr u fd;k tk,] rk og nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l] ft ldh vofèk rhu o"k rd dh gk ldxh] ;k teku l] ;k nkuk l] nf.Mr fd;k tk,xk] vkj ;fn og L=h LiUnu xHkk gk] rk og nkuk e l fdlh Hkkfr d dkjkokl l] ft ldh vofèk lkr o"k rd gk ldxh] nf.Mr fd;k tk,xk vkj teku l Hkh n.M.kh; gkxkA

9. इसके परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि जो कोई भी स्वेच्छापूर्वक महिला का गर्भपात कारित करता है, उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपराध के लिए दंडित किया जाएगा। वर्तमान मामले में, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को गर्भपात कारित करने की दृष्टि से पीड़िता पर प्रहार करता अभिकथित कभी नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों के अधीन भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है।

10. आगे, ऊपर निर्दिष्ट निर्णय की दृष्टि में पक्षों के बीच हुए सुलह को स्वीकार करने में कोई मुश्किल नहीं है।

11. तद्नुसार, सिदगोरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 42 वर्ष 2003 से उद्भूत होने वाले अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ II, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित एस॰ टी॰ सं॰ 312 वर्ष 2003 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

ओमियो रंजन जायसवाल एवं अन्य

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड राज्य) एवं अन्य

Cr. W.J.C. No. 140 of 1999(R). Decided on 9th January, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेदों 226 एवं 227 के अधीन आवेदन के मामले में।

बिहार वित्त अधिनियम, 1981—धाराएँ 49(1) (b), 49(2) (g) एवं 49 (3)(d)—विक्रय-कर रिटर्नों को दाखिल करने में वित्त अधिनियम के प्रावधान का अभिकथित उल्लंघन–जुर्माना अधिरोपित–बिहार वित्त अधिनियम की धारा 49 किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई प्रतिनिधिक दायित्व प्रावधानित नहीं करती है जिसको इस धारा के अधीन किसी अपराध को करने में कोई भूमिका नहीं बताई गई है–संपूर्ण प्राथमिकी में याचीगण की कोई भूमिका नहीं बताई गयी थी और अभिकथन विनिर्दिष्टतः केवल कंपनी के विरुद्ध हैं–याचीगण के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि वे कंपनी के निदेशक हैं जिन्होंने बिहार वित्त अधिनियम के प्रावधानों का अभिकथित रूप से उल्लंघन किया था–दांडिक अभियोजन अभिखंडित। (पैराएँ 12 से 15)

निर्णयज विधि.–1992 Supp (1) SCC 335; 1989 (4) SCC 630; 2004 (7) SCC 15; (2004) 2 SCC 731; 2004 (1) SCC 691; 2010(1) SCC 479—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Biren Poddar, Anubha Rawat Choudhary, Darshan Poddar, Piyush Poddar, For the Petitioners; M/s Srijit Choudhary, Rakesh Kr. Shahi, Sarvendra Kumar, Chandra Shekhar Singh, For the State.

एच० सी० मिश्रा, न्यायमूर्ति.–पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची सं० 1 मेसर्स शिव नारायण जायसवाल प्रा० लि० लालपुर, राँची के निदेशक है और याची सं० 2, 3 और 4 मेसर्स एलन ब्रुअरीज एण्ड डिस्टीलरीज प्रा० लि० के निदेशकगण हैं और उन्हें बिहार वित्त अधिनियम, 1981 की धाराओं 49(1) (b), 49(2)(g) और 49(3) (d) के अधीन अपराध के लिए लालपुर पी० एस० केस सं० 56 वर्ष 1999 में अभियुक्त बनाया गया है।

3. प्राथमिकी के अनुसार, उक्त कंपनियाँ अर्थात् मेसर्स शिव नारायण जायसवाल प्रा० लि० और मेसर्स एलन ब्रूअरीज एण्ड डिस्टीलरीज प्रा० लि० देशी शराब बनाने और बेचने के काम में लगी हुई थी और उन्हें अपने विक्रय-कर रिटर्नों को दाखिल करने में बिहार वित्त अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करता अभिकथित किया गया है और तद्नुसार उक्त कंपनियों के निदेशकों, जो याचीगण है, के विरुद्ध बिहार वित्त अधिनियम, 1981 की धाराओं 49 (1) (b), 49(2) (g) और 49 (3) (d) के अधीन अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। प्राथमिकी से यह प्रतीत होता है कि प्राथमिकी के साथ संलग्न 'तथ्य कथन' में वर्णित अभिकथनों के आधार पर 2,13,22,927.50 रुपयों का जुर्माना मेसर्स शिव नारायण प्रा० लि० पर अधिरोपित किया गया था और समरुप गलती के लिए दूसरी कंपनी अर्थात् मेसर्स एलन ब्रूअरीज एण्ड डिस्टीलरीज प्रा० लि० पर 5,21,94,912/- रुपयों का जुर्माना अधिरोपित किया गया था और याचीगण को कंपनी का निदेशक होने के कारण अभियुक्त बनाया गया था। यह कथन किया जा सकता है कि प्राथमिकी और इसके साथ संलग्न 'तथ्य कथन' के परिशीलन से प्रतीत होता है कि याचीगण के विरुद्ध कोई भी अभिकथन नहीं है और न ही कंपनी के निदेशक के रूप में अभिकथित अपराध करने में याचीगण की

भूमिका का उल्लेख किया गया है बल्कि प्रकट है कि दोनों मामलों में अभिकथन केवल कंपनियों के विरुद्ध है। इस प्रकार, कथन किया जा सकता है कि इन याचीगण, जिन्हें प्राथमिकी में अभियुक्त बनाया गया है, के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं है और कंपनियों जिनके विरुद्ध प्राथमिकी में अभिकथन है, को अभियुक्त नहीं बनाया गया है।

4. याचीगण ने अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए इस रिट आवेदन को दाखिल किया है कि कंपनियाँ पृथक विधिक हस्तियाँ हैं और केवल कंपनी के निदेशक होने के कारण याचीगण का कोई प्रतिनिधिक दायित्व नहीं हो सकता है और इसलिए, लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 56 वर्ष 1999 में प्राथमिकी, जहाँ तक यह याचीगण से संबंधित है, अभिखंडित कर दी जाए। जहाँ तक कंपनियों के विरुद्ध जुर्माने के अधिरोपण का संबंध है, पूरक शपथ पत्र के जरिए अभिलेख पर लाया गया है कि वाणिज्य-कर के संयुक्त आयुक्त (अपील) के समक्ष पृथक अपीलों को दाखिल करके दोनों कंपनियों द्वारा जुर्माने के अधिरोपण को चुनौती दी गयी थी जिन्होंने जुर्माने के उक्त अधिरोपण को मान्य ठहराया और दिनांक 29.3.2000 के आदेशों द्वारा अपीलों को खारिज कर दिया। वाणिज्य-कर संयुक्त आयुक्त द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध वाणिज्य-कर अधिकरण के समक्ष पृथक पुनरीक्षण याचिकाओं को दाखिल किया गया था। आरंभ में दिनांक 8.9.2009 के निर्णय के तहत अधिकरण द्वारा दंड के अधिरोपण को मान्य ठहराया गया था किंतु उक्त निर्णय के विरुद्ध, पुनर्विलोकन याचिकाओं को दाखिल किया गया था जिनमें उन पुनरीक्षण याचिकाओं आर एन॰ 1 और 2 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 7.9.2011 के निर्णय के तहत वाणिज्य कर अधिकरण द्वारा दोनों कंपनियों पर अधिरोपित जुर्मानों को अपास्त कर दिया गया था। वाणिज्य कर अधिकरण द्वारा पारित निर्णयों को परिशिष्ट 5 श्रृंखला के रूप में अभिलेख पर लाया गया है।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्राथमिकी के परिशीलन से प्रतीत होगा कि इन याचीगण की कोई भी भूमिका नहीं बतायी गयी है और यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धांत की विधिक कल्पना आकृष्ट नहीं हो सकती है और कोई व्यक्ति, जो अन्यथा किसी अपराध को करने में व्यक्तिगत रूप से अंतर्ग्रस्त नहीं है, को इसके लिए दायी नहीं बनाया जा सकता है जब तक इसे संबंधित संविधि में विनिर्दिष्टत: प्रावधानित नहीं किया गया है। निवेदन किया गया है कि बिहार वित्त अधिनियम की धारा 49 में प्रतिनिधिक दायित्व का प्रावधान नहीं है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यदि प्राथमिकी में कथित समस्त तथ्यों को पूरी तरह स्वीकार भी कर लिया जाता है, याचीगण के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है और यह सुयोग्य मामला है जिसमें प्राथमिकी अभिखंडित कर दी जाए।

6. अपने प्रतिवाद के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कं॰ लि॰ एवं एक अन्य बनाम दातार स्विचगियर लिमिटेड एवं अन्य, 2010 (10) SCC 479** के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय पर विश्वास किया है जिसमें निम्नलिखित अधिकथित किया गया है:-

> *"30. ;g io l ipfyr fofèk g fd tc dHkh çfrufèkd nkf;Ro d fl)kr dh fofèkd dYiuk vkÑ"V gkrh g vkj dkb 0;fDr] tk vU;Fkk fdlh vijkèk dk fd, tku e 0;fDrxr :i l vrxLr ugh g] dk bld fy, nk;h cuk;k tkrk g] bl lcfèkr lfofèk e fofufn"Vr% çkoèkkfur djuk gkxkA gekj er e] Hkk0 n0 l0 dh u rk èkkjk 192 vkj u gh èkkjk 199 çfrufèkd nkf;Ro dk fl)kr lfEefyr djrh g vkj blfy, ifjokn e çR;d vfHk;Dr dh Hkfedk dk fofufn"Vr% çdFku djuk ifjoknh ij ckè;dkjh gA ,l0 d0 vy?k] (2008)5 SCC 668, i"B 667, ijk 19 e fd, x, fuEufyf[kr lç{k.kk dk m)r djuk ykHknk;h g%&*

*"19. pfd] LohÑr :i l] diuh d uke l Mk¶V r;kj fd, x, Fk] vr%] Hky gh vihykFkh bldk çcèk fun'kd Fkk] ml nM lfgrk dh èkkjk 406 d vèkhu vijkèk djrk dfFkr ugh fd;k tk ldrk gA ;fn vkj tc dkb lfofèk ,l h fofèkd dYiuk dk l tu vuè;kr djrh g] ;g bld fy, fofufn"Vr% çkoèkku cukrh gA lfofèk d vèkhu vfèkdfFkr fdlh çkoèkku dh vuifLFkfr e diuh dk fun'kd vFkok depkjh Lo; diuh }kjk fd, x, fdlh vijkèk d fy, çfrfufèkd :i l nk;h vfHkfuèkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA** (tkj fn;k x;k)*

7. इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **श्यामसुन्दर एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, 1989 (4) SCC 630** के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

*"9. fdr gekjk ljkdkj nM çkoèkku d vèkhu nkfMd nkf;Ro l ugh g vkj u fd flfoy nkf;Ro lA nM çkoèkkuk dk çFker% dBkjrkiod vFk yxkuk gkxkA f}rh;r%] nkfMd fofèk e dkb çfrfufèkd nkf;Ro ugh gkrh g tc rd lfofèk ml dk viu ifjfèk e ugh yrh gA** (tkj fn;k x;k)*

8. इस संबंध में, **मोनाबेन केतनभाई शाह एवं एक अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, 2004 (7) SCC 15,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया गया है जिसमें भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया गया है।

9. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि परिशिष्ट–5 श्रृंखला के रूप में अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों से प्रतीत होगा कि जुर्माना, जिसे कंपनियों के विरुद्ध अधिरोपित किया गया था, को पुनर्विलोकन याचिकाओं में वाणिज्य–कर अधिकरण द्वारा अपास्त कर दिया गया है और तद्नुसार, कंपनियों के विरुद्ध अथवा कंपनियों के निदेशकों के विरुद्ध कोई अपराध शेष नहीं रहा और इस आधार पर भी याचीगण का अभियोजन अभिखंडित किए जाने योग्य है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **के॰ सी॰ बिल्डर्स एवं एक अन्य बनाम सहायक आयकर आयुक्त, (2004)2 SCC 731,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है।

10. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान जी॰ ए॰ ने निवेदन किया कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि आरंभिक चरण पर प्राथमिकी अभिखंडित नहीं की जानी चाहिए। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **म॰ प्र॰ राज्य बनाम अवध किशोर गुप्ता एवं अन्य, 2004 (1) SCC 691,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को साधारणत: जाँच शुरू नहीं करना चाहिए कि क्या प्रश्नगत साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं अथवा इसके युक्तियुक्त अधिमूल्यन पर अभियोग संपोषित होगा या नहीं। **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 Supp (1) SCC 335,** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है जिसमें दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन शक्ति के प्रयोग के लिए उदाहरणीय श्रेणियों का विवरण दिया गया है। इस निर्णय के पैराग्राफ 13 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संहिता की धारा 482 के अधीन न्यायालय को याचिकाओं के परिशिष्टों पर कार्रवाई नहीं करना चाहिए जिन्हें बिना जाँचे परखे और सिद्ध किए बिना साक्ष्य नहीं माना जा सकता है।

11. इस संबंध में, विद्वान जी॰ ए॰ ने **बिहार राज्य एवं एक अन्य बनाम मो॰ खलीक एवं एक अन्य, 2002 Cri L.J. 553,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया है कि जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि आरंभिक चरण पर उच्च न्यायालय को मामले के

अन्वेषण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और पुलिस को इसे पूरा करने की अनुमति देनी चाहिए। यह इंगित किया जा सकता है कि इस निर्णय का परिशीलन करने पर यह प्रकट है कि उक्त मामले में, प्राथमिकी में किए गए अभियोगों के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध अपराध बनाया गया था।

12. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामले में याचीगण के विरुद्ध एकमात्र सामग्री यह है कि याचीगण कंपनियों के निदेशक हैं जिन्होंने बिहार वित्त अधिनियम के प्रावधानों का अभिकथित रूप से उल्लंघन किया है और तद्द्वारा अधिनियम की धाराओं 49(1)(b), 49(2)(g) और 49 (3) (d) के अधीन अपराध किया था। बिहार वित्त अधिनियम की धारा 49 के कोरे परिशीलन से प्रकट है कि यह किसी व्यक्ति, जिसके विरुद्ध इस धारा के अधीन किसी अपराध को करने में कोई भूमिका नहीं बतायी गयी है, का प्रतिनिधिक दायित्व प्रावधानित नहीं करती है। संपूर्ण प्राथमिकी में याचीगण की कोई भूमिका नहीं बताई गई है तथा केवल कंपनियों के विरुद्ध विनिर्दिष्टत: अभिकथन है। इसके अतिरिक्त, याचीगण ने इस तथ्य को भी अभिलेख पर लाया है कि कंपनियों पर अधिरोपित दंड भी पुनर्विलोकन याचिकाओं सं॰ 1 और 2 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 7.9.2001 के निर्णय के तहत वाणिज्य–कर अधिकरण द्वारा अपास्त कर दिया गया है जिसे परिशिष्ट 5 श्रृंखला के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। इस प्रकार, याचीगण के विरुद्ध अपराध को विद्यमान नहीं कहा जा सकता है और इस आधार पर भी याचीगण का अभियोजन अभिखंडित किए जाने योग्य है।

13. म॰ प्र॰ राज्य बनाम अवध किशोर गुप्ता एवं अन्य (ऊपर) के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित विधि अधिकथित किया है:–

> *"8. ...... 'kfDr;k dk ç;kx djd U;k;ky; fdlh dk;okgh dk vfHk[kfMr dju e U;k;kfpr gkxk ;fn ;g ikrk g fd bldk vkjHk fd;k tkuk@tkjh j[kuk U;k;ky; dh çfØ;k d n#i;kx d rY; gkxk vFkok bu dk;okfg;k dk vfHk[kMu U;k; d mí'; dk vU;Fkk ijk djxkA tc ifjoknh }kjk dkb vijkèk çdV ugh fd;k tkrk g] U;k;ky; rF; d ç'u dk ijh{k.k dj ldrk gA tc ifjokn dk vfHk[kMu bfllr fd;k tkrk gA rc ;g fuèkkj.k dju d fy, lkexh dk ifj'khyu djuk vuK; g fd ifjoknh u D;k vfHkdfFkr fd;k g vkj D;k dkb vijkèk curk g ;fn vfHkdFkuk dk ijh rjg Lohdkj fd;k tkrk gA ¼tkj fn;k x;k½*

10. इस मामले के तथ्यों में, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि यह मामला **महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कं॰ लि॰ (ऊपर)** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा पूर्णत: आच्छादित है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह पूर्व से प्रचलित विधि है कि जहाँ कहीं भी विधिक कल्पना द्वारा प्रतिनिधिक दायित्व का सिद्धांत आकृष्ट होता है और कोई व्यक्ति जो अन्यथा अपराध किए जाने में व्यक्तिगत रूप से अंतर्ग्रस्त नहीं है, को इसके लिए दायी बनाया जाता है, इसे संबंधित संविधि में विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करना होगा। चूँकि प्राथमिकी के सादे पठन पर भी याचीगण की कोई भूमिका प्रकट नहीं होती है, उनके विरूद्ध दांडिक कार्यवाही का जारी रहना विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होता और इसके अतिरिक्त याचीगण को अनावश्यक रूप से परेशान करने के तुल्य भी होगा।

15. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, राँची सदर लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 56 वर्ष 1999 में प्राथमिकी के अनुसरण में याचीगण का अभियोजन और उक्त प्राथमिकी भी, जहाँ तक याचीगण का संबंध है, एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है। तद्नुसार, पूर्वोक्त निबंधनों में यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çkkr dekj] U;k;efr

विजय केडिया

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. Revision No. 476 of 2008. Decided on 1st February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 203—परिवाद की खारिजी–याची ने ऋण के रूप में बैंक से 10 लाख रुपये लिए तथा इसका पुनर्भुगतान करने में विफल रहा–बैंक द्वारा इकाई का संकेतात्मक कब्जा लिए जाने के बाद याची ने इंवेंट्री तैयार करने में सहयोग नहीं किया–बैंक अधिकारियों ने SARFAESI अधिनियम के प्रावधानों के अनुसरण में कृत्य किया–याची के लिए बैंक को सूचित करना बाध्यकारी था कि वह दूसरे बैंक से कर्ज लेकर उसी परिसर में एक अन्य व्यवसाय शुरू करना चाहता है–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 203 के अधीन आदेश पारित करते हुए संज्ञान लेने वाले दंडाधिकारी को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 202 के अधीन संचालित जाँच के दौरान संग्रहित की गयी समस्त सामग्री का परिशीलन करने के लिए सशक्त है–आक्षेपित आदेश अभिपुष्ट–पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. R.N. Prasad, For the Petitioner; Mr. Rajan Raj, For the Uco. Bank.

प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति.–यह पुनरीक्षण परिवाद केस सं॰ सी॰ 1357/2006 में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 1.3.2008 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 203 के अधीन परिवाद याचिका खारिज कर दिया, के विरुद्ध निर्देशित है।

2. याची (परिवादी) ने कथन किया है कि वह दो फर्मों अजय अल्वायड एंड अल्कवॉयड कंपनी और जॉनसन एंड जॉनसन रंग रसायन उद्योग का स्वामी है। उसने आगे अभिकथित किया कि पूर्वोक्त दोनों फर्मों को बुधिया कंपाउंड, राँची के भीतर पृथक भवनों में चलाया जा रहा है। परिवादी ने आगे कथन किया कि उसने अजय एल्वायड कंपनी के व्यवसाय को चलाने के लिए यूको बैंक से 10 लाख रुपया कर्ज लिया था। उसने आगे कथन किया कि वह कर्ज राशि का भुगतान नहीं कर सका था, अत: बैंक कर्ज वापस पाने के लिए कर्ज वसूली अधिकरण के पास गया। आगे कथन किया गया है कि कर्ज वसूली अधिकरण ने बैंक के पक्ष में मामला विनिश्चित किया और निर्देश दिया कि बैंक अजय एल्वायड एंड अल्कवायड कंपनी की संपत्ति और मालों को बेच कर अपना धन वसूल सकता हैं तब अभिकथित किया गया है कि कर्ज वसूली अधिकरण के पूर्वोक्ट आदेश की आड़ में अभियुक्तगण ने फर्म जॉनसन एंड जॉनसन की संपत्ति को गैर-ईमानदार रूप से हटाया और उन्हें कौड़ी के भाव अरुण कुमार बुधिया और संजय कुमार बुधिया को बेच दिया और तद्द्वारा याची को भारी नुकसान पहुँचाया।

3. यह प्रतीत होता है कि याची ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष स्वयं का परीक्षण किया और परिवाद याचिका में किए गए अपने दावे का समर्थन किया। आगे प्रतीत होता है कि विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 202 (1) के अधीन अंतर्विष्ट शक्ति के प्रयोग में मामला वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची को अन्वेषण के लिए भेजा। आगे प्रतीत होता है कि वरीय आरक्षी अधीक्षक ने हिंदीपीरी पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के माध्यम से मामले का अन्वेषण करवाया। तत्पश्चात् वरीय आरक्षी अधीक्षक ने रिपोर्ट मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय को भेजा। तत्पश्चात, याची ने अभ्यापत्ति याचिका दाखिल किया क्योंकि वह पुलिस के रिपोर्ट से संतुष्ट नहीं था। तत्पश्चात्, विद्वान अवर

न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि राष्ट्रीयकृत बैंक की संपूर्ण गतिविधियाँ विधि के अधीन की गयी थी और मामला विद्वान कर्ज वसूली अधिकरण, राँची द्वारा सुना और निपटाया गया था। इस प्रकार, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने उन बैंक अधिकारियों की कार्रवाई में कोई भी अनियमितता नहीं पाया है जिन्हें परिवादी द्वारा अभियुक्त बनाया गया था। तद्नुसार, अभियुक्तगण के विरुद्ध अग्रसर होने का पर्याप्त आधार नहीं पाते हुए उन्होंने परिवाद याचिका खारिज कर दिया।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि संज्ञान लेने के समय दंडाधिकारी को यह निष्कर्ष पाने के लिए कि अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है, परिवादी द्वारा प्रस्तुत सामग्री के परे जाने की छूट नहीं है। वर्तमान मामले में, न्यायालय ने कुछ सामग्रियों पर विचार किया है जिन्हें विचार में नहीं लिया जा सकता था। निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने एक ही परिसर में दो औद्योगिक इकाईयों को चलाने की अननुज्ञेयता के संबंध में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की आज्ञा को विचार में लिया। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि इस पुनरीक्षण में आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. निवेदन सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। यह स्वीकृत स्थिति है कि याची (परिवादी) ने यूको बैंक से 10 लाख रुपया कर्ज के रूप में लिया। परिशिष्ट–2 दर्शाता है कि याची को वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (इसके बाद SRFAESI अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 17 के अधीन दिनांक 31.3.2005 को एन० पी० ए० घोषित किया गया था। तत्पश्चात्, यूको बैंक ने एस० आर० एफ० ए० ई० एस० आई० अधिनियम की धारा 13 के प्रावधान के अनुसरण में याची को ब्याज के साथ 11,07,125/- रुपया का भुगतान करने के लिए कहा। तब प्रतीत होता है कि जब याची ने उक्त राशि का भुगतान नहीं किया, बैंक ने दिनांक 20.10.2005 को याची की इकाई का प्रतीकात्मक कब्जा ले लिया। तत्पश्चात्, संपत्ति की इन्वेंट्री तैयार करने के लिए दिनांक 21.10.2005 को परिसर पर नोटिस चिपकाया गया था। जब पूर्वोक्त नोटिस के बावजूद, याची ने इन्वेन्ट्री तैयार करने में सहयोग नहीं किया, तो बैंक इकाई की आडमानित आस्तियों की इन्वेन्ट्री तैयार करने तथा भौतिक कब्जा लेने के लिए जिला दंडाधिकारी के समक्ष SRFAESI अधिनियम की धारा 14 के अधीन गया। तब प्रतीत होता है कि तत्पश्चात् दिनांक 25.4.2006 को पुलिस की सहायता से और स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में संयंत्र, मशीनरी और पेंट के स्टॉक का इन्वेंट्री तैयार किया गया और बैंक ने इनका भौतिक कब्जा लिया। तब यह प्रतीत होता है कि याची ने कर्ज वसूली अधिकरण, राँची के समक्ष बैंक की उक्त कार्रवाई के विरुद्ध एस० ए० सं० 3/05 के तहत अपील दाखिल किया। कर्ज वसूली अधिकरण द्वारा पूर्वोक्त अपील खारिज कर दी गयी थी और बैंक को याची की कंपनी के संयंत्र, मशीनरी और स्टॉक, जिनका कब्जा दिनांक 25.4.2006 को तैयार इंवेंट्री के मुताबिक लिया गया था, को बेचने की अनुमति दी गयी थी। यह प्रतीत होता है कि कर्ज वसूली अधिकरण, राँची के पूर्वोक्त निर्देश के मुताबिक बैंक अधिकारियों ने पूर्वोक्त वस्तुओं को बेच दिया।

6. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि बैंक अधिकारियों ने SRFAESI अधिनियम के प्रावधानों के अनुसरण में कृत्य किया। इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने सही प्रकार से निष्कर्षित किया कि बैंक अधिकारियों की कार्रवाईयाँ विधि के अनुरूप थी।

7. दं० प्र० सं० की धारा 203 के अधीन आदेश पारित करते हुए संज्ञान लेने वाले दंडाधिकारी दं० प्र० सं० की धारा 202 के अधीन संचालित जाँच के दौरान संग्रहित समस्त सामग्रियों का परिशीलन करने के लिए सशक्त हैं। जैसा ऊपर गौर किया गया है, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने अन्वेषण के लिए मामला पुलिस को निर्दिष्ट किया और उक्त जाँच के दौरान पुलिस रिपोर्ट प्राप्त किया। इस प्रकार, पुलिस रिपोर्ट भी उक्त जाँच के दौरान संग्रहित सामग्रियों का भाग है। रिपोर्ट, जो पूरक शपथपत्र के साथ संलग्न है, के परिशीलन से स्पष्ट है कि भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशों के मुताबिक याची के लिए बैंक को सूचित

करना बाध्यकारी है कि वह दूसरे बैंक से कर्ज लेने के बाद उसी परिसर में एक अन्य व्यवसाय शुरु करना चाहता है। उक्त परिस्थिति के अधीन, यदि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन जाँच के दौरान पुलिस रिपोर्ट के माध्यम से मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष पूर्वोक्त सामग्रियाँ आती है, तब मेरे दृष्टिकोण में वह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 203 के अधीन आदेश पारित करते हुए ऐसे तथ्य को विचार में लेने के लिए बाध्य हैं। तद्नुसार, मैं इस संबंध में आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

8. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं इस पुनरीक्षण में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

तारा पदो महतो

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 697 of 2003. Decided on 18th January, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 60 वर्ष 2001 में अपर न्यायिक आयुक्त, फास्ट ट्रैक कोर्ट 9, राँची द्वारा पारित दिनांक 30.6.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय तथा दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—पत्नी की हत्या–आजीवन कारावास अधिनिर्णीत–झाड़ी में मृत शरीर छुपाया गया–घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है–सूचक को संदेह था कि शायद अपीलार्थी ने मृतक की हत्या की है–मृत शरीर अत्यन्त सड़ा-गला था और किसी यांत्रिक उपहति का साक्ष्य नहीं था–अपीलार्थी के विरुद्ध केवल संदेह है–अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध नहीं किया है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. H.K. Mahto, For the Appellant; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 60 वर्ष 2001 में अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करते और उसको कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-9, राँची द्वारा पारित दिनांक 30.6.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है। उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया है और सात वर्ष का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। किंतु, दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक (अ॰ सा॰ 3) ने दिनांक 15.6.2000 को प्रातः 10.30 बजे पुलिस के समक्ष इस प्रभाव का फर्दबयान दिया कि उसकी पुत्री रेणुका देवी (मृतका) का विवाह अपीलार्थी के साथ 15 वर्ष पहले हुआ था। उनकी एक संतान भी थी। उसके पुत्री की मानसिक अवस्था ठीक नहीं थी जिस कारण अपीलार्थी कहा करता था कि वह मृतका की हत्या कर देगा और दूसरा विवाह करेगा। इस पर, सूचक पक्ष ने उसको ऐसा नहीं करने का सलाह दिया और वह दूसरा विवाह कर सकता है। इस कारण से, अपीलार्थी मृतका पर प्रहार किया करता था। दिनांक 14.6.2000 को दोपहर लगभग 2 बजे सूचक को अपने पुत्र मुकुंद महतो से ज्ञात हुआ कि अपीलार्थी ने मृतका की हत्या कर दी थी

और उसका मृत शरीर झाड़ी के अंदर छुपा दिया गया था। इस पर सूचक ने पूछताछ किया और दिनांक 14.6.2006 को सायं लगभग 5 बजे जाना कि दिनांक 13.6.2000 की शाम से मृतका अपने घर में नहीं थी। सूचक और उसका मित्र शंकर लोहार (अ॰ सा॰ 1) अपीलार्थी के साथ सूचक की पुत्री को खोजने गए। मृत शरीर झाड़ी के अंदर नाला के निकट पड़ा था। मृत शरीर पर उपहतियाँ थी। जब अ॰ सा॰ 1 और सूचक के पुत्र ने अपीलार्थी से मृत शरीर उठाने को कहा, वह भाग गया। इन सारी चीजों ने अपीलार्थी के विरुद्ध गंभीर संदेह सृजित किया कि उसने दूसरा विवाह करने के लिए पत्थर जैसे हथियार से मृतका की हत्या कर दी है।

3. अभियोजन ने आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 शंकर लोहार है जिसने मृत शरीर देखा था। अ॰ सा॰ 2 जनार्दन स्वांसी है जो मृत्यु समीक्षा गवाह है। अ॰ सा॰ 3 डोमन महतो सूचक है। अ॰ सा॰ 4 (सागर महतो) सूचक के पुत्रों में से एक है। अ॰ सा॰ 5 (पूरन महतो) और अ॰ सा॰ 6 (केशोकी देवी) पक्षद्रोही गवाह हैं। अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 8 औपचारिक गवाह है।

4. अपीलार्थी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एच॰ के॰ महतो ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और मामला केवल संदेह पर आधारित है जिसके चलते अपीलार्थी लगभग 10 वर्ष से कारा में बना हुआ है।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

6. यह प्रतीत होता है कि कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। सूचक को संदेह था कि शायद अपीलार्थी ने मृतका की हत्या कर दी थी। डॉक्टर ने पाया कि मृत शरीर अत्यंत विघटित था और किसी यांत्रिक उपहति का साक्ष्य नहीं था। किंतु उसने पाया कि आंतरिक रूप से स्ट्रीमम का फ्रैक्चर था और लीवर फटने के साथ चौथे से सातवें पसली का बाइलैटेरल फ्रैक्चर था और एबडोमिनल कैविटी में खून और खून का थक्का मौजूद था। डॉक्टर के मुताबिक उक्त उपहति कड़े और भोथरे हथियार द्वारा कारित की गयी थी और मृत्यु से बीता समय 3-7 दिन था।

7. अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद हम संतुष्ट हैं कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अपीलार्थी के विरुद्ध केवल संदेह था। अभियोजन के मामले के मुताबिक भी, अपीलार्थी अ॰ सा॰ 1 के साथ अपनी पत्नी को खोजने गया था। अ॰ सा॰ 1 ने पहले शव देखा, उसके बुलाए जाने पर अपीलार्थी आया किंतु मृत शरीर उठाने से इनकार किया और भाग गया। इसके सिवाए, अपीलार्थी के विरुद्ध कुछ भी नहीं है। परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है और सत्र विचारण सं॰ 60 वर्ष 2001 में अपर न्यायिक आयुक्त, फास्ट ट्रैक कोर्ट–9, राँची द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध पारित दिनांक 30.6.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त किया जाता है। तद्नुसार, उक्त नामित अपीलार्थी को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले मे उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

प्रहलाद राय अग्रवाल

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 21 of 2007. Decided on 18th January, 2012.

दांडिक अपील सं॰ 285 वर्ष 2006 में अपर सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक कोर्ट) घाटशिला, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 9.4.2007 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

(क) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138 सह-पठित धाराएँ 118 एवं 139—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–अभियुक्त ने सिद्ध किया कि परिवादी द्वारा अभियुक्त के पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था यद्यपि परिवादी ने स्वीकृत रूप से 3,40,000/- रुपयों की राशि प्राप्त की थी–अभियुक्त धाराओं 118 तथा 139 के अधीन उपधारणा खंडित करने में सक्षम हुआ था और परिवादी को सिद्ध करना था कि उसने अभियुक्त के पक्ष में शेयरों और शेयर आवेदन धन की पर्याप्त राशि अंतरित किया था–परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा था–अपील खारिज। (पैराएँ 9 से 12)

(ख) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 139—कर्ज की उपधारणा–धारा 139 के अधीन उपधारणा खंडनीय उपधारणा है–यदि अभियुक्त यह दर्शाते हुए कि प्रतिफल का अस्तित्व संदेहास्पद था प्रमाण की आरंभिक जिम्मेदारी को खंडित करने में सक्षम होता है, जिम्मेदारी परिवादी पर शिफ्ट हो जाएगी जो इसे तथ्य के मामले के रूप में सिद्ध करने के लिए बाध्य होगा और सिद्ध करने में उसकी विफलता उसे एन॰ आई॰ एक्ट के अधीन अनुतोष प्रदान किए जाने से गैर-हकदार बनाएगी। (पैरा 10)

निर्णयज विधि.–1993 (3) SCC 35; 2010(3) JCR 16 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s P.P.N. Roy, P.A.N. Roy, For the Appellant; Mr. S.S. Sahay, For the State; Mr. D. Pathak, For the Respondent No.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया।

2. यह दोषमुक्ति अपील दांडिक अपील सं॰ 285 वर्ष 2006 में श्री ब्रजेश कुमार गौतम, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-II घाटशिला, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 9 अप्रिल, 2007 के दोषमुक्ति के निर्णय से उद्भूत होती है जिसके द्वारा C 1 केस सं॰ 55/2001/टी॰ आर॰ सं॰ 330 वर्ष 2006 में श्री एस॰ सी॰ जायसवाल, अनुमंडल न्यायिक दंडाधिकारी, घाटशिला द्वारा पारित दिनांक 13.9.2006 का दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया है और प्रत्यर्थी अभियुक्त को परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसमें इसके बाद ''एन॰ आई॰ एक्ट' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन आरोप, जिसके लिए उसे अवर विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध और दंडादेशित किया गया था, से दोषमुक्त कर दिया गया है।

3. परिवादी प्रहलाद राय अग्रवाल ने अभियुक्त अरविन्द कुमार सिन्हा के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420 और 406 और एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, घाटशिला के न्यायालय में परिवाद C 1 केस सं॰ 55 वर्ष 2001 दाखिल किया था। परिवादी के मामले के अनुसार, अभियुक्त और उसकी पत्नी श्रीमती शोभा सिंह का परिवादी के साथ व्यावसायिक संबंध था और व्यावसायिक संव्यवहार के लिए अभियुक्त से और उसकी पत्नी से भी तीन लाख रुपया बकाया था और दिनांक 30.8.2000 के करार के मुताबिक उन्हें परिवादी को इसका भुगतान करने की आवश्यकता थी। अंततः, परिवादी की प्रेरणा पर अभियुक्त और उसकी पत्नी ने परिवादी और उसके पुत्र संदीप अग्रवाल के पक्ष में चार पोस्ट डेटेड दिनांकित चेकों, प्रत्येक 75,000/- रुपयों के लिए

बैंक ऑफ इंडिया, साकची शाखा, जमशेदपुर को जारी किया गया था। किंतु, वे सारे चेक इस मामले के विषय वस्तु नहीं हैं, बल्कि दिनांक 24.1.2001 का सं० 114834 वाला 75,000/- रुपयों का परिवादी के पक्ष में जारी चेक इस मामले की विषय वस्तु है। अभिकथित किया गया है कि उक्त चेक परिवादी द्वारा बैंक में प्रस्तुत किया गया था किंतु परिवादी ने दिनांक 9.6.2001 को बैंक से सूचना प्राप्त किया कि इस कारण से उक्त चेक का अनादर किया गया था कि अभियुक्त के बैंक खाता में पर्याप्त निधि नहीं है। तत्पश्चात्, दिनांक 20.6.2001 को अभियुक्त को मांग का कानूनी नोटिस दिया गया था किंतु इसे अभियुक्त द्वारा 'दावा नहीं किया गया' के रूप में लौटा दिया गया था और तद्नुसार, अवर न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी।

4. विचारण के क्रम में, दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था और मामले के न्यायनिर्णयन पर विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को एन० आई० एक्ट की धारा 138 के अधीन दोषी पाया था और तद्नुसार, उसको दोषसिद्ध किया और दंडादेश के बिंदु पर सुनवाई के बाद उसको छह माह का सामान्य कारावास भुगतने और 3,000/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने और इसके व्यतिक्रम में दो माह का अतिरिक्त सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया।

5. प्रत्यर्थी अभियुक्त द्वारा दांडिक अपील में दोषसिद्धि के उक्त निर्णय और दंडादेश को चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 9.4.2007 के आक्षेपित निर्णय द्वारा विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया था। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अपील दिनांक 30.8.2000 के करार के आधार पर अनुज्ञात की गयी थी, जो अभियुक्त के दायित्व का आधार थी और जिसे परिवादी द्वारा प्रदर्श–1 के रूप में सिद्ध किया गया था। उक्त करार में परिवादी और उसका पुत्र प्रथम पक्ष थे जबकि अभियुक्त और उसकी पत्नी द्वितीय पक्ष थे जो करार परिवदी की कंपनी अर्थात् मेसर्स गोयल वायर्स प्रा० लिमिटेड को अभियुक्त को करार में वर्णित निबंधनों और शर्तों पर बेचने के लिए किया गया था। करार स्पष्टत: दर्शाता है कि 4,01,000/- रुपयों के प्रतिफल धन पर सहमति हुई थी जिसमें से 1,01,000/- रुपये का भुगतान करार के समय पर परिवादी को पहले ही किया जा चुका था और 3,00,000/- रुपयों की शेष राशि का भुगतान किया जाना था और पक्षों के बीच सहमति हुई थी कि खरीददार करार में वर्णित कंपनी के समस्त दायित्वों के परिसमापन के लिए पूर्णत: जिम्मेदार होगा और द्वितीय पक्ष अर्थात् खरीददार द्वारा कंपनी के दायित्वों के परिसमापन के तुरन्त बाद 9800 वर्गफीट माप वाली भूमि के अंतरण के संबंध में विक्रय विलेख निष्पादित किया जाएगा। पक्षों में आगे सहमति बनी थी कि प्रथम पक्ष (परिवादी) कुल शेयर धृतियों और कुल शेयर आवेदन धन का वैध अंतरण 4,01,000/- रुपयों के प्रतिफल धन का भुगतान करने के अनुपात में द्वितीय पक्ष (प्रत्यर्थी–अभियुक्त) को करेगा। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने पाया है कि अभियुक्त ने परिवादी को 3,40,000/- रुपयों का भुगतान किया था, किंतु परिवादी द्वारा अभियुक्त के पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था और यद्यपि परिवादी और उसके पुत्र से शेयरों के अंतरण के बारे में प्रति–परीक्षण में विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछे गए थे, उन्होंने इसका टालमटोल वाला उत्तर दिया था। तद्नुसार अवर अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि अभियुक्त पर विधित: प्रवर्तनीय कर्ज अथवा दायित्व विद्यमान नहीं था और मामले के तथ्यों में यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि किसी दायित्व के पूर्ण अथवा आंशिक निर्वहन में प्रश्नगत चेक जारी किया गया था।

6. अभिलेख के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि परिवादी के पुत्र, जिसका परीक्षण सी० डब्ल्यू० 1 के रूप में परिवादी द्वारा किया गया था, ने अपने प्रतिपरीक्षण में स्वीकार किया है कि करार के समय पर 3,00,000/- रुपयों को छोड़कर समस्त राशि पहले ही प्राप्त की जा चुकी थी और तत्पश्चात करार के आधार पर 1,50,000/- रुपयों की राशि भी प्राप्त कर ली गयी थी और करार के मुताबिक अब केवल 1,50,000/- रुपया बकाया था। इसी प्रकार से परिवादी, जिसने स्वयं का परीक्षण सी० डब्ल्यू० 2 के रूप में किया है, ने भी अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया है, कि उसको भुगतान योग्य 3,00,000/- रुपयों में से वह 1,50,000/- रुपया प्राप्त कर चुका था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि अभियुक्त ने कंपनी के समस्त दायित्वों का परिसमापन भी कर दिया था और भूमि अभियुक्त के पक्ष में रजिस्टर्ड कर दी गयी थी जिसके लिए परिवादी को 89,000/- रुपयों का भुगतान किया गया था। किंतु जब इन दोनों गवाहों से अभियुक्त के पक्ष में शेयर धृतियों और शेयर आवेदन धन के अंतरण के बारे में पूछा गया था, उन्होंने टाल-मटोल वाला उत्तर दिया था। दूसरी ओर, बचाव गवाह ने विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि परिवादी द्वारा अभियुक्त के पक्ष में कोई शेयर धृति और शेयर आवेदन धन अंतरित नहीं किया गया था। बचाव गवाह ने दस्तावेजों जिन्हें प्रदर्शों के रूप में चिन्हित किया गया है, को यह दर्शाने के लिए सिद्ध किया है कि अभियुक्त के पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था, यद्यपि परिवादी ने धन प्राप्त किया था। प्रदर्श B/3 बचाव पक्ष द्वारा सिद्ध सर्च रिपोर्ट है जो दर्शाता है कि परिवादी द्वारा दिनांक 27.6.2006 तक कोई शेयर अंतरित नहीं किया गया था।

7. अपीलार्थी-परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विधि की गंभीर गलती की है और केवल प्रदर्श 1 के आधार पर निष्कर्ष पर आया था, किंतु प्रदर्श 8 को विचार में नहीं लिया था, जिसे परिवादी के पुत्र सी० डब्ल्यू० 1 संदीप अग्रवाल द्वारा सिद्ध किया गया था जो स्पष्टत: दर्शाता है कि अभियुक्त ने परिवादी को भुगतान किए जाने वाले 3,00,000/- रुपयों के दायित्व को स्वीकार किया है। परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि परिवादी यह सिद्ध करने में सक्षम रहा था कि प्रश्नगत चेक जिसे प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया गया है, सम्यक तिथि के भीतर बैंक में जमा किया गया था और जब इसका अनादर किया गया था, समय के भीतर अभियुक्त को मांग नोटिस दी गयी थी, जिसे प्रदर्श 4 के रूप में सिद्ध किया गया है। परिवादी-अपीलार्थी को चेक के अनादर के बारे में सूचित करता बैंक द्वारा जारी चेक रिटर्न मेमो और पत्र भी परिवादी द्वारा सिद्ध किया गया है और इस तथ्य की दृष्टि में कि परिवादी द्वारा मांग नोटिस दावा नहीं किया गया था, यह समझा जाना होगा कि नोटिस सम्यक रूप से अभियुक्त पर तामील की गयी थी। तत्पश्चात्, समय के भीतर परिवाद दाखिल किया गया था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि एन० आई० एक्ट की धाराओं 118 और 139 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा है जिसका खंडन करने में अभियुक्त सक्षम नहीं हुआ है और तद्नुसार, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह सुयोग्य मामला है जिसमें विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अपास्त कर दिया जाए और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश मान्य ठहराया जाए।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि वर्तमान मामले में परिवादी अपने विरुद्ध उपधारणा को खंडित करने में सक्षम रहा था, क्योंकि स्वयं परिवादी द्वारा प्रदर्श 1 के रूप में लाए गए साक्ष्य से प्रकट है कि शेयर धृति और शेयर आवेदन धन को 4,01,000/- रुपयों की प्रतिफल राशि में से किए गए भुगतान के अनुपात में अभियुक्त के पक्ष में अंतरित किए जाने की

आवश्यकता थी। यह स्वीकृत अवस्था है कि स्वयं करार के समय पर 1,01,000/- रुपयों का भुगतान किया गया था और परिवादी द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि अभियुक्त द्वारा कंपनी के समस्त दायित्वों का परिसमापन कर दिया गया था और तत्पश्चात् अभियुक्त के पक्ष में भूमि का अंतरण भी किया गया था जिसके लिए परिवादी को 89,000/- रुपयों का भुगतान किया गया था। यह भी स्वीकार किया गया पाया जाता है कि 3,00,000/- रुपयों के शेष में से 1,50,000/- रुपयों का भुगतान बाद में परिवादी को किया गया था और इस प्रकार, कुल मिलाकर परिवादी को पहले ही 3,40,000/- रुपयों का भुगतान किया जा चुका था किंतु अभियुक्त के पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था। परिवादी और उसके पुत्र ने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया था और शेयर के अंतरण के बारे में अपने प्रतिपरीक्षण में टालमटोल वाला उत्तर दिया था किंतु बचाव पक्ष अभिलेख पर दस्तावेज, जिसे प्रदर्श B/3 के रूप में चिन्हित किया गया है, को यह दर्शाने के लिए लाया है कि दिनांक 27.6.2006 तक अभियुक्त के पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अभियुक्त उपधारणा का खंडन करने में सक्षम रहा था, किंतु परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा और मामले के उस दृष्टिकोण में विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करके विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा सही प्रकार से प्रत्यर्थी अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

9. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख के परिशीलन पर मैं पाता हूँ कि इस तथ्य की दृष्टि में कि अभियुक्त यह सिद्ध करने में सक्षम रहा था कि परिवादी द्वारा अभियुक्त के पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था यद्यपि परिवादी ने स्वीकृत रूप से 3,40,000/- रुपयों की राशि प्राप्त किया था; अभियुक्त एन० आई० एक्ट की धाराओं 118 और 139 के अधीन उपधारणा खंडित करने में सक्षम रहा था और अब परिवादी को सिद्ध करना था कि उसने अभियुक्त के पक्ष में शेयर और शेयर आवेदन धन की पर्याप्त मात्रा अंतरित कर दिया था किंतु, परिवादी और उसके पुत्र ने प्रति परीक्षण के दौरान इस संबंध में उनसे पूछे गए प्रश्नों का टालमटोल वाला उत्तर दिया। सी० डब्ल्यू० 1 के साक्ष्य के परिशीलन से प्रकट है कि प्रदर्श 8 जिस पर अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा काफी जोर दिया गया है, स्वयं परिवादी के कार्यालय में तैयार किया गया था, और तद्नुसार इस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता है, विशेषत:, इस तथ्य की दृष्टि में कि प्रत्यर्थी अभियुक्त यह सिद्ध करने में सक्षम रहा था कि उसने परिवादी को 3,40,000/- रुपयों का भुगतान किया था, किंतु स्वयं परिवादी द्वारा प्रदर्श 1 के रूप में सिद्ध करार के मुताबिक उसके पक्ष में एक भी शेयर अंतरित नहीं किया गया था। इस प्रकार, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया कि अभियुक्त के विरुद्ध कोई विधित: प्रवर्तनीय कर्ज अथवा दायित्व विद्यतान नहीं था और अभियुक्त को एन० आई० एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया है।

10. यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि एन० आई० एक्ट की धारा 139 के अधीन उपधारणा खंडनीय उपधारणा है और यदि अभियुक्त यह दर्शाते हुए कि प्रतिफल का अस्तित्व अनधिसंभाव्य अथवा संदेहास्पद था अथवा यह अवैध था, प्रमाण की आरंभिक जिम्मेदारी को खंडित करने में सक्षम होता है, जिम्मेदारी परिवादी की हो जाएगी जो इसे तथ्य के मामले के रूप में सिद्ध करने के लिए बाध्य होगा और सिद्ध करने में उसकी विफलता उसे एन० आई० एक्ट के अधीन किसी अनुतोष के प्रदान से गैर हकदार बनाएगी। **भारत बैरल एण्ड ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीनचंद प्यारे लाल, (1993)3 SCC 35,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा विधि इस संबंध में सुनिश्चित कर दी गयी है जो निम्नलिखित है:–

*"12. ;gk Åij xkj fd, x, vud fu.k;k ij fopkj dju ij fofèk dh lkeu vkrh voLFkk ;g g fd tc ,d ckj çkfeljh ukV dk fu"iknu Lohdkj fd;k tkrk g] èkkjk 118 (a) d vèkhu mièkkj.kk mnHkr gkxh fd ;g çfrQy }kjk lefFkr gA ,lh mièkkj.kk [kMuh; gA çfroknh vfèklHkkO; çfrokn djd çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dj ldrk gA ;fn ;g n'kkr g, fd çfrQy dk vfLrRo vufèklHkkO; vFkok lngkLin Fkk vFkok ;g voèk Fkk] çfroknh }kjk çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu fl) fd;k tkrk g] Hkkj oknh ij pyk tk,xk tk bl rF; d ekey d :i e fl) dju d fy, ckè; gkxk vkj bldk fl) dju e foQyrk mlI ijØkE; fy[kr d vèkkj ij vurk"k çnku dk xj gdnkj cuk,xhA çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dju dk çfroknh d Åij ck> ;k rk çR;{k ;k fQj ifjfLFkfr;k] ftu ij og fo'okl djrk g] d lnHk e vfèklHkkO;rkvk dh cgyrk dk vfHky[k ij ykdj gk ldrk gA ,lh fLFkfr e] oknh fofèk d vèkhu ekey e fn, x, oknh d lk{; lfgr leLr lk{; ij fo'okl dju dk gdnkj gA ;fn tgk çfroknh çfrQy dh vfLrRoghurk n'kkdj çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu dju e foQy jgrk g] oknh lnk gh viu i{k e èkkjk 118(a) d vèkhu mnHkr gku oky miekkj.kk d ykHk dk gdnkj vfHkfuèkkfjr fd;k tk,xkA U;k;ky; çfroknh ij çR;{k lk{; ndj çfrQy d vfLrRo dk vfl) dju ij tkj ugh Mky ldrk g D;kfd udkjkRed lk{; dk vfLrRo u rk lHko g vkj u gh vuè;kr fd;k x;k g vkj ;fn bl fn;k tkrk g] bl lng l n[kuk gkxkA çfrQy fn, tku l dkjk budkj çdVr% dkb cpko çrhr ugh gkrk gA dN Hkh tk vfèklHkkO; g dk oknh ij fl) dju dk Hkkj Mkyu dk ykHk yu d fy, vfHky[k ij ykuk gh gkxkA mièkkj.kk dk vfl) dju d fy, çfroknh dk ,l rF;k vkj ifjfLFkfr;k dk vfHky[k ij ykuk gkxk ftu ij fopkj djd U;k;ky; ;k rk fo'okl dj ldrk g fd çfrQy dk vfLrRo ugh Fkk vFkok bldh vfLrRoghurk bruh vfèklHkkO; Fkh fd dkb food'khy 0;fDr ekey d rF;k d vèkhu bl vfHkopu ij ÑR; djxk fd ;g fo|eku ugh FkkA***

** * * * * * * * ".*

(tkj fn;k x;k)

पूर्वोल्लिखित निर्णय **रंगप्पा बनाम श्री मोहन, 2010 (3) JCR 16 (SC)** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन करते हुए उद्धृत किया गया है। ऊपर अधिकथित विधि इस मामले के तथ्यों पर पूर्णत: प्रयोज्य है।

11. पूर्वोल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा था जबकि अभियुक्त यह सिद्ध करने में सक्षम रहा था कि अभियुक्त से उसके द्वारा प्राप्त प्रतिफल के अनुपात में अभियुक्त को परिवादी द्वारा शेयरों के गैर-अंतरण के कारण अभियुक्त के विरुद्ध कोई विधित: प्रवर्तनीय कर्ज अथवा दायित्व नहीं बचा था। तद्नुसार, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने सही प्रकार से एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध से अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया है और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।

12. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे तद्नुसार, खारिज किया जाता है।